MANZOOR AHTESHAM KA KATHA SAHITYA AUR MUSLIM JEEVAN YATHARTH

A Thesis submitted in Partial Fulfillment of the Requirement for the Degree of Doctor of Philosophy in Hindi

2021

Researcher

KHUSHBOO

16HHPH08

Supervisor

Prof. C. ANNAPURNA

Department of Hindi, School of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad - 500046

Telangana

India

मंजूर एहतेशाम का कथा साहित्य और मुस्लिम जीवन यथार्थ

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच०डी० (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

प्रस्तुतकर्त्री

खुशबू

<u>विभागाध्यक्ष</u>

प्रो० गजेन्द्र पाठक

हिन्दी विभाग,
मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद- 500046

<u>शोध-निर्देशक</u>

प्रो० सी० अन्नपूर्णा

हिन्दी विभाग,
मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद- 500046

DECLARATION

I KHUSHBOO hereby declare that this thesis entitled "MANZOOR AHTESHAM KA KATHA SAHITYA AUR MUSLIM JEEVAN YATHARTH" "मंजूर एहतेशाम का कथा साहित्य और मुस्लिम जीवन यथार्थ" submitted by me under the guidance and supervision of Prof. C. ANNAPURNA is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Signature of supervisor

Khushboo

Signature of the student:

Date: ………………

KHUSHBOO

Reg. No. 16HHPH08

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **“MANZOOR AHTESHAM KA KATHA SAHITYA AUR MUSLIM JEEVAN YATHARTH” (“मंज़ूर एहतेशाम का कथा साहित्य और मुस्लिम जीवन यथार्थ)”** submitted by KHUSHBOO bearing Reg. No. 16HHPH08 in partial Fulfillment of requirements for award of Doctor of Philosophy in Hindi in the School of Humanities is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Parts of this thesis have been:

A. Published in the following publications:

1- ‘MANZOOR AHTESHAM KE RACHNAON ME BADLATE JEEVAN MULYA’, Sahitya setu, Traimasik- warsh 5, ank 19, April-June 2019, Andhra Pradesh akadami. ISSN no. 2348-6163.

2- ‘KI AATI HAI URDU JUBAN AATE-AATE’, SAMSAMYIK SRIJAN, Traimasik, warsh 10, ank 2, October-December 2020, Delhi, ISSN no. 2320-5733

B. Presented in the following conferences:

1. ‘Alpsankhyak asmita aur Sukha Bargad’, Department of Hindi, Maulana Azad national Urdu university, Hyderabad 22-23 Feb. 2018

2. ‘Swatantrayottar Hindi katha sahitya aur Manzoor Ahtesham’, Miranda House Mahavidyalaya, patel chest marg, Delhi Vishwavidyalaya, Delhi, 7 Feb. 2019.

Further the student has passed the following courses towards fulfilment of coursework requirement for Ph.D in duration Ph.D first year (2016-17). This coursework was recommended by Doctoral Committee.

Course Code	Name	Credits	Pass/Fail
1. Paper-1(801)	Critical Approaches to Research	4	Pass
2. Paper-2(802)	Research Pa per	4	Pass
3. Paper-3(826)	The Ideological background of Hindi Literature	4	Pass
4. Paper-4(827)	Practical Review	4	Pass
5. Paper-5(701)	Research Methodology	4	Pass

Supervisor

Head of the Department **Dean of the School**

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या **पृष्ठ संख्या**

भूमिका .... i-v

प्रथम अध्याय : भारतीय मुसलमान : स्थिति और स्वरूप...... 1-37

1.1. सामाजिक स्थिति

1.2. आर्थिक स्थिति

1.3. राजनीतिक स्थिति

1.4. धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति

द्वितीय अध्याय : हिंदी कथा साहित्य में मुस्लिम समाज की-पृष्ठभूमि………………………………………………………. 38-105

2.1. उपन्यासों में चित्रित मुस्लिम समाज-

2.1.1. सामाजिक स्थिति

2.1.2. आर्थिक स्थिति

2.1.3. राजनीतिक स्थिति

2.1.4. साम्प्रदायिक स्थिति

2.1.5. धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति

2.1.6.स्त्रियों की स्थिति

2.2. कहानियों में चित्रित मुस्लिम समाज-

2.2.1. सामाजिक स्थिति

2.2.2. आर्थिक स्थिति

2.2.3. राजनीतिक स्थिति

2.2.4. साम्प्रदायिक स्थिति

2.2.5. धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति

2.2.6.स्त्रियों की स्थिति

तृतीय अध्याय : मंजूर एहतेशाम : जीवन और रचनाकर्म…….. 106-134

3.1. पहचान और अभिव्यक्ति

3.2. रचनाकार का क्रमिक वैचारिक विकास

3.3. रचनात्मक भावधारा

चतुर्थ अध्याय : मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में अभिव्यक्त-

मुस्लिम समाज की स्थिति………………………………… 135-198

4.1 सामाजिक स्वरूप

4.1.1. सामाजिक असमानता

4.1.1.1. वर्गगत असमानता

4.1.1.2. जातिगत असमानता

4.1.1.3. धार्मिक असमानता

4.1.2. स्त्रियों की स्थिति

4.1.3. पारिवारिक विघटन

4.1.4. अंतर्जातीय विवाह् की समस्या

4.1.5. मानवीय मूल्यों का ह्रास

4.1.6. शैक्षणिक स्थिति

4.2. आर्थिक स्वरूप

4.2.1. स्वतंत्रता पश्चात् उभरता हुआ मध्यवर्ग और मुस्लिम समाज

4.2.2. आर्थिक असमानता

4.2.3. आर्थिक स्रोत

4.3. राजनीतिक स्वरूप

4.3.1. कांग्रेस और भारतीय मुसलमान

4.3.2. गाँधी और मुसलमान

4.3.3. 'मुस्लिम लीग' का प्रभाव

4.3.4. वर्तमान राजनीतिक परिवेश

4.4. सांप्रदायिक स्वरूप

4.5. धार्मिक स्वरूप

4.5.1. इस्लाम के विविध मत एवं संप्रदाय

4.5.2. धार्मिक रूढ़िवाद का खंडन

4.5.3. धार्मिक सुधारवादी आंदोलन

4.5.4. मानवतावाद की स्थापना पर बल

4.6. सांस्कृतिक स्वरूप

4.6.1. भाषा एवं साहित्य

4.6.2. रीति-रिवाज, पर्व एवं मान्यताएँ

4.6.3. रहन-सहन एवं खान-पान

4.6.4. वेशभूषा

पंचम अध्याय : मंजूर एहतेशाम की कहानियों में अभिव्यक्त-

मुस्लिम समाज की स्थिति…………………………………… 199-235

5.1. सामाजिक स्वरूप-

5.1.1. मानवीय मूल्यों का ह्रास

5.1.2. शहरो के प्रति आकर्षण

5.1.3. पारिवारिक विखंडन

5.1.4. मध्यवर्ग का विस्तार

5.2. आर्थिक स्वरूप-

5.2.1. औद्योगीकरण का विकास

5.2.2. निजीकरण का विस्तार

5.2.3. आर्थिक मंदी से जूझता मध्यवर्ग

5.3. राजनीतिक स्थिति

5.3.1. भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था

5.3.2. राजनीतिक उपेक्षा

5.4. धार्मिक स्वरूप-

5.4.1. धार्मिक मान्यताएँ

5.4.2. धर्म की प्रासंगिकता

5.4.3.धार्मिक अंधविश्वास और पाखंड

5.5. सांस्कृतिक स्वरूप-

षष्ठम अध्याय : मंजूर एहतेशाम के कथा साहित्य में-

भाषा एवं शिल्प……………………………………………… 236-262

6.1.भाषागत वैशिष्ट्य

6.1.1. देशज एवं विदेशी शब्दों का प्रयोग

6.1.2. आलंकारिक भाषा

6.1.3. प्रतीक-योजना

6.1.4. बिंब-विधान

6.1.5. सांकेतिकता

6.1.5. नाटकीयता

6.1.6. काव्यात्मकता

6.2. शैलीगत वैविध्य

6.2.1. वर्णनात्मक शैली

6.2.2. विश्लेषणात्मक शैली

6.2.3. संवादात्मक शैली

6.2.4. पूर्वदीप्त शैली

6.2.5. आत्मकथात्मक शैली

6.2.6. व्यंग्यात्मक शैली

उपसंहार:- ………………………………………………………. 263-274

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :- ……………………..…………….. 275-281

परिशिष्ट:-…………………..………………………..………….. 282-285

भूमिका

मानव सभ्यता के इतिहास में संघर्ष और गतिरोध की एक लम्बी परम्परा मौजूद रही है। बौद्धिक चेतना से लैस मनुष्य तमाम प्राकृतिक और भौतिक संसाधनों के साथ प्रयोगशील होते हुए निरंतर संघर्षशील है। इस संघर्षशीलता के साथ जीवन के सौन्दर्य और भावनाओं को सहेजने का एक सुन्दर प्रयास साहित्य सृजन के रूप में दिखाई देता है। साहित्य समाज में संवेदना को संचारित करने का सशक्त माध्यम रहा है। मानव द्वारा विकास की असीम ऊँचाईयों को छू लेने के बाद भी संवेदना और मानव मूल्यों की तलाश में उसे साहित्य का ही दरवेश बनना पड़ता है। विज्ञान के तमाम चमत्कार और अविष्कार के बाद भी मनुष्य के भीतर जो बचा हुआ खालीपन रह जाता है, उसे पूरा करने के लिए उसके द्वारा साहित्य का सृजन, मनन किया जाता है। युग बदले, सभ्यताओं के कई आवरण चढ़े, फिर भी मनुष्यों ने साहित्य को सजोये रखा। समय के साथ साहित्य का कभी रूप बदला, कभी भाषा, तो कभी शैली लेकिन इसकी आत्मा हरबार वही रही है। शायद इसलिए हम मनुष्य अपना दुख-सुख इस विधा में सहजता से साझा कर लेते हैं। समय और जरूरतों के हिसाब से साहित्य का दायरा और अधिक विस्तृत हुआ है। अब इस विधा में संवेदना को संचारित करने के साथ ही समय और समाज की समस्याओं को भी प्रमुखता से उठाया जा रहा है।

हिन्दी कथा-साहित्य का जन्म भारतेंदु काल में हुआ। भारतेंदु युग में कई नवीन विधाओं के साथ-साथ सामाजिक मुद्दों को साहित्य के केंद्र में लाया गया। जो आगे चलकर और अधिक समृद्ध होता गया। मुंशी प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, रेणु, नागार्जुन, जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, भीष्म साहनी, शानी जैसे रचनाकारों ने समाज की समस्याओं को संवेदना के धरातल पर उकेरने का प्रयास किया। सन् 1947 भारत के इतिहास की वह घटना है, जहाँ के तरफ देश आजाद हो रहा था तो दूसरी तरफ भारत का बटवारा हो रहा था। इस दंश ने सबको विचलित किया। धर्म के आधार पर हुए इस विभाजन ने समाज में न पाटी जा सकने वाली खायी पैदा की। इस विनाशकारी विभाजन ने न सिर्फ देश को दो हिस्सों में बाँटा बल्कि पूरे सामाजिक ढाँचे पर अपना

नकारात्मक प्रभाव डाला। समाज में एक विशेष किस्म की सांप्रदायिकता का प्रसार हुआ। जिसमें नेताओं की तानाशाही तथा भ्रष्ट शासन-प्रणाली की भी बड़ी भूमिका रही। इसी खायी को पाटने की उम्मीद लिए साहित्यकारों की एक जमात आगे आई। जिसमें मंजूर एहतेशाम की भी बड़ी भूमिका रही है।

विभाजन के पश्चात् भारतीय समाज, साहित्य और राजनीति जिस परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था और उससे भारतीय मुसलमान जिस रूप में प्रभावित हो रहा है, उसे मंजूर एहतेशाम द्वारा बेबाकी से उठाया गया है। तमाम सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिवर्तनों के बीच भारतीय मुसलमान लगातार हाशिये की ओर बढ़ता जा रहा है। इन सभी क्षेत्रों में उसकी उपस्थिति लगातार कम होती जा रही है, साथ ही वह वर्तमान समय में तमाम उपेक्षाओं और संदेहास्पद स्थितियों के साथ समाज में रह रहा है। मीडिया और राजनीति द्वारा उस पर थोपे गये तमाम आरोपों और उस समाज में जीते हुए मैंने उसकी वास्तविक स्थितियों व समस्याओं में एक गहरा विभेद महसूस किया। जिस पर मैंने विस्तारपूर्वक अध्ययन की आवश्यकता महसूस की। हिन्दी साहित्य में इन तमाम मुद्दों पर संवेदनशीलता और तटस्थता से विचार करते हुए लेखन करने वाले रचनाकार के रूप में मुझे मंजूर एहतेशाम सर्वाधिक उपयुक्त व प्रभावकारी लगे। मंजूर एहतेशाम अपनी बेबाकी और तल्ख लहजे के कारण चिंतकों और पाठकों के बीच विशेष स्थान रखते हैं। अतः मैंने अपने शोध-प्रबंध हेतु इस विषय का चयन किया। इनकी रचनाओं के माध्यम से मैंने भारतीय समाज, राजनीति तथा धार्मिक स्वरूप के बीच भारतीय मुसलमानों की स्थिति को देखने का प्रयास किया है।

हिंदी साहित्य में मंजूर एहतेशाम उन गिने-चुने रचनाकारों में अपना स्थान रखते हैं, जो समाज में एक सेतु का काम करते है। भारतीय समाज में साम्प्रदायिक आधार पर जो विभेद पैदा हुए, उससे हिन्दू और मुसलमान के बीच अलगाव की स्थिति पैदा हुई, समय के साथ-साथ उसमे और अधिक विस्तार हुआ। नफरत, हिंसा, दंगों से भारतीय समाज में जटिलता, कुंठा, निराशा, असुरक्षा की भावना का प्रसार हुआ। मंजूर एहतेशाम अपनी रचनाओं के माध्यम से समस्या की जड़ तक पहुँचने का प्रयास करते है। धार्मिक पाखंड, रुढ़िवादी मान्यताओं और साम्प्रदायिक राजनीति की वास्तविकता को भी उन्होंने उजागर किया है।

भूमंडलीकरण और साम्प्रदायिक राजनीति के प्रभाव से समाज और साहित्य जिस रूप में प्रभावित हुआ, उसका विवेचन-विश्लेषण मंजूर की रचनाओं की प्रमुख विशेषता है। इस पूरे परिवेश में भारतीय मुसलमानों का जीवन जिस रूप में प्रभावित हुआ उस यथार्थ को मंजूर की दृष्टि से देखते हुए उसके महत्त्व पर प्रकाश डालना इस शोध-प्रबंध का उद्देश्य रहा है। मेरे शोध-प्रबन्ध का विषय है- **"मंजूर एहतेशाम का कथा साहित्य और मुस्लिम जीवन यथार्थ"**। अध्ययन और विश्लेषण की सुविधानुसार प्रस्तुत शोध-प्रबंध को छह अध्यायों में विभक्त किया गया है-

प्रथम अध्याय **'भारतीय मुसलमान: स्थिति और स्वरूप'** है। इस अध्याय में मैंने भारतीय मुसलमानों के वास्तविक स्वरूप को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साम्प्रदायिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आदि बिन्दुओं के आधार पर एक सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत किया है। यह विवेचन विभिन्न समाजविज्ञानियों तथा सरकारी व शैक्षणिक समितियों द्वारा प्रस्तुत सर्वेक्षणों व उनके निष्कर्षों पर आधारित है। इस अध्याय में मुसलमानों के बीच मौजूद सामाजिक असमानता, वर्ग-विभेद, जाति-व्यवस्था, शैक्षणिक स्थिति तथा अन्य प्रकार की जटिलताओं को विस्तारपूर्वक रेखांकित किया गया है।

द्वितीय अध्याय **'हिन्दी कथा साहित्य में मुस्लिम समाज की पृष्ठभूमि'** है। इस अध्याय में हिन्दी कथा साहित्य में मुस्लिम समाज की उपस्थिति पर विचार करते हुए भारतेंदु युग से लेकर वर्तमान समय के साहित्यकारों द्वारा अभिव्यक्त मुस्लिम समाज के प्रति उनके वैचारिक व भावनात्मक स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। जिसमें मुस्लिम समाज के यथार्थ स्वरूप का विश्लेषण करते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक आदि बिन्दुओं के आधार पर हिन्दी कथा साहित्य में उपस्थित मुस्लिम समाज को देखने का प्रयास किया गया है। साथ ही हिन्दी कथा साहित्य में मुस्लिम महिलाओं की समस्याओं को किस रूप में चित्रित किया गया है, उसे भी इस अध्याय में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय **'मंजूर एहतेशाम: जीवन और रचनाकर्म'** है। इस अध्याय में मैंने विभाजन के पश्चात् देश के बदलते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साम्प्रदायिक, धार्मिक व सांस्कृतिक परिदृश्य के कारण हिन्दी कथा साहित्य में आये बदलाव को

रेखांकित करते हुए एक साहित्यकार के रूप में मंजूर एहतेशाम की पहचान और उनके अभिव्यक्ति की विशेषताओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। साथ ही उनके लेखन और विचारधारा का क्रमशः विकास और सृजनात्मक भावधारा को भी प्रस्तुत किया है।

चतुर्थ अध्याय **'मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में अभिव्यक्त मुस्लिम समाज की स्थिति '** है। इस अध्याय में मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में चित्रित मुस्लिम समाज को प्रस्तुत किया गया है। जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि बिन्दुओं के आधार पर मुस्लिम समाज की स्थिति व उनकी समस्याओं पर विचार करते हुए मंजूर के वैचारिक परिदृश्य का भी विश्लेषण किया गया है। मंजूर ने मुसलमानों के वर्तमान स्वरूप पर विचार करते हुए एक सकारात्मक बदलाव की आवश्यकता को महसूस किया है, जिसे आधार बनाकर सैद्धांतिक व व्यवहारिक आधार पर व्यापक विचार-विमर्श करते हुए इस अध्याय को प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय **'मंजूर एहतेशाम की कहानियों में अभिव्यक्त मुस्लिम समाज की स्थिति'** है। इस अध्याय में मंजूर की कहानियों के आधार पर मुस्लिम समाज का विश्लेषण किया गया है। भूमंडलीकरण के प्रभाव से सम्पूर्ण विश्व के सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक और वैचारिक स्वरूप में परिवर्तन हुए, उससे भारतीय समाज भी प्रभावित हुआ है। मानवीय मूल्यों और संबंधों में आई कमी, जीवन स्तर में बदलाव और शहरी जीवन की समस्याओं तथा इन सब के कारण मुस्लिम समाज में आई जटिलता को भी इस अध्याय में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

षष्ठम् अध्याय **'मंजूर एहतेशाम के कथा साहित्य में भाषा एवं शिल्प'** है। इस अध्याय में मंजूर एहतेशाम के रचना-विन्यास को प्रस्तुत किया गया है। जिसमें उनकी भाषा, बिम्ब-विधान, शिल्प-विन्यास, अलंकारिकता और नाटकीयता आदि को प्रस्तुत करते हुए उनकी शैलीगत विशेषताओं को भी प्रस्तुत किया गया है। अंत में उपसंहार के रूप में सम्पूर्ण शोध प्रबंध के निष्कर्षो को देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट में कुछ तथ्यात्मक सारणियाँ दी गयी है जो द्वितीय अध्याय के सैद्धांतिक विश्लेषण को प्रतिपुष्ट करती है। इस शोध प्रबंध में प्रयुक्त पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, वेबसाइट तथा कोश आदि की विस्तृत जानकारी सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची के रूप में मौजूद है।

प्रस्तुत शोध-विषय पर सामग्री-संकलन तथा अध्याय-विभाजन करने में मेरी शोध-निर्देशिका प्रो० सी० अन्नपूर्णा मैडम का विशेष सहयोग रहा है। जिनके सहयोग के बिना यह शोध-कार्य इतनी सुगमता से संपन्न नहीं हो पाता। शोध कार्य के दौरान विभिन्न सहयोगी पुस्तकों और पत्रिकाओं को उपलब्ध कराने में हैदराबाद विश्वविद्यालय के ग्रंथालय से मुझे विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय के ग्रंथालयों से भी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई।

इस शोध-कार्य को पूर्ण कराने में मेरी शोध-निर्देशिका प्रो० सी० अन्नपूर्णा मैडम की विशेष भूमिका रही है। उन्होंने मुझे स्वतंत्र रूप से लिखने, पढ़ने और विचार करने का अवसर प्रदान किया। मैं उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ। साथ ही प्रो०आर०एस०सर्राजू, प्रो० सच्चिदानन्द चतुर्वेदी, प्रो० गजेन्द्र पाठक, प्रो० श्याम राव और डॉ० भीम सिंह सर के प्रति भी आभारी हूँ, जिनका अमूल्य सहयोग और स्नेह मुझे प्राप्त हुआ। मैं प्रो० चौथीराम यादव के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, जिनकी प्रेरणा और सहयोग से मैं इस कार्य को पूर्ण करने का सामर्थ्य जुटा पायी। मैं अपने माता-पिता के प्रति आजीवन कृतज्ञ रहूँगी, जिन्होंने स्वयं कठिन परिस्थितियों में रहते हुए भी मुझे शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अवसर और सहयोग दिया। साथ ही अपने नाना और साथी इमरान के प्रति भी कृतज्ञ रहूँगी जिन्होंने मुझे उच्च शिक्षा प्राप्त करने में अपना अमूल्य सहयोग दिया है। इसके अलावा सभी गुरुजनों, अग्रजों, अनुजों, साथियों के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करती हूँ।

Khushboo

शोधार्थी- खुशबू

हिन्दी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

प्रथम अध्याय

भारतीय मुसलमान: स्थिति और स्वरूप

प्रथम अध्याय

भारतीय मुसलमान: स्थिति और स्वरूप

भारत में धार्मिक आधार पर छह समुदायों को अल्पसंख्यक की श्रेणी में रखा गया है। जिसमें मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी और सिक्ख शामिल हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल आबादी 1,21,08,54,977 है। जिसमें मुसलमानों की आबादी 17.22 करोड़ है, जो कुल जनसंख्या का 14.23 फ़ीसदी है। भारत में मुसलमान सबसे बड़ी आबादी वाला अल्पसंख्यक वर्ग है। वैसे तो भारत के हर हिस्से में यह समुदाय निवास करता है, लेकिन भारत के तीन राज्य जिसमें उत्तर प्रदेश (3.07 करोड़), पश्चिम बंगाल (2.02 करोड़) और बिहार (1.37 करोड़) में मुस्लिम आबादी सर्वाधिक है। आबादी के अनुसार भारत में 14.23 फ़ीसदी हिस्सेदारी रखने वाला मुस्लिम समाज सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा राजनीतिक रूप से अत्यंत पिछड़ा है। सन् 2006 में जस्टिस 'राजिंदर सच्चर' के नेतृत्व में भारतीय मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व शैक्षणिक स्थिति का मूल्यांकन करने हेतु एक कमेटी का गठन किया गया जिसे 'सच्चर कमेटी' के नाम से जाना गया। 'सच्चर कमेटी' की रिपोर्ट के द्वारा मुस्लिम समाज के संदर्भ में आश्चर्यजनक परिणाम देखने को मिलते हैं। इस रिपोर्ट में पहली बार यह खुलासा हुआ कि कई मामलो में भारतीय मुसलमानों की स्थिति दलितों से भी खराब है। मुसलमानों की इस खराब स्थिति के पीछे कमेटी ने कई कारण बताये हैं। भारत में मुसलमानों की स्थिति को विभिन्न सन्दर्भों में देखा जा सकता है जिसमें जातिगत, सामाजिक, व्यवसायिक आधारों पर इसे समझा जा सकता है, जो निम्न प्रकार से है –

1.1. सामाजिक स्थिति-

आमतौर पर यह धारणा प्रचलित है कि भारत का पूरा मुस्लिम समुदाय एक है, लेकिन यह धरणा सत्य नहीं है। भारतीय मुस्लिम समाज में सामाजिक विभेदीकरण का वैसा ही रूप पाया जाता है, जैसा कि अन्य धार्मिक समुदाय। भारत का मुस्लिम समाज

'अशराफ', 'अजलाफ़' और 'अरजाल' तीन श्रेणियों में विभक्त है, इसका शाब्दिक अर्थ क्रमशः 'शरीफ', 'नीच' और 'निकृष्ट' होता है। 'अशराफ' के अंतर्गत उच्चवर्गीय कुलीन मुसलमान आते हैं। इसमें शेख, सैयद और पठान इत्यादि उपवर्ग है। इस वर्ग में अधिकांशतः वे मुसलमान शामिल हैं, जिनके पूर्वज मध्यकाल में विदेशों से आकर बसे थे या उच्च जाति के हिंदू, जिन्होंने धर्म परिवर्तन कर इस्लाम स्वीकार कर लिया था। इनमें रक्त शुद्धता की भावना विद्यमान है तथा ये स्वयं को हज़रत मुहम्मद के वंशज मानते हैं। मध्यकालीन भारत में इसी वर्ग का शासनकाल था। मुसलमानों का दूसरा वर्ग 'अजलाफ' कहलाता है, इसमें ज्यादातर वे लोग आते हैं, जो हिंदुओं में नीची जाति से धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बने है। इस वर्ग के मुसलमानों की एक खास विशेषता यह है कि उनका कोई न कोई परंपरागत पेशा अवश्य होता है। जुलाहा, धुनिया, रंगरेज, धोबी, कहार, नाई आदि इसी वर्ग में आते हैं। इस वर्ग के मुसलमान सामाजिक रूप से पिछड़े हुए हैं तथा मध्यकाल में अशराफ वर्ग के सत्ताधारी होने के कारण उसके प्रति आदर-भाव रखते हैं। इन दोनों वर्गों में आपस में वैवाहिक संबंध स्थापित नहीं होते हैं। हालाँकि छुआछूत जैसी भावना इनके बीच नहीं है, लेकिन ऊँच-नीच का भेद-भाव जरुर बना हुआ है। अधिकतर विद्वानों ने मुस्लिम समाज की इन्हीं दो श्रेणियों का जिक्र किया है, लेकिन 1901 की जनगणना रिपोर्ट में मुस्लिम समाज की तीन श्रेणियों का जिक्र किया गया है। इसके अनुसार तीसरी श्रेणी 'अरजाल' कहलाती है। इसकी सामाजिक स्थिति बहुत ही ख़राब है। यह मुसलमानों का अछूत वर्ग है, जो भारत के कुछ हिस्सों में निवास करता है, विशेषकर उत्तर भारत में । इस वर्ग के बारे में 'अली अनवर' लिखते हैं-"मुसलमानों की तीसरी श्रेणी के बारे में 1901 की जनगणना रिपोर्ट कहती है-"कुछ स्थानों पर तीसरा वर्ग भी है जो अरजाल और नीची जातियों में भी सबसे नीचे आते हैं। इनमें हलालखोर, लालबेगी, अबदाल और बेदिया आदि शामिल हैं। इनके साथ कोई दूसरा मुसलमान संबंध नहीं जोड़ता है और जिन्हें मस्जिदों में जाने की मनाही है। यह सार्वजनिक दफनगाह का भी प्रयोग नहीं कर सकते।"[1] भारत का मुस्लिम समाज विभिन्न जातियों तथा उपवर्गों में बटा हुआ है। यह देश के भिन्न-भिन्न भागों में निवास करता है। इन सब की अपनी-अपनी कुछ मान्यताएँ है। क्षेत्रीयता के आधार पर इनकी भाषा, बोली, खान-पान, वेशभूषा, रीति-रिवाज आदि में स्पष्ट अंतर दिखायी देता है, साथ ही इन पर स्थानीयता का भी काफी गहरा असर देखा जा सकता है। इन समूहों का विभाजन व

---

[1] अली अनवर, मसावात की जंग, पृष्ठ सं० 23

नामकरण व्यवसाय तथा कुल के आधार पर किया गया है। भारतीय मुसलमानों को जानने के लिए उनके सामाजिक संरचना को जानना अति आवश्यक है।

उत्तर भारत में मुसलमानों की बड़ी आबादी निवास करती है। इन मुसलमानों में मुख्य रूप से चार समुदाय सैयद, शेख, पठान और मुग़ल मूलतः विदेशी मूल का होने का दावा करते है। इन समूहों द्वारा पैगंबर मुहम्मद तथा अरब के कुरैश कबीले से अपना संबंध जोड़ा जाता है। इसी आधार पर यह स्वयं को भारत के बाकी अन्य मुसलमानों से श्रेष्ठ मानते है। इन समुदायों का भारत में किसी भी तरह का परंपरागत पेशा नहीं रहा है। 'सैयदो' का संबंध 'हजरत फातमा' और 'हज़रत अली' के वंश से है। यह समुदाय शिया और सुन्नी दोनों में पाया जाता है। सामाजिक रूप से सैयद को सबसे पवित्र और उच्च श्रेणी का माना जाता है। शेख तथा सैयद समुदायों में आपसी वैवाहिक संबंध रखे जाते हैं। इसी प्रकार 'सिद्दीकी' भी एक समुदाय है जो मूलतः 'शेख' समुदाय का ही एक उपवर्ग है। इनका संबंध इस्लाम के पहले खलीफा 'अबूबक्र' तथा उनके वंश से है। ये चारो समुदाय मुसलमानों के 'अशराफ' वर्ग के अंतर्गत आते है।

भारतीय मुसलमानों में एक वर्ग उन मुसलमानों का भी है जो मूलतः देशी मूल के रहे हैं। इन मुसलमानों में राजपूत, जाट, मलिक और कौमे पंजाबियान का नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यह समुदाय मूलतः एक जातिगत संगठन है तथा इनका संबंध विशेष क्षेत्रों से है। जैसे- 'राजपूत' मुख्य रूप से राजस्थान में पाए जाने वाली एक सामाजिक समूह है, तो 'जाटो' का संबंध भी मुख्य रूप से हरियाणा और राजस्थान से है। कौमे पंजाबियान में दो वर्ग है, जिसमें एक वर्ग का संबंध पंजाब के 'अंबाला' से तथा दूसरे का संबंध दिल्ली तथा उसके आसपास के क्षेत्रों से है। यह समुदाय मूलतः लड़ाकू जातियों या फिर शासक वर्ग से संबंधित रही है, जिनके द्वारा इस्लाम धर्म अपना लिया गया है। उत्तर भारत में निवास करने वाले मुसलमानों का एक बड़ा समूह परंपरागत पेशे से जुड़ा हुआ है। इनका जातिगत विभाजन और नामकरण भी इनके पेशों के आधार पर हुआ है। ये मुसलमान 'अरजाल' श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। इनमें से बहुतों के द्वारा

वर्तमान में अपने परंपरागत व्यवसायों को छोड़ दिया गया है। इसके उदाहरणस्वरूप कोलकाता में निवास करने वाले अरजाल श्रेणी के मुसलमानों को देखा जा सकता है।

उत्तर भारत के परम्परागत पेशेवर मुसलमानों में 'अंसारी' एक बड़ा व्यावसायिक समूह है। इनकी पहचान 'मोमिन अंसार' या फिर 'बुनकर' के रूप में है। यह वर्ग कपड़ा या दरी बुनने का काम करता है। बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल में इनकी अच्छी खासी आबादी निवास करती है। इसी प्रकार 'मंसूरी' भी एक समूह है। यह समुदाय रुई धुनने का काम करता है, जिसके कारण इन्हें 'धुनिया' भी कहा जाता है। यह वर्ग भी अब अपने परंपरागत व्यवसाय को धीरे-धीरे छोड़ रहा है। 'दर्जी' उत्तर भारत में कपड़ा सिलने वाला एक प्रमुख मुस्लिम वर्ग है। एक वर्ग 'चूड़ीहार' के नाम से भी जाना जाता है। यह वर्ग 'चूड़ी' पहनाने का काम करता है। यह वर्ग मुसलमानों में 'प्रजा' की श्रेणी में आता है। त्योहारों तथा शादी-विवाह या अन्य अवसरों पर यह महिलाओं को चूड़ी पहनाने का काम करता है। इसके बदले अन्य समुदाय के लोगों द्वारा इन्हें पैसा, वस्त्र तथा खाद्य सामग्री दी जाती है। इसी तरह मुसलमानों में 'नाई' समूह भी है। इन्हें 'हज्जाम' भी कहा जाता है। यह समुदाय बाल काटने का काम करता है। लकड़ी का काम करने वाला एक मुस्लिम समुदाय 'खरडी' कहलाता है। मछली मारने वाला समुदाय 'निकारी' के नाम से जाना जाता है। एक वर्ग जो पक्षियों का शिकार करता है जिसे 'मिर्शीकार' या 'चिड़ीमार' के नाम से उत्तर भारत में जाना जाता है। इसी तरह भेड़-बकरी काटने वाले को 'कसाई' या 'कुरैशी' के नाम से जाना जाता है। इनका परंपरागत पेशा मांस बेचना है। मुसलमानों में शराब खींचने वाली भी एक जाति पाई जाती है, जिन्हें उत्तर भारत में 'कलाल' या 'रनकी' कहते हैं। इसी तरह सब्जी बेचने वाले को 'कुजड़ा' या 'राईन' कहा जाता है। कपड़ा धोने वाली जाति को 'धोबी', ढोल बनाने व बजाने वाली जाति को 'डफाली' के नाम से जाना जाता है। कपड़े की रंगाई का काम करने वाले समूह को 'पटवा' या 'रंगरेज' कहलाते हैं। गाना गाने वाले 'मोरासी' तथा भीख माँगने वाले समूह को 'फकीर' के रूप में जाना जाता है।

उत्तर भारत में पशुपालक मुसलमानों का भी एक व्यावसायिक समूह पाया जाता है। ये मवेशी और दूध वाले जानवरों का कारोबार करते हैं। इनमें शैख़जी, मेयो या मेव तथा घोसी नाम के तीन उप समूह पाए जाते हैं। उत्तर भारत के मुसलमानों में ऐसे भी समूह है, जो अछूत है। इस समुदाय में हिंदू और इस्लाम के मिश्रित रूप को देखा जा सकता है। इनके पेशों को भी अशुद्ध माना जाता है। इनमें हलालखोर, लालबेगी, नट आदि समूह शामिल है। यह सभी समूह सामाजिक रूप से अत्यंत पिछड़े हुए है। इन समूहों में आपस में वैवाहिक संबंध स्थापित नहीं किए जाते। कुछ क्षेत्रों में खानपान में भी प्रतिबंध देखे जा सकते हैं। इन समूहों में भी ऊँच-नीच की भावना पाई जाती है, हालांकि सार्वजनिक स्थलों जैसे- मस्जिद, कब्रस्तान, मदरसा, मकतब आदि जगहों पर भेदभाव नहीं किया जाता है।

भारत के पश्चिमी क्षेत्र गुजरात में मुसलमानों के कई उपसमूह पाए जाते हैं। इनमें दाऊदी बोहरा, सुन्नी बोहरा, आत्ना अशरी बोहरा, हलाई मेमन, कांची मेमन, इमामी, इस्माईली शिया मुख्य रूप से हैं। गुजरात का अधिकांश मुस्लिम समुदाय व्यापारी है। इनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी है। यह समूह शिया तथा सुन्नी दोनों सम्प्रदायों में स्थित है। इस वर्ग में भी आपसी वैवाहिक संबंधों का निषेध है। धार्मिक रूप से ये सभी समुदाय इस्लाम के भिन्न-भिन्न मतों को मानते हैं। इन्हें 'अशराफ' की श्रेणी में रखा जाता है। मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र में भी इन समूहों की कुछ आबादी निवास करती है।

इसके अलावा महाराष्ट्र में खोजा, कोंकणी, मोमिन, मुल्की, पटेल, कुरैशी, शेख, सय्यद, आदि कई जातियाँ निवास करती हैं। इसी तरह राजस्थान में मुसलमानों के समुदाय को व्यवसाय के साथ-साथ वेशभूषा के आधार पर बाँटा गया है। जिसमे खास रंग का घाघरा पहने वाले समूह पाए जाते हैं। जैसे- लाल घाघरा पहने वाले समूह को 'शेखावटी', काला घाघरा पहन ने वाले समूह को 'मादी' कहा जाता है। 'बिसाती' समूह के लोग घाघरा नहीं पहनते हैं। इसके अलावा पेशो के आधार पर यहाँ चूड़ीहार, सुनार, लुहार, धोबी, मोची, फकीर, मेयो आदि हैं। इसी तरह कश्मीर में मुसलमानों के अनेक

व्यावसायिक समूह पाए जाते हैं। वहाँ कश्मीरी पेशावरी व्यापारी, सय्यद, कलाल, बारबरदार , खच्चरवान तथा कुछ अन्य आदिवासी समूह के मुसलमान निवास करते हैं। दक्षिण भारत में मरक्कर, लब्बाई, मोपला, राठेर, केयी, मसल्लियार, थंगल, कायलार आदि उप समूह पाए जाते हैं। इनमें 'मरक्क्यार' नाव चलाने वाला तथा समुद्र के रास्ते व्यापार करने वाला समूह है। 'राठेर' घोड़ों से व्यापार करता है। 'लब्बाई' खुद को धार्मिक कार्यकर्ता मानते हैं। 'कायलार' जानवरों के कच्चे खाल और कबाड़ी का काम करते हैं, इसलिए इन्हें सामाजिक रूप से निम्न माना जाता है।

आमतौर पर यह कहा जाता है कि मुसलमानों में जात-पाँत तथा ऊँच-नीच की भावना सिर्फ भारतीय समाज में ही है और यह हिंदू समाज की वर्ग और जाति आधारित समाज के प्रभावस्वरूप उत्पन्न हुआ है, लेकिन 'अली अनवर' ने इस बात का भी खंडन किया है। उन्होंने विभिन्न तर्कों के माध्यम से बताया है कि यह भेदभाव अरब समाज में भी पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया है, जबकि इस्लाम धर्म की उत्पत्ति ही वहीं हुई है। इस्लाम की समतामूलक समाज की परिकल्पना पूर्ण रूप से कहीं भी लागू नहीं हो पाई है।

भारत का मुस्लिम समाज विभिन्न वर्गों में विभाजित है, जिसके कारण उन सभी वर्गों की अलग-अलग सामाजिक परिस्थितियाँ, समस्याएँ तथा आवश्यकताएँ हैं। भारतीय मुसलमानों में अशराफ वर्ग (शेख, सैयद, पठान) सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक रूप से सबसे आगे है। हालाँकि यह वर्ग मुसलमानों की कुल आबादी का लगभग 15% ही है, लेकिन प्रायः हर क्षेत्र में इन्हीं का वर्चस्व है और इन्हीं के द्वारा सभी भारतीय मुसलमानों का नेतृत्व किया जाता है। शेष दोनों वर्गों की सामाजिक नेतृत्व में कोई विशेष भूमिका नहीं दिखती, यही कारण है कि पसमांदा (अजलाफ एवं अरजाल) मुसलमानों की समस्याएँ उभरकर सामने नहीं आ पाती, जिसके कारण यह वर्ग उपेक्षित रह जाता है। मुसलमानों के संबंध में शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, नौकरी तथा जीवनस्तर संबंधी जितने भी आंकड़े प्रस्तुत किए जाते हैं, उनमें सर्वाधिक संख्या अशराफ मुसलमानों की होती है। जबकि यह आंकड़े पूरे मुस्लिम समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं। यदि अशराफ मुसलमानों को छोड़कर केवल पसमांदा समाज का सर्वे किया जाए तो स्थिति और भी पीड़ादायक और गंभीर रूप में सामने आ सकेगी।

भारतीय मुस्लिम समाज का विभिन्न वर्गों एवं जातियों में बँटा होना और सब को समान अवसर न मिल पाना मुस्लिम समाज के पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण है। इस संबंध में 'अली अनवर' लिखते हैं- "मुस्लिम समाज में ऊँच-नीच के भेदभाव और इसके एक बड़े तबके की हिंदू दलितों से भी खराब हालत अब इस कदर उजागर हो रही है कि इसे नजरअंदाज करना किसी के लिए मुमकिन नहीं है। भारत का संविधान लिखे जाने के वक्त मुस्लिम लीडरों ने अपने समाज के दलित तबकों के लिए किसी तरह का आरक्षण नहीं माँगा।......अपने अंदर की तफरीक (भेदभाव) और गैर बराबरी छिपाने का नतीजा अब नासूर के रूप में फूट रहा है। मुस्लिम समाज का एक बड़ा तबका लगातार पिछड़ेपन का शिकार है। उसके अंदर कोई ऐसी चेतना जागृत नहीं हुई और न ही कोई ऐसी व्यवस्था बनी है, जिससे उस तबके को बराबरी का अवसर मिले।"[1] भारत का पसमांदा मुसलमान अधिकांशतः लघु एवं कुटीर उद्योग से जुड़ा हुआ है। आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण तथा सरकार के उदासीन रवैये के कारण लघु एवं कुटीर उद्योगों को काफी क्षति पहुँची है, जिसके कारण बेरोजगारी की समस्या बढ़ी है। परिणामस्वरूप पसमांदा मुसलमान सामाजिक रूप से और अधिक पिछड़ गया है।

भारत में होने वाले आतंरिक गतिरोधों से भी मुसलमानों की स्थिति पर असर पड़ा है। जिसमें भारत-पाकिस्तान विभाजन का सर्वाधिक असर देखा जा सकता है। 1947 में हुए दंगों ने भारतीय मुसलमानों में भय का माहौल पैदा किया। आगे चलकर इस माहौल का फायदा राजनीतिक दलों द्वारा उठाया गया। सन् 1970-80 के दशक में सांप्रदायिक दंगों की संख्या में काफी बढ़ोत्तरी हुई, जिसके कारण मुस्लिम समाज समूह में रहने पर अधिक बल देने लगा। सामाजिक भेदभाव और असुरक्षा की भावना से त्रस्त भारतीय मुसलमान सामाजिक रूप से सीमित व संगठित दायरे में रहने के लिए विवश हुए। यह सामूहिकता गाँव तथा शहर दोनों में देखी जा सकती है। आमतौर पर आर्थिक रूप से विपन्न मुसलमानों की अलग बस्तियाँ होती है। इन बस्तियों में स्वास्थ्य, शिक्षा, बिजली, पानी, साफ-सफाई आदि पर सरकारी संस्थाओं द्वारा ध्यान नहीं दिया जाता है। सामूहिक रूप से अलग रहने के कारण मुसलमानों को मूलभूत सरकारी सुविधाओं से भी वंचित रहना पड़ता है। खासकर मुस्लिम महिलाओं पर इसका नकारात्मक असर देखने को मिलता है। समूह से बाहर अधिकांशतः बहुसंख्यक वर्गों द्वारा मुसलमानों के साथ

[1] अली अनवर, मसावात की जंग, पृष्ठ सं० 100

भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है। इस संबंध में रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं- "मुसलमानों को हिंदुओं ने, अपनी संस्कृति में, वही दरजा दिया, जो अछूतों को दिया जाता था।..... इब्नबतूता ने लिखा है कि मालाबार में मुसलमानों को लोटे में पानी नहीं दिया जाता था। पानी उसे हिंदू हाथ में पिलाते थे और जिस बर्तन में मुसलमान खाना खा लेता था, हिंदू उसे तोड़ डालते थे या तो मुसलमान को दे देते थे।"[1] इस तरह का सामाजिक भेदभाव व छुआ-छूत आज भी भारतीय समाज में व्याप्त है। हिंदूओं द्वारा बहुत पहले से ही मुसलमानों को 'म्लेच्छ' शब्द से सम्बोधित किया जाता रहा है। भारत के विभिन्न प्रांतों में मुसलमानों के लिए स्थानीय भाषाओं में अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। सरकारी संस्थाएँ भी मुसलमानों की समस्याओं को गंभीरता से नहीं लेती हैं। भारत में मुसलमानों को संदेह की दृष्टि से भी देखा जाता है। अधिकांश मामलो में बिना जाँच-पड़ताल के शक के आधार पर पुलिस द्वारा मुस्लिम युवाओं को गिरफ्तार कर लिया जाता है। बिना किसी साक्ष्य के ऐसे हजारों मुस्लिम युवक भारत की जेलों में बंद हैं। मुसलमानों के साथ फर्जी मुठभेड़ की घटना तो बिलकुल सामान्य हो गई है। आजकल गौ-हत्या, लव-जिहाद जैसे मुद्दों को आधार बनाकर प्रायोजित भीड़ द्वारा इस वर्ग को जान से मारने की घटनाओं (माब लिंचिंग)में काफी वृद्धि हुई है। यही नहीं धार्मिक आधार पर ही मुस्लिम बच्चियों और युवतियों के साथ बलात्कार की घटनाओं को भी अंजाम दिया जा रहा है। बात-बात पर भारतीय राजनेताओं तथा हिंदूवादी संगठनों द्वारा भारतीय मुसलमानों को देशद्रोही कहा जाता है और उन्हें पाकिस्तान चले जाने की नसीहत दी जाती है। भारत में बहुसंख्यक वर्ग द्वारा मुस्लिम समाज के भीतर अनेक माध्यमों से भय उत्पन्न करने का लगातार प्रयास किया जाता है। मुसलमानों की सुरक्षा संबंधी समस्या को लेकर 'सच्चर कमेटी' ने भी चिंता व्यक्त की है।

मुस्लिम समाज शैक्षणिक रूप से अत्यंत पिछड़ा हुआ समाज है। आमतौर पर गरीब मुसलमान अपने बच्चों को कुरान की शिक्षा तक ही सीमित रखते हैं। इस वर्ग की अशिक्षा का एक बड़ा कारण गरीबी है। गरीब मुसलमान अपने बच्चों को मदरसों में पढ़ाते हैं। मदरसों में उर्दू और अरबी माध्यम से कुछ सामान्य शिक्षा तथा धार्मिक जानकारी प्रदान की जाती है। जिसका आज के दौर में कोई उपयोगिता नहीं है। मदरसों में दी जाने वाली शिक्षा रोजगारपरक नहीं होती, जिसके कारण उनके सामाजिक जीवनस्तर में कोई परिवर्तन नहीं हो पाता। बीच में ही पढ़ाई छोड़ने के मामलों में

---

[1] रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ सं० 240-241

मुस्लिम बच्चों की संख्या भारत में सर्वाधिक है। उसमें भी लड़कियों की स्थिति और अधिक दयनीय है। मुसलमानों के साक्षरता दर को अन्य वर्गों से तुलना करते हुए सच्चर कमेटी द्वारा एक सारणी प्रस्तुत की गयी है।[1]

सच्चर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में मुसलमानों की शैक्षणिक स्थिति पर विचार करते हुए कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं। इस कमेटी ने मुसलमानों के शैक्षणिक पिछड़ेपन के पीछे कई कारण बताये हैं। जिनमें मुस्लिम बहुल इलाकों में प्रारंभिक स्तर से आगे के स्कूलों की कमी, कुछ राज्यों में स्कूल के पाठ्य-पुस्तकों में सांप्रदायिक विषय-वस्तु और विद्यालय का माहौल मुसलमानों के विपरीत होना, उर्दू भाषा का राजनीतिकरण, मदरसों को बिना किसी साक्ष्य के आतंकवाद का केंद्र घोषित किया जाना, उच्च स्तर पर नौकरी आदि में भेदभाव, मुस्लिम समुदाय के भीतर शिक्षा पद्धति को लेकर यह विश्वास न होना कि वह निश्चित रूप से विधिवत रोजगार दिलाने में मददगार हो सकेगी, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं को मान्यता देने में सरकार द्वारा प्रतिरोध, स्त्री-शिक्षण संस्थानों की कमी आदि शामिल है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था से दूर रहने के कारण भारत में मुसलमानों की शैक्षणिक स्थिति दलितों से भी निम्न है। सन् 2007 में 'रंगनाथ मिश्रा कमेटी' ने अपनी रिपोर्ट में मुसलमानों को 10% आरक्षण देने की सिफारिश की है, ताकि मुसलमानों के सामाजिक स्तर को सुधारा जा सके। 'अली अनवर' ने बिहार में अपने शोध और सर्वेक्षण से यह निष्कर्ष निकाला है कि धर्म के आधार पर सभी मुसलमानों को आरक्षण की आवश्यकता नहीं है। खासतौर पर अशराफ मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति अन्य मुसलमानों की अपेक्षा काफी अच्छी है, इसलिए यदि सरकार को मुसलमानों की स्थिति को बेहतर बनाना है तो आरक्षण का लाभ केवल पसमांदा यानी पिछड़े हुए मुसलमानों को मिलना चाहिए। इस आधार पर भारत में बिहार सहित कई राज्यों में आरक्षण का प्रावधान भी किया गया है, लेकिन अभी भी यह पूरी तरह लागू नहीं हो पाया है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार सात साल से ज्यादा उम्र की श्रेणी में मुस्लिमों में सबसे ज्यादा 42.72 प्रतिशत लोग निरक्षर हैं। वहीं मुसलमानों में स्नातक स्तर की शिक्षा का प्रतिशत 2.76 है। जातिगत स्थितियाँ भी मुसलमानों के शैक्षणिक स्थिति पर असर डालती हैं। एस० पी० जैन लिखते हैं-"संभव है कि कुछ लोग निम्न जाति के होते हुए भी अपने बच्चों को अपने से बेहतर शिक्षा दिलवाना

---

[1] परिशिष्ट की तालिका 4.1 में देखें

चाहते हों, लेकिन आर्थिक कारणों से ऐसा करने में असमर्थ हों। यह बात कहाँ तक सही है इसका सत्यापन करने के लिए हम विभिन्न जातियों की शैक्षिक आकांक्षाओं को तालिका 8 में प्रस्तुत कर रहे हैं।”[1]

भारत में मुसलमानों के ख़राब जीवन स्तर का एक बड़ा कारण उनकी आर्थिक स्थिति भी रही है। भारत के अधिकांश मुसलमान भूमिहीन है। गाँवों में केवल 1.2 प्रतिशत मुसलमानों के पास 4.1 एकड़ या उससे अधिक खेती योग्य भूमि है। जबकि शहरों में स्थिति और भी सोचनीय है, इतनी भी जमीन उपलब्ध नहीं है कि वह अपना जीवन स्वस्थ तरीके से बसर कर सके। शहरी और कस्बाई मुसलमान अधिकांशतः तंग गलियों तथा बदबूदार स्थानों पर जीवन जीने को विवश हैं। भूमि पर अधिकार न होने के कारण मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति पर गहरा असर पड़ा है। यही नहीं सामूहिक रूप से कम स्थान पर अधिक जनसंख्या के निवास से स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ भी मुसलमानों के सामने विकट स्थिति में है। सच्चर कमेटी के हवाले से अगर देखा जाए तो मुसलमानों में जन्म दर अपेक्षाकृत अधिक है, लेकिन मृत्यु दर कम है। शिशुओं के रोगग्रस्त तथा कुपोषित होने की संभावना मुस्लिम समाज में अधिक पाई जाती है। मुस्लिम महिलाओं में पुरुषों तथा अन्य वर्ग की महिलाओं की अपेक्षा स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ अधिक पाई जाती हैं। इसका एक कारण मुस्लिम महिलाओं का सर्वाधिक अशिक्षित होना भी है। मुस्लिम महिलाओं के पिछड़ेपन के अन्य कारणों में मुस्लिम समाज की आतंरिक स्थितियाँ भी जिम्मेदार हैं, जिसमे परिवार पर पुरुषों का वर्चस्व, पर्दा-प्रथा, धार्मिक रूप से पुरुषों को अधिक स्वतंत्रता, जिसमें एक साथ चार पत्नियों को रखने की छूट, तलाक के मामलों में सामाजिक शिथिलता, आदि कारणों को देखा जा सकता है। मुस्लिम समाज का धर्म केन्द्रित होना भी इस समाज के पिछड़ेपन की एक मुख्य वजह है। मुल्ले-मौलवीयों द्वारा परिवार नियोजन को धर्म के विरुद्ध घोषित किया गया है। यही कारण है कि परिवार नियोजन का प्रसार भी इस समाज में खुलकर नहीं हो पाता है। हालांकि पिछले कुछ वर्षों से पढ़े-लिखे मुसलमानों के बीच परिवार नियोजन को तेजी से अपनाया गया है। कुरान में परिवार नियोजन पर कहीं भी मनाही नहीं है लेकिन कुरान का ज्ञान अधिकांश मुसलमानों के बीच न होने के कारण इस तरह के अफवाहों का शिकार होना पड़ता हैं। मुस्लिम समाज में आज भी अधिकांश पारिवारिक

[1] सं० इम्तियाज अहमद, पृष्ठ सं० 216 (परिशिष्ट में तालिका 8 देखें)

व सामाजिक समस्याओं का समाधान धार्मिक विधि-विधान के आधार पर किया जाता है, जिसके लिए कुरआन और हदीस का सहारा लिया जाता है। भारत में ज्यादातर मुसलमान कुरान को पढ़ तो लेते हैं लेकिन उसके अर्थ को नहीं समझ पाते। इसके लिए लोगों को मुल्ले-मौलवियों पर निर्भर रहना पड़ता है। कई बार इसलिए भी ढेर सारी सामाजिक समस्याएँ जन्म ले लेती है। यही नहीं 'पर्सनल ला बोर्ड' भी मुसलमानों के सामाजिक उत्थान के लिए कोई भी नया कानून बनाने में सक्रिय नहीं रहा है, जिससे कि मुस्लिम समाज में फैली कुरीतियों को दूर किया जा सके। इस प्रकार मुल्ले-मौलवियों के मनगढ़ंत फतवे भी मुसलमानों के सामाजिक पिछड़ेपन के लिए जिम्मेदार है।

वर्तमान समय में मुस्लिम समाज के सामने रोजगार संबंधी समस्या अधिक विकट रूप में सामने आई है। पसमांदा समाज के अधिकांश उपवर्गों का कोई न कोई परंपरागत पेशा अवश्य रहा है। अजलाफ और अरजाल समाज का विभाजन तथा नामकरण भी इसी आधार पर किया गया है- जैसे- दर्जी (कपड़ा सिलना), रंगरेज (कपड़ा रंगने का काम), जुलाहा (बुनाई का काम), धुनिया (रुई धुनने का काम), नट (नौटंकी दिखाने वाला), डफाली (ढपली बजाने वाला), भटियारा (मुसाफिरों के रुकने की व्यवस्था करने वाला), नाई (बाल काटने वाला) आदि इसी तरह कई जातियाँ हैं। 'हसन अली' ने मुसलमानों में जाति प्रथा के तत्वों की खोज करते हुए लिखा है-"क्षेत्रीय संदर्भ में, गाँव और शहर दोनों में, मुसलमान अपने समुदाय को बिरादरियों में वर्गीकृत करते हैं जिनकी मोटे तौर पर तीन सोपानिक श्रेणियाँ हैं- उच्च, मध्यम और निम्न। इसके लिए तीन श्रेणीकरण के सबसे प्रमुख स्थानीय तत्वों अर्थात वंश और पुश्तैनी पेशों को आधार बनाया गया है। ये पेशे साफ और गंदे, और उसी आधार पर श्रेष्ठ या निकृष्ट समझे जाते हैं। सैयदों और पठानों को छोड़ दे तो बाकि सभी जातियों की पुश्तैनी पेशे की एक पृष्ठभूमि है जिनको वे या तो कमोबेश जारी रखे हुए हैं या एकदम त्याग चुके हैं।"[1] भारतीय मुसलमानों में जाति व्यवस्था और सामाजिक स्तरीकरण तथा परंपरागत पेशे से जुड़े होने का एक बड़ा कारण भारतीय समाज की परंपरागत जाति व्यवस्था को भी माना जाता है। इस संबंध में 'नासिरा शर्मा' लिखती हैं-"भारतवर्ष की सामाजिक संरचना से बच पाना किसी भी हिंदुस्तानी के लिए असंभव है। भौगोलिक परिस्थितियों और सांस्कृतिक गतिविधियों ने हर धर्म, भाषा, साहित्य, लोकाचार को अपने रंग में रंग

---

[1] सं० इम्तियाज अहमद, भारत के मुसलमानों में जाति व्यवस्था और सामाजिक स्तरीकरण, पृष्ठ सं० 51

लिया है। इसलिए भारतीय मुसलमानों में भी वर्ग की असमानता की चेतना है।"[1] भारत में मुसलमानों का सामाजिक स्तरीकरण भले ही हिंदुओं के तर्ज पर हुआ है, लेकिन उसमें कुछ विभिन्नताएँ भी हैं। यह स्तरीकरण सामाजिक व्यवस्था को शासित करने का नियम या उपादान नहीं है, जैसा कि हिंदू समाज में देखा जाता है। मुस्लिम समाज का यह स्तरीकरण कई स्थानों पर परिवर्तनशील भी है, अर्थात निम्नवर्ग का मुसलमान अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार निम्न से उच्चवर्ग में शामिल हो सकता है। कुछ स्थानों पर समुदाय विशेष में सरपंच जैसी व्यवस्था भी पाई गई है।

मुसलमानों के लिए एक बड़ी चुनौतीपूर्ण स्थिति सांप्रदायिकता की भी है। 'सच्चर कमेटी' की रिपोर्ट के अनुसार साम्प्रदायिकता न सिर्फ मुस्लिम समाज की एक समस्या है बल्कि उसके विकास के लिए बाधक भी है। दंगों के डर से बहुत सारे मुसलमान अपने बच्चों को अपने समाज से दूर तथा बहुसंख्यक बाहुल्य शिक्षण-संस्थानों में भेजने से डरते हैं। सांप्रदायिक दंगों के कारण भारत में मुसलमानों के पलायन की घटनाएँ भी बढ़ी है। बहुधा मुसलमान दंगो के डर से अपना घर छोड़कर मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों में जाने को विवश हुए हैं। 'द वायर' पत्रिका के अनुसार अकेले 2002 के गुजरात दंगे में करीब दो लाख लोग विस्थापित हुए हैं। इनमें से मुस्लिम संस्थाओं और एन.जी.ओ. की मदद से करीब 16,087 लोगों को गुजरात की रिलीफ कालोनियों में बसाया गया। शेष मुसलमान अपना घर छोड़ने पर विवश हुए। ऐसी स्थिति में मुसलमानों के काम-काज, रोजगार तथा सामाजिक संबंधों के बिखर जाने से इस वर्ग की दयनीय स्थिति होना स्वाभाविक है। इस प्रकार अनेक ऐसी छोटी-बड़ी घटनाएँ भारत में प्रतिदिन घटती रहती हैं, जिनके कारण मुसलमानों को अपना घर, गाँव तथा जमीन छोड़ना पड़ता है। खासतौर पर इस तरह की घटनाओं के पीछे राजनीतिक गतिविधियाँ सक्रिय भूमिका निभाती है। भारतीय राजनीति में अल्पसंख्यक बनाम बहुसंख्यक की राजनीति पिछले 30-35 वर्षों में काफी सक्रिय हुई है। यह राजनीति समय-समय पर हिंदू बनाम मुस्लिम का रूप लेती है। भारत में दक्षिणपंथी विचारधारा लगातार मुसलमानों के प्रति बहुसंख्यक वर्ग में नफरत का प्रचार कर रही है। सन् 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस के पश्चात् भारतीय राजनीति की दिशा तो बदली ही, साथ ही सामाजिक संरचना पर भी

[1] नासिरा शर्मा, राष्ट्र और मुसलमान, पृष्ठ सं० 228

इसका गहरा असर हुआ। इस विध्वंस ने यह साबित कर दिया कि भारत में मुसलमान दोयम दर्जे का नागरिक है और उसे यदि भारत में रहना है तो बहुसंख्यक वर्ग की अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी, क्योंकि यह विध्वंस कानून, न्यायपालिका तथा सरकार की अवहेलना करते हुए खास विचारधारा तथा वर्ग विशेष को समाज में स्थापित करने का एक बड़ा प्रयास था।

भारत में 70 और 80 के दशक से निरंतर लोकतांत्रिक शक्तियों का पतन देखा जा सकता है। इस संबंध में 'असगर वजाहत' लिखते हैं-"आज से 25 साल पहले यह कहा जाता था कि भारत में मुसलमानों का भविष्य इस बात पर निर्भर है कि देश में लोकतांत्रिक शक्तियाँ कितनी सुदृढ़ होती हैं। दुर्भाग्य से पिछले 25-30 सालों में लोकतांत्रिक शक्तियाँ कमजोर हुई हैं, जिसके कारण आज बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के बीच अविश्वास और हिंसा का रिश्ता बन गया है।"[1] स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में लोकतान्त्रिक शक्तियों को सुदृढ़ बनाने की दिशा में कोई सकारात्मक पहल नहीं किया गया। सरकार जनता को वोट बैंक के रूप में देखती है और चुनावी प्रक्रियाओं में उम्मीदवारों के चयन से लेकर चुनावी घोषणा-पत्रों और योजनाओ के क्रियान्वयन तक में जाति और धर्म को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाता है। सरकार अल्पसंख्यक समाज के हितो और उनकी सुरक्षा को लेकर गंभीर नहीं है। भारत में मुसलमान सबसे बड़ा अल्पसंख्यक वर्ग होने के कारण हमेशा निशाने पर रहता है कोई पार्टी उसे वोट बैंक के लिए इस्तेमाल करती है, तो कोई उसका डर जनता में फैलाकर धार्मिक समीकरण को मजबूत करती है। मुसलमानों के सामाजिक स्तर को सुधारने के लिए कोई ठोस कदम किसी भी सरकार द्वारा नहीं उठाया गया है और न ही उन्हें सामाजिक प्रगति के लिए प्रोत्साहन ही किया गया है। मुस्लिम समाज का सही नेतृत्व न हो पाने के कारण भी आज यह वर्ग हाशिए पर खड़ा है। अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक स्तरों और विविधताओं से भरा मुस्लिम समाज आज अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्ष कर रहा है।

1.2. आर्थिक स्थिति-

भारत में मुसलमानों की आर्थिक स्थिति हिन्दुओं तथा अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों की तुलना में काफी खराब है। जैसा कि हम जानते हैं कि भारत में मुस्लिम समाज

---

[1] सं० राजेन्द्र यादव, हंस पत्रिका, वर्ष 1, अंक 1, अगस्त 2003, पृष्ठ सं० 5

जातिगत आधार पर ठीक वैसे ही विभाजित है जैसे कि हिन्दू समाज। अतः मुसलमानों की आर्थिक स्थिति को उसके विभिन्न उपवर्गों के आधार पर अलग-अलग करके देखा जाना चाहिए। अन्यथा मूल समस्या तक पहुँचना संभव नहीं हो पायेगा। मुस्लिम समाज को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है जिसे अशराफ, अजलाफ और अरजाल कहा गया है। इन तीनो वर्गों में 'अशराफ' मुसलमानों की स्थिति सबसे बेहतर है, उनकी तुलना में अजलाफ और अरजाल की स्थिति बेहद कमजोर है। अजलाफ़ और अरजाल मुसलमानों को 'पसमांदा' के नाम से जाना जाता है। 'पसमांदा' शब्द का अर्थ ही होता है 'पिछड़ा हुआ' अर्थात् जो मुस्लिम समाज सामाजिक, आर्थिक और अन्य दृष्टियों से पिछड़ा हुआ है उसे पसमांदा के अन्तर्गत रखा गया है। भारत के पसमांदा मुसलमान अधिकांशतः परम्परागत पेशे से जुड़े हुए है। जिनमें से अधिकतर मुसलमान मजदूर हैं। वह कठोर शारीरिक परिश्रम करते हैं, फिर भी जीवनयापन की मूलभूत सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। भारत में मुसलमानों का लगभग 85% हिस्सा इसी वर्ग से संबंध रखता है। इस वर्ग के मुसलमानों में अधिकांशतः हिंदुओं की निचली जातियों से धर्मांतरण कर इस्लाम धर्म अपनाने वाले लोग शामिल हैं। औद्योगीकरण और पूँजीवाद के आगमन से इन मुसलमानों के परंपरागत पेशों का विनाश हुआ और इनमें से अधिकांशतः बेरोजगार हो चुके हैं। सच्चर कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार अगर इस स्थिति को देखें तो यह कमेटी कहती है-"पारंपरिक रोजगार समाप्त होने के कारण जीवनयापन के साधनों की अनुपलब्धता मुस्लिमों के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण है। देश में आर्थिक तेजी के बावजूद मुस्लिमों को 'प्रतियोगी' शक्तियों का सर्वाधिक नुकसान उठाना पड़ा है। आंतरिक और बाह्य उदारीकरण की वजह से आयात बढ़े हैं और निर्माण कंपनियों में लगे कर्मी विस्थापित हुए, उनका रोजगार छिना है।"[1] देश के विभिन्न राज्यों में मुसलमानों की यही स्थिति है। सरकारी नौकरियों में भी मुसलमानों की भागीदारी न्यून है, जो उसके आर्थिक पिछड़ेपन को दर्शाती है। यही नहीं निजी काम-काज के क्षेत्रों में भी मुसलमानों की हिस्सेदारी काफी कम है। प्रायः मुसलमानों की खराब आर्थिक स्थिति को उसके धार्मिक स्वरूप से जोड़कर देखा जाता है जबकि मुसलमानों के खराब आर्थिक स्थिति के पीछे आर्थिक उदारीकरण तथा औद्योगीकरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। औद्योगीकरण के परिणामस्वरुप भारी संख्या में विभिन्न पारम्परिक पेशों से जुड़े हुए

[1] सच्चर कमेटी रिपोर्ट, पृष्ठ- 19

कुशल कारीगर बेकार हुए हैं। इसके साथ ही सरकार द्वारा लघु एवं कुटीर उद्योगों के प्रति उदासीन रवैया भी छोटे-छोटे उद्योग-धंधों को क्षति पहुँचाने में बड़ा कारण रही है।

भारतीय मुसलमानों में अधिकांश मुसलमान भूमिहीन हैं। गाँवों की अपेक्षा शहरों में निवास करने वाले मुसलमानों की संख्या अधिक है। ये मुसलमान कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण तंग गलियों में छोटे-छोटे सुविधाविहीन मकानों में कठिनता से अपना जीवनयापन करते हैं। शिक्षा के लिए अधिक खर्च करने में सक्षम न हो पाने के कारण इनकी शिक्षा मदरसों में ही हो पाती है। मदरसों में दी जाने वाली शिक्षा आधुनिक शिक्षा से कोसो दूर और रोजगारपरक भी नहीं होती है। इस प्रकार शिक्षा की समुचित व्यवस्था न हो पाना भी इस वर्ग के पिछड़ेपन का महत्त्वपूर्ण कारण रहा है। इसी सन्दर्भ में अगर मुस्लिम महिलाओं की बात करे तो मुस्लिम महिलाओं की आर्थिक स्थिति अन्य समुदाय की महिलाओं से काफी खराब है। इस वर्ग की महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति और अधिक सोचनीय है। N.S.S.O की रिपोर्ट के अनुसार 1999-2000 की अवधि में मुस्लिम ग्रामीण महिलाओं की कार्य में भागीदारी मात्र 16% रही है जबकि अन्य समुदाय की ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी 30% है। इसी तरह शहरी क्षेत्रों में कुल महिलाओं के 16% भागीदारी की अपेक्षा मुस्लिम महिलाओं की भागीदारी केवल 10% ही है। इसी रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में आधे से अधिक मुसलमान भूमिहीन है जबकि 39% मुसलमान छोटे किसान हैं। केवल 1.2% मुसलमानों के पास 4.1 एकड़ या उससे अधिक भूमि है। भारत में अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है और खेती के अनुसार ही उसकी सामाजिक और राजनीतिक स्थिति सुनिश्चित होता है। खेती को भारत में बड़ा आर्थिक स्रोत माना जाता है जबकि अधिकांश मुसलमानों के भूमिहीन होने के कारण उनकी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थिति पर इसका बुरा असर देखा जा सकता है।

इन कारणों के अलावा इस वर्ग के भीतर जागरूकता का अभाव व सरकारों द्वारा की जा रही उपेक्षा पिछड़ेपन का प्रमुख कारण रही है। सरकारी योजनाएँ इस वर्ग की पहुँच से दूरी तो होती ही हैं, साथ ही सघन मुस्लिम आबादी वाले क्षेत्रों में ख़राब सड़के, यातायात के साधनों का अभाव, सफाई, बिजली, पानी, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी से उनके कामकाज व जीवन-यापन पर बुरा प्रभाव पड़ा है। बैंको व सहकारी संस्थाओं द्वारा मिलने वाली सुविधाओं में भी मुसलमानों के साथ होने वाले पक्षपात से भी मुसलमानों के उद्योग-धंधों पर बुरा असर पड़ा है। गरीबी-रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले

मुसलमान अधिकांशतः सरकार द्वारा मिलने वाली सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। इसका एक कारण तो जानकारी का अभाव है और दूसरा सरकारी संस्थाओं द्वारा इनके साथ भेदभावपूर्ण रवैया। मुस्लिम महिलाओं को राशन कार्ड तथा अन्य योजनाओं के लिए आवेदन करने में अधिकारियों के दुर्व्यवहार को झेलना पड़ता है। गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वालों मुसलमानों के संबंध में सच्चर कमेटी की रिपोर्ट कुछ इस प्रकार है-"2004-05 में भारत के 22.7% लोग गरीब थे, जिनकी संख्या 25 करोड़ दस लाख से अधिक थी। एस०सी०/ एस०टी० के लोग सर्वाधिक गरीब हैं जिनका एच सी आर अनुपात 35% है। गरीबी की सूची में दूसरे स्थान पर मुसलमान हैं, जिनमें 31% लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं। सामान्य हिंदू सबसे कम गरीबों की श्रेणी में पहले स्थान पर है जिनका हेडकाउंट अनुपात केवल 8.7% है। ओ.बी.सी. का एच.सी.आर. अनुपात 21% है जो राष्ट्रीय औसत के करीब है।"[1] भारत में पश्चिम बंगाल और असम के ग्रामीण क्षेत्रों में मुसलमानों की गरीबी का स्तर सर्वाधिक है। महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश के शहरी क्षेत्रों में गरीबी का स्तर एस०सी०/एस०टी० की तुलना में अधिक पाया गया है। ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में गरीबी का स्तर थोड़ा अधिक है। मुसलमानों की आर्थिक स्थिति एस०सी०/एस०टी० की अपेक्षा थोड़ी ठीक है। ग्रामीण क्षेत्रों में 70% हिंदू महिलाएँ बाहरी कामकाज में हिस्सा लेती है जबकि सिर्फ 29% मुस्लिम महिलाएँ ही बाहरी कामकाज में हिस्सा ले पाती हैं। भारत में मुस्लिम महिलाओं की खराब स्थिति के पीछे धार्मिक जड़ता तो है ही, साथ ही आर्थिक पिछड़ापन भी बड़ा कारण माना गया है। कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि आर्थिक रूप से संपन्न मुसलमान भी शिक्षा के प्रति उदासीन रहता है, विशेषकर महिलाओं के शिक्षा के सन्दर्भ में। देखा जाए तो स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनाने में मुस्लिम समुदाय की विशेष रुचि नहीं दिखाई देती। विभिन्न राज्यों में मुस्लिम महिलाओं की स्थिति भिन्न-भिन्न पाई गई है। 'जोया हसन' मुस्लिम महिलाओं की खराब स्थिति का कारण मुसलमानों की खराब आर्थिक स्थिति को मानती हैं, वे लिखती हैं-"मुस्लिम औरतों के पास आर्थिक स्वतंत्रता नहीं है। उनमें शिक्षा का अभाव है। वे स्कूल तो जाती हैं पर चौथी-पाँचवी कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ देती हैं। उनकी पढ़ाई छोड़ने का कारण यह नहीं है कि मुस्लिम औरत पर्दे में रहती है। स्कूल सहशिक्षा के ज्यादा है ये कारण बहुत मामूली है। मुस्लिम औरत का हिंदुस्तान में नहीं पढ़ने का मूल कारण गरीबी है। उनकी स्थिति

[1] सच्चर कमेटी रिपोर्ट, पृष्ठ 145

अनुसूचित जाति की तरह है जिस वजह से अनुसूचित जाति की औरत नहीं पढ़ पाती उसी वजह से मुस्लिम औरत भी नहीं पढ़ पाती।"[1] महँगाई के दौर में पति-पत्नी दोनों का कमाना गरीब व मध्यम आय वर्ग के लोगों के लिए आवश्यक हो चुका है। ऐसे में मुस्लिम महिलाओं की खराब शैक्षणिक स्थिति उनके आर्थिक स्थिति को भी प्रभावित करता है।

भारत की बड़ी आबादी आरम्भ से ही परंपरागत पेशो से जुड़ी रही है। जिसमें मुसलमानों की हमेशा से ही बड़ी भागीदारी रही है। शहरी क्षेत्रों में 57 फ़ीसदी मुसलमान स्वरोजगार से जुड़े हुए हैं, तो वहीं हिंदू मात्र 43 फ़ीसदी ही स्वरोजगार से जुड़े हैं। शहरी मुस्लिम महिलाएँ 17 फ़ीसदी स्वरोजगार से जुड़ी हुई है जबकि हिंदू महिलाएँ 60 फ़ीसदी। आधुनिकता के साथ कल-कारखानों के विकास से सर्वाधिक क्षति परंपरागत व्यवसायों का हुआ है। भारत में पसमांदा मुसलमानों के परंपरागत पेशे से जुड़े होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति काफी प्रभावित हुई है। स्वरोजगार में लागत या कुल परिश्रम के अनुसार लाभ का प्रतिशत कम होता है। नौकरी पेशा मुसलमानों में अधिकांश मुसलमान मजदूर के रूप में काम करते हैं। उच्च स्तर की नौकरियों में मुसलमानों की हिस्सेदारी अपेक्षाकृत बहुत कम है। पुलिस प्रशासन कोर्ट आदि में केंद्र स्तर पर मुसलमानों की भागीदारी मात्र 6% है जबकि हिंदुओं की 42% है और एस०सी०-एस०टी० की 23-23% है। यही कारण है कि मुसलमानों की आर्थिक स्थिति अधिक खराब है। शहरी क्षेत्रों में कुल मुस्लिम कर्मचारी मात्र 27 फ़ीसदी है जबकि एस०सी /एस०टी० की भागीदारी 40% पाई गई है। N.S.S.O की रिपोर्ट के अनुसार धार्मिक समूहों के रोजगार के प्रकार के संबंध में आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं।[2] मुसलमानों द्वारा अपनाये गये उद्योग धंधों को सच्चर कमेटी जिस रूप में चिन्हित उसके अनुसार तंबाकू, कपड़ा उद्योग, वाहनों की बिक्री, मरम्मत और सुधार, विद्युत मशीनों एवं उपकरण के निर्माण में मुसलमानों की भागीदारी अपेक्षाकृत अधिक है। इसके अलावा गैर निर्माण क्षेत्रों में थोक विक्रय, कमीशन एवं फुटकर व्यापार में मुस्लिम कारीगरों का अनुपात ज्यादा है। इन रोजगार क्षेत्रों में निचले स्तर के कामगारों को ज्यादा फायदा नहीं होता है जबकि अधिकांश मुसलमान निचले स्तर के कामगार ही होते हैं। इसमें भी

---

[1] हंस पत्रिका, सं० राजेन्द्र यादव, वर्ष 1, अंक 1, अगस्त 2003, पृष्ठ संख्या- 15

[2] परिशिष्ट में सारणी 5 देखें

मालिक या सेठ के रूप में छोटे-छोटे पूँजीपति श्रमिक वर्ग अथवा कारीगरों का भरपूर शोषण करते हैं। मुसलमानों का उच्चवर्ग परिश्रम में विश्वास नहीं रखता है, वह मजदूर या कारीगर के रूप में कम ही देखे जातें हैं जबकि पसमांदा की स्थिति ठीक इसके उलट है। सरकारी नौकरियों, उच्च शिक्षण संस्थानों, राजनीतिक व सामाजिक नेतृत्व में सर्वाधिक संख्या उच्चवर्गीय मुसलमानों की ही होती है। स्वरोजगार, कारीगर एवं श्रमिक के रूप में पसमांदा मुसलमानों की संख्या अधिक होती है। विभिन्न और संगठित क्षेत्र में मुस्लिम कामगार और विनिर्माण क्षेत्र में विकास की दर को सारणी के माध्यम से देखा जा सकता है।[1]

भारत में मुसलमानों की स्थिति सामाजिक, आर्थिक रूप से अत्यंत सोचनीय है। भारतीय मुसलमान मुख्य रूप से पारंपरिक पेशों से जुड़ा रहा है, लेकिन भूमंडलीकरण के प्रभाव से जितने भी लघु एवं कुटीर उद्योग का विनाश हुआ, उसमें सर्वाधिक संख्या मुसलमानों की देखी जा सकती है। सरकारों के उदासीन रवैये ने इस समस्या को और भी जटिल बनाया है। भारत में जीविका का मुख्य स्रोत कृषि को माना गया है। यहाँ 70 फ़ीसदी से अधिक आबादी के जीविकोपार्जन का स्रोत कृषि ही है, लेकिन भारत में मुसलमानों के पास रहने योग्य भूमि भी अपर्याप्त है। किसी प्रकार से इस वर्ग द्वारा अपना जीवन गुजर-बसर किया जाता है। विज्ञान के इस युग में आवश्यक है कि रोजगार और स्वास्थ्य के लिए व्यक्ति शिक्षित हो। शिक्षा सरकारी नौकरियों को प्राप्त करने का भी मुख्य स्रोत है, लेकिन भारतीय मुसलमान शिक्षा से कोसों दूर है। उसकी शुरुआती शिक्षा मुश्किल से मदरसों में हो पाती है। ऐसे में सरकारी क्षेत्रों में भी इस वर्ग की भागीदारी न्यून है। इस प्रकार भारतीय मुसलमान आर्थिक तंगी से जूझते हुए आज मजदूरी करने को विवश है। इस वर्ग के उत्थान के लिए आवश्यक है कि ऐसे नीतियों का निर्माण किया जाए, जिससे इस वर्ग का जीवन स्तर सुधर सके।

1.3.राजनीतिक स्थिति-

अंग्रेजों द्वारा भारत को उपनिवेश बनाये जाने के बाद भारतीय शासन व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए। राजशाही शासन व्यवस्था के स्थान पर अंग्रेजों ने शासन के लिए नए तरह की व्यवस्था शुरू की। प्रारंभ में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन भारत के विभिन्न प्रांतों में लागू किया गया और फिर कंपनी का शासन समाप्त कर ब्रिटिश हुकूमत

[1] परिशिष्ट में सारणी 5.11 देखें

को सीधे-सीधे लागू कर दिया गया। इस नयी शासन व्यवस्था में अंग्रेजों ने भारतीय मुसलमानों को काफी उपेक्षित किया। 'रजनी कोठारी' के अनुसार- "शुरू में अंग्रेजों की नीतियाँ मुसलमानों के खिलाफ जाती हुई लगती थी। चूँकि उन्होंने सत्ता मुसलमानों को बेदखल करके ही हासिल की थी, इसलिए उन्होंने भरसक कोशिश की कि नए साम्राज्य में मुसलमानों को लाभकारी हैसियत न मिलने पाए।"[1] अंग्रेजी शासन व्यवस्था द्वारा मुस्लिम विरोधी नीतियों का विस्तारपूर्वक उल्लेख 'बी०डब्ल्यू० हंटर' द्वारा अपनी पुस्तक 'भारतीय मुसलमान' में किया गया है। इस पुस्तक में उन सभी सन्दर्भों को देखा जा सकता है कि किस तरह भारतीय राजनीति और शासन व्यवस्था में मुसलमानों की भागीदारी कम होने लगी थी। अंग्रेजों की कूटनीति को समझते हुए 'सर सैयद अहमद खान' द्वारा अंग्रेजी शिक्षा नीति का समर्थन किया गया और 'अलीगढ़ एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज' की स्थापना की गयी, जिससे भारतीय शासन व्यवस्था में मुसलमानों की भागीदारी बढ़ाई जा सके।

अंग्रेजी शासन व्यवस्था की नीतियों से त्रस्त भारतीय किसानो और सिपाहियों द्वारा 1857 में अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध विद्रोह आरम्भ किया गया। इस विद्रोह में हिंदू और मुसलमान दोनों ने समान भागीदारी निभाई। इसके साथ ही भारतीय चिंतकों द्वारा राजनीतिक रूप से अपनी सक्रियता कायम रखने के लिए 1885 में 'कांग्रेस पार्टी' की स्थापना की गयी, जिसका मुख्य उद्देश्य भारत से अंग्रेजी शासन व्यवस्था को उखाड़ फेंकना था। प्रारंभ में जिन्ना भी कांग्रेस पार्टी के समर्पित नेता रहे परन्तु बहुत समय तक ऐसा सम्भव न हो सका और जिन्ना द्वारा कांग्रेस पार्टी को छोड़ दिया गया। 'कांग्रेस पार्टी' स्वयं को गैर-सांप्रदायिक और धर्मनिरपेक्ष पार्टी घोषित करती रही, लेकिन पार्टी की कई गतिविधियाँ मुसलमानों के मन में संदेह पैदा करने वाली थी। इस संबंध में 'मुशीरुल हसन' लिखते हैं- "कांग्रेस धार्मिक पहचानों से इंकार करती थी और धर्मनिरपेक्ष दिशा का दावा करती थी, लेकिन अपनी वैधता के लिए हिंदू प्रतीकों और परंपराओं का सहारा लेती थी। तिलक, अरविंद घोष और लाजपत राय मानते थे कि हिंदू जनता को केवल धार्मिक प्रवृत्ति के प्रयोग, राष्ट्रीय ऐतिहासिक मिथकों के प्रचार और हिंदू त्योहारों को मनाने के जरिए ही जगाया जा सकता है। इसलिए उन्होंने राष्ट्रवाद के साथ हिंदूवाद का

[1] सं०-अभय कुमार दुबे, भारत में राजनीति : कल और आज, पृ०संख्या- 91-92

घालमेल किया। तिलक ने जनता को गोलबंद करने के लिए हिंदू उग्रवाद की भावना भड़काई, अपने समर्थकों को स्पष्ट पहचान प्रदान करने के लिए गणपति उत्सव को बढ़ावा दिया और शिवाजी की स्मृति को जगा कर अतीत की मराठा महानता की कहानी सुनाई।”[1] इसी तरह कांग्रेसी नेताओं द्वारा ‘देवनागरी’ को अदालत की भाषा बनाना, गोहत्या पर प्रतिबंध लगाना और विभिन्न हिंदूवादी संगठनों के निर्माण और सभाओं से जुड़े होने के कारण कांग्रेस से मुसलमानों का मोहभंग होने लगा। मुसलमान कांग्रेस को संदेह की दृष्टि से देखने लगे और मुसलमानों के बीच कांग्रेस पार्टी की पहचान हिंदूवादी पार्टी के रूप में की जाने लगी। हालांकि सभी भारतीय मुसलमान कांग्रेस के विरोध में नहीं थे, फिर भी पढ़े-लिखे उच्च वर्ग के अभिजात्य मुसलमान कांग्रेस के दोहरे चरित्र पर संदेह कर रहे थे और उन तमाम नेताओं द्वारा सन् 1906 में ‘मुस्लिम लीग’ की स्थापना की गयी। ‘लीग’ की स्थापना के पीछे भारतीय राजनीति में मुसलमानों की भूमिका और पहचान दिलाना ही मुख्य उद्देश्य था। मुस्लिम लीग के अधिकांश सदस्य उच्च वर्ग के मुसलमान थे। मुस्लिम लीग की स्थापना के बावजूद अधिकांश मुसलमान कांग्रेस पार्टी का समर्थन करते रहे, क्योंकि मुस्लिम लीग मूलतः रूढ़िवादी और सांप्रदायिक राजनीतिक संगठन था।

अंग्रेज भारतीय समाज की कमजोरी को सन् 1857 की क्रांति में ही अच्छी तरह पहचान चुके थे। वे जान चुके थे कि भारतीय समाज में धर्म काफी संवेदनशील मुद्दा है और जनता की शक्ति को धर्म के आधार पर बाँटकर अंग्रेजी शासन व्यवस्था को और अधिक मजबूत तथा दीर्घकालीन बनाया जा सकता है। परिणामस्वरूप उनके द्वारा ‘फूट डालो और राज करो’ की नीति अपनायी गयी। 1905 में बंगाल के विभाजन ने भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों के खिलाफ अंग्रेजो के मंशा को साफ कर दिया। इसी प्रकार सन् 1909 में भारतीय प्रशासनिक और संवैधानिक स्वरूप को सुधारने के नाम पर ‘मार्ले-मिंटो’ ने अलग-अलग चुनाव मंडलों की प्रणाली भी इसी दिशा में उनका एक मजबूत कदम था। इस प्रणाली के तहत धर्म के आधार पर सभी मुसलमानों को एक जगह संगठित कर उनके लिए अलग चुनाव क्षेत्र बनाए गए और यह आरक्षित कर दिया गया कि इन क्षेत्रों में केवल मुस्लिम ही निर्वाचित होने का दावेदार होंगे। इसके बाद अंग्रेजों द्वारा संवैधानिक सुधार के लिए गोलमेज सम्मेलन आयोजित किये गये। इस सम्मेलन की

[1] मुशीरुल हसन, भारत में राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक राजनीति, पृष्ठ संख्या- 32

रिपोर्ट में संघीय योजना के तहत संघीय विधायिका को दो स्तरों पर विभाजित किया गया। जिसमें ऊपरी सदन को 'विधान परिषद' और निचले सदन को 'विधान सभा' कहा गया। विधान परिषद में कुल 260 सीटें थी, जिसमें 40% यानी 104 रजवाड़ों के लिए, 6 अनुसूचित जनजाति, 6 महिलाओं के लिए, 4 सिक्ख व 49 मुसलमानों के लिए आरक्षित की गई थी, शेष 75 सीटे अनारक्षित थी। इसी प्रकार विधानसभा की कुल 375 सीटों में 125 रजवाड़ो के लिए, 82 मुसलमानों के लिए, 4 यूरोपीय और भारतीय ईसाइयों के लिए, शेष 164 सामान्य श्रेणी के लिए आरक्षित किया गया था। इस रिपोर्ट को 'इंडिया विल हाउस ऑफ कॉमंस' में रखा गया और 1935 में पारित कर दिया गया। इस बिल में रजवाड़ों की सीट पर निर्वाचन न होकर मनोनीत करने का प्रावधान किया गया, जिसके कारण विभिन्न दलों तथा राजनीतिज्ञों द्वारा इसकी भर्त्सना की गई। फिर भी इसके आधार पर चुनाव लड़ने की तैयारी कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग द्वारा शुरू की गई। इस चुनाव के परिणाम में अधिकांश अनारक्षित सीटों पर कांग्रेस की जीत हुई। जिसमें 18 शहरी सीटों में से 17 और 121 ग्रामीण सीटों में 108 कांग्रेस के खाते में गई। इसी तरह 8 विशेष विधानसभा क्षेत्रों में कांग्रेस के कुल 159 उम्मीदवारों में से 133 की जीत हुई। कांग्रेस को शहरी क्षेत्रों में 80% तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 68% वोट मिले। कांग्रेस के उम्मीदवारों में सिर्फ एक मुसलमान विधायक 'हुसैन जहीर' निर्वाचित होकर आए थे जबकि मुस्लिम सीटों पर कांग्रेस को एक भी सीट नहीं मिली। इस तरह भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता तथा धर्म के प्रभाव का व्यापक रूप देखा गया। जबकि कांग्रेस की स्थापना से लेकर 1901 तक के राजनीतिक सफर में मुसलमानों की महत्वपूर्ण साझेदारी देखी जा सकती है। 1886 से 1901 तक के युक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के निर्वाचन क्षेत्रों में मुस्लिम प्रतिनिधियों की भागीदारी के सन्दर्भ में सारिणी को देखा जा सकता है।[1]

1935 में आई नई संवैधानिक व्यवस्था से मुसलमानों में भारी असंतोष पैदा हुआ। जिन्ना ने मुसलमानों के राजनीतिक भविष्य को सुनिश्चित करने के लिए पृथक

[1] परिशिष्ट में "युक्त प्रान्त के प्रत्येक शहर से मुस्लिम प्रतिनिधियों की कुल संख्या,1886-1901" नामक सारणी देखें

मतदाता मंडल की माँग रखी। जिन्ना से पहले इस सन्दर्भ में अलग आरक्षित निर्वाचन के लिए रहमत अली द्वारा माँग की जा चुकी थी। इस सन्दर्भ में शेखर बंदोपाध्याय लिखते हैं-“1930 में मुस्लिम लीग के अध्यक्ष के रूप में सर मोहम्मद इकबाल ने भारत के अंदर ही, चार प्रांतों (पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, सिंध और बलूचिस्तान) को मिलाकर एक केंद्रीकृत क्षेत्र के गठन का प्रस्ताव रखा था। इस विचार को और विस्तार दिया कैंब्रिज के छात्र रहमत अली ने, जिन्होंने 1933 में इन चारों मुस्लिम प्रांतों और कश्मीर को मिलाकर, अस्पष्ट रूप से पाकिस्तान बनाने की बात की।”[1] इस प्रकार जिन्ना द्वारा मुसलमानों के राजनीति भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए कांग्रेस के समक्ष अपनी माँगे रखी गयी। उनके महत्त्वपूर्ण माँगों में सिंध उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत और बलूचिस्तान जहाँ मुसलमानों की जनसंख्या सर्वाधिक थी, इन क्षेत्रों की सत्ता मुसलमानों के हाथ में देने की बात की गयी थी, लेकिन जिन्ना के प्रस्ताव को मान लेने से 5 प्रांतों में मुसलमानों की चुनी हुई सरकार बन जाती। साथ ही जिन्ना ने केंद्रीय विधायिका में कम से कम एक तिहाई मुस्लिम प्रतिनिधित्व की भी बात रखी थी। जिसे मिले-जुले मतदाताओं द्वारा चुना जाना था लेकिन हिंदू महासभा के दबाव में आकर कांग्रेस ने उनके इन माँगों को ठुकरा दिया। जिसका दुष्परिणाम विभाजन के रूप में सामने आया। भारत विभाजन का मुख्य दोषी जिन्ना को ही ठहराया जाता है। ‘रफीक जकारिया’ भारत विभाजन में जिन्ना की भूमिका को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-“1937 तक जिन्ना पढ़े लिखे हिंदुओं का बहुत प्रिय थे। वे जिन्ना के धर्मनिरपेक्ष विचारों और राष्ट्रीय उद्देश्यों के प्रति उनके समर्पण के प्रशंसक थे। कवयित्री- राजनेता सरोजनी नायडू ने उन्हें हिंदू मुस्लिम एकता का सर्वश्रेष्ठ राजदूत कहा था। पर सत्ता के लालच में जिन्ना ने वह सब कुछ त्याग दिया, जो उन्होंने चार दशकों में कमाया था। अपनी जीवन संध्या में उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच खाई को बढ़ाया, इसी में उन्हें अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति दिखाई दे रही थी। जिन्ना कभी सक्रिय मुसलमान नहीं रहे, पर उन्होंने आक्रामक सांप्रदायिक नेतृत्व का मुखौटा पहन लिया था ; कभी उनकी ओर ध्यान न देने वाले मुसलमान ‘इस्लाम खतरे में है’ के जिन्ना के नारे के साथ बह गए।”[2] 1947 में भारत-पाकिस्तान विभाजन के साथ भयानक दंगे हुए। इस विभाजन के पीछे भी इन्ही सांप्रदायिक ताकतों

[1] शेखर बंदोपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक, आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ सं०- 337

[2] रफीक जकारिया, सरदार पटेल तथा भारतीय मुसलमान, पृष्ठ सं०- 49

का योगदान रहा। इससे पीछे भारतीय मध्यकाल में जब मुस्लिम शासकों की शासन व्यवस्था में सर्वाधिक हिन्दू प्रजा रही बावजूद इसके एक भी सांप्रदायिक दंगों के उदाहरण देखने को नहीं मिलते। भारत में मुगल सल्तनत के पतन और अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् सांप्रदायिकता ने भारतीय राजनीति को सर्वाधिक प्रभावित किया। 18वीं शताब्दी में सांप्रदायिकता अपने चरम पर थी। उस दौर में कई सांप्रदायिक दंगे भी हुए। धर्म और साम्प्रदायिकता की आग समाज में फैलाई गयी। लोगों में जातीय चेतना जागृत करने के उद्देश्य से कई सांप्रदायिक संगठनों तथा पार्टियों का सृजन किया जाने लगा। इस दौर को धार्मिक-सांस्कृतिक पुनर्जागरण का काल भी कहा जाता है। सांप्रदायिकता को हवा देने के लिए हिंदी-उर्दू विवाद को भी शुरू किया गया। भाषा को धर्म और राजनीति से जोड़ा गया, जिसमें हिंदी हिन्दुओं की और उर्दू मुसलमानों की भाषा बतायी जाने लगी। इसी समय 'हिंदी, हिन्दू, हिदुस्तान' जैसे नारों के साथ भारत के बहुसंख्यक वर्ग में जातीय बोध को पैदा किया गया।

इन सब के बावजूद सन् 1950 में सांप्रदायिकता के विरुद्ध गाँधी जी के शहीद होने तथा नेहरू, पटेल, मौलाना आजाद, सी० राजगोपालाचारी तथा अन्य नेताओं के प्रयास से भारत में धर्मनिरपेक्षता को महत्व दिया गया। सन् 1952 और 1957 चुनाव में कांग्रेस पार्टी की जीत हुई और सांप्रदायिक पार्टीयाँ हाशिये पर रही, लेकिन 1960 के बाद सांप्रदायिक पार्टियाँ भारतीय राजनीति में धीरे-धीरे अपना वर्चस्व बनाती चली गई। 1962 में भारतीय जनसंघ पार्टी ने 14 सीटें प्राप्त की तो वहीं 1967 में 35 सीटें प्राप्त करने में सफल रही। 1971 के चुनाव में जनसंघ की शक्ति कुछ कम हुई और वह मात्र 22 सीटें जीतने में सफल हुई। इस दौरान भारत में कई सांप्रदायिक दंगे हुए। 1975 में इंदिरा गाँधी द्वारा आपातकाल लगाया गया। इस दौरान आर०एस०एस०, जमात-ए-इस्लामी, जनसंघ के सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार किया गया। भारतीय राजनीति में 'जनता पार्टी' का उद्भव हुआ। आपातकाल के पश्चात इन्दिरा गाँधी को देश की जनता द्वारा अस्वीकार किया गया तथा 'जनता पार्टी' द्वारा कई दलों से गठबंधन कर नयी सरकार बनाई गयी। इस गठबंधन में आर०एस०एस० और जनसंघ द्वारा 'जनता पार्टी' को भरपूर समर्थन दिया गया। 'जनता पार्टी' द्वारा इस गठबंधन का भारतीय बुद्धिजीवियों और अन्य राजनीतिक दलों द्वारा विरोध किया गया। चूँकि

आर०एस०एस० और जनसंघ की भूमिका एक साम्प्रदायिक संगठन के रूप में रही है, इस कारण भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता को प्रश्रय मिला और राजनीति में सम्प्रदायिक ताकतों की वृद्धि हुई। इस दौरान देश में दंगों की संख्या में भी काफी वृद्धि हुई, जिसे जनता सरकार रोकने में अक्षम रही।

1980 में इंदिरा गाँधी वापस सत्ता में आई लेकिन राजनीति और समाज में फैले सांप्रदायिकता पर यह सरकार भी पहले जैसा नियंत्रण न रख सकी। इसके उदाहरण स्वरूप सन् 1984 में इंदिरा गाँधी की हत्या हुई और देश में सिक्ख दंगा हुआ। जिसके बाद, भारत में सांप्रदायिक दंगों के स्वरूप में परिवर्तन हुआ। इससे पहले कभी भी दंगों में सरकार की भूमिका नहीं देखी गयी थी, किंतु सिक्ख दंगे में स्थिति बदल गई। इसके बाद विश्व हिंदू परिषद द्वारा अयोध्या में बाबरी मस्जिद को गिराकर मंदिर बनाने की माँग को तेजी से उठाया गया। जिसकी परिणति 1992 में बाबरी विध्वंस के रूप में सामने आई। इस विध्वंस ने भारतीय समाज में मुसलमानों की स्थिति को और अधिक कमजोर किया, साथ ही राजनीति में मुसलमानों की भागीदारी नगण्य रह गयी। बाबरी विध्वंस के बाद भारतीय जनता पार्टी, विश्व हिंदू परिषद, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, बजरंग दल जैसे हिंदूवादी संगठनों द्वारा मुसलमानों के खिलाफ तरह-तरह के बेबुनियाद दुष्प्रचार शुरू किया गया। इससे पहले सन् 1990 में ही लालकृष्ण आडवाणी के नेतृत्व में 'अखिल भारतीय रथ यात्रा' का आयोजन किया जा चुका था। उस दौरान व्यापक स्तर पर सांप्रदायिक दंगे हुए थे, जिनके प्रति मौजूदा सरकार ने काफी उदासीनता दिखाई थी। जिसके कारण भारतीय राजनीति के धर्मनिरपेक्ष चरित्र पर संदेह बढ़ने लगा और इस संदेह को 2002 में हुए गुजरात दंगे ने भारतीय मुसलमानों के प्रति सरकार के सौतेले व्यवहार को और स्पष्ट कर दिया। यह घटना बहुत भयावह थी। इसमें भीषण नरसंहार, बलात्कार तथा लूट-पाट की घटनाएँ सामने आई। इस घटना के संबंध में विपिनचंद्र लिखते हैं-"कई विश्लेषकों ने ध्यान दिलाया कि 2002 की हिंसा आमतौर पर होने वाले सांप्रदायिक दंगों से अलग किस्म की थी। दंगों में दो विरोधी समुदाय एक दूसरे पर हमले करते हैं। लेकिन गुजरात में ये हमले एकतरफा, सुनियोजित, बर्बर और राज्य द्वारा समर्थित या सुविधा प्राप्त थे।"[1] तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने

[1] विपिनचन्द्र,आजादी के बाद भारत,पृष्ठ संख्या- 633

स्वयं इस घटना को देश के माथे पर कलंक तथा विश्व भर में भारत की इज्जत मिट्टी में मिलाने वाली घटना बतायी थी।

भारत में सांप्रदायिक घटनाएँ चुनावी समीकरण बनाने और बिगाड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। भारत में धर्म आधारित सांप्रदायिक राजनीति की व्यवस्थित शुरुआत मुस्लिम लीग द्वारा किया गया था। 'लीग' ने सर्वप्रथम धर्म के आधार पर मुसलमानों के लिए अलग पार्टी बनाई थी। अंग्रेजी शासनकाल में 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट' के तहत 1937 और 1946 में दो महत्वपूर्ण चुनाव हुए। 1937 के चुनाव में मुस्लिम लीग ने पूरे देश में सिर्फ 4.5 प्रतिशत वोट प्राप्त किए थे। 1946 में हुए चुनाव में 'मोमिन कॉन्फ्रेंस' नामक एक सामाजिक संगठन ने पिछड़े मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करते हुए 'मोमिन पार्टी' के नाम से चुनाव लड़ा था। मुस्लिम लीग पढ़े-लिखे उच्च वर्ग की पार्टी थी इसलिए निम्न वर्ग के मुसलमान उससे अधिक जुड़े हुए नहीं थे। फिर भी इस पार्टी ने 1946 में कांग्रेस की गई गलतियों के कारण भारतीय राजनीति में अपनी महत्वपूर्ण दावेदारी पेश की, इन दोनों चुनावों में आए नतीजे कुछ इस प्रकार रहे।[1] 1937 और 1946 के चुनावी परिणामों में मुसलमानों के नेतृत्व के रूप में जो चेहरे सामने आए थे, उनमें अधिकांशत: अशराफ (उच्च वर्गीय) मुसलमान थे और विभाजन के बाद पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों में भी अधिकांशतः उच्च वर्गीय धनाढ्य मुसलमान ही थे। स्वतंत्रता के बाद भी भारतीय राजनीति में इसी वर्ग का वर्चस्व रहा है। जहाँ तक मुस्लिम मतदाताओं का सवाल है, वहाँ अधिकांश मुसलमानों का समर्थन कांग्रेस को प्राप्त होता रहा है। अशराफ मुसलमानों ने लगातार कांग्रेस का समर्थन किया लेकिन अजलाफ (निम्न वर्ग) मुसलमानों का रुझान अन्य विकल्पों की ओर भी गया है।

भारतीय राजनीति में मुसलमानों की कम भागीदारी पर विशेषज्ञों ने चिंता व्यक्त की है। आजादी के बाद से लेकर 2014 में हुए लोकसभा चुनाव में मुस्लिम सांसदों की संख्या में लगातार उतार-चढ़ाव देखने को मिले हैं। लेकिन 2014 में हुए 16वीं लोकसभा चुनाव इस दृष्टि से मुसलमानों के लिए काफी निराशाजनक रहा है। इस चुनाव में देशभर से मात्र 23 मुस्लिम उम्मीदवार ही जीत पाए हैं। भारतीय राजनीति के वर्तमान परिदृश्य में 2014 में हुए लोकसभा चुनाव में देश की 13.4 फ़ीसदी आबादी वाला मुस्लिम समाज, संसद में महज 4 फ़ीसदी पर सिमट कर रह गया है। इससे पहले सन्

[1] परिशिष्ट में "जुदागाना इंतखाब के नतीजे" नामक सारणी देखें

1957 में सबसे कम मुस्लिम सांसदों का रिकॉर्ड दर्ज किया गया था, उस समय मात्र 23 सांसद मुस्लिम वर्ग से चुने गए थे। भारतीय राजनीति में अब तक मुसलमानों की सबसे बड़ी भागीदारी 1980 के लोकसभा चुनाव में देखने को मिली है। उस समय सर्वाधिक 49 मुस्लिम सांसद चुने गए थे। इस चुनाव में इंदिरा गाँधी ने आपातकाल के बाद भारतीय राजनीति में वापसी की थी। वर्तमान में बिहार और बंगाल से सर्वाधिक मुस्लिम सांसद चुने गए हैं।

भारतीय राजनीति में आमतौर पर यह माना जाता है कि मुस्लिम समाज में गहन आपसी एकता होती है और वह एकजुट होकर किसी पार्टी का समर्थन करते हैं। यही नहीं कई बार यह भी कहा जाता है कि भाजपा को हराने वाली पार्टी को ही मुस्लिम वोटर समर्थन करते हैं, जबकि ऐसा नहीं है। अन्य समुदायों की भांति मुस्लिम समुदाय भी जाति के आधार पर बँटा हुआ समाज है और मुस्लिम मतदाता भी अपने वर्गीय हितों की रक्षा करते हुए मतदान करते हैं। इस संबंध में 'श्रेयस सरदेसाई' ने 1997 से 2009 के बीच हुए राष्ट्रीय चुनाव में मुस्लिम मतदाताओं के मतदान व्यवहार का एक आंकड़ा प्रस्तुत किया है।[1] इस प्रकार भारतीय समाज और राजनीति में मुसलमानों के उपेक्षा का दौर जारी है। भारतीय राजनीति में मुसलमानों को वोट बैंक की तरह देखा जाता है। विभिन्न राजनीतिक पार्टियों द्वारा इस वर्ग की समस्याओं और बुनियादी जरूरतों पर ध्यान न देते हुए यह मानकर चला जाता है, कि यह वर्ग जीतने वाली पार्टी का समर्थन करेगा ही। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय राजनीति में मुसलमानों की स्थिति और भी दयनीय हो चुकी है। 80 के बाद भारतीय राजनीति में जितनी तेजी से धर्म और साम्प्रदायिकता का प्रसार हुआ है, इससे मुसलमान हाशिए पर पहुँच गया है। अपने ही देश में मुसलमान आज सर्वाधिक उपेक्षित और असुरक्षा की भावना से ग्रस्त है। देखा जाए तो इन सब के पीछे राजनीतिक दलों की सर्वाधिक भूमिका रही है। इस तरह की स्थितियों से भारतीय राजनीति के साथ-साथ भारतीय लोकतंत्र की साख भी धूमिल हुई है। इसलिए आवश्यक है कि सार्वजनिक इकाइयों द्वारा ऐसे कदम उठाये जायें, जिससे राजनीति की स्वस्थ जमीन तैयार हो सके और जिसमें सबको समान अवसर मिल सके।

1.4.धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति-

---

[1] परिशिष्ट में "तालिका-1 1971-2009 के बीच राष्ट्रीय चुनावों में मुसलमानों का मतदान व्यवहार" नामक सारणी देखें

विश्वभर में इस्लाम धर्म के अनुयायियों को ‘मुसलमान’ के रूप में जाना जाता है। इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म के बाद दुनिया में सबसे ज्यादा लोगों द्वारा माना जाने वाला धर्म है। इसका उद्भव छठी शताब्दी में अरब में हुआ था। उन दिनों अरब समाज में निवास करने वाले ‘बद्दू समुदाय’ के बीच घोर सामाजिक अव्यवस्था फैली हुई थी। जुआ, शराब, सूदखोरी, भोगविलास, वेश्यागमन, स्त्रियों का अपहरण, व्यापारियों का लूट-पाट, लालच और गरीबी में यह समुदाय लिप्त था। ऐसे समय में हजरत मुहम्मद साहब ने अरब समाज को सुधारने में अहम भूमिका निभाई। मुहम्मद साहब का जन्म मक्का में हुआ था। उन्होंने एकेश्वरवाद के रूप में इस्लाम धर्म की स्थापना की और कुरान की शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाया। प्रारंभ से ही सामाजिक समानता इस्लाम धर्म का मूल सिद्धांत रहा है। इस्लाम मत को मानने वालों को कलमा, नमाज, रोजा, जकात, हज इन पाँच आवश्यक कर्तव्यों का पालन करना होता है। कुरान का पाठ करना और इन पाँचों सिद्धांतों का पालन करना ही इस्लाम धर्म का मुख्य नियम है। मुहम्मद साहब की मृत्यु (632 ई०) के बाद उत्तराधिकारी के रूप में खलीफा पद के लिए संघर्ष आरम्भ हुआ। खलीफा के पद पर पैगंबर के वंशज ही उत्तराधिकारी हो, इस बात का समर्थन इस्लाम के अधिकांश अनुयायियों द्वारा किया गया और इस पद पर मुहम्मद के सहायक ‘अबू बक्र’ को बिठाया गया, वहीं कुछ अनुयायी जो इस पद के लिए ‘अली’ (जो मुहम्मद के दामाद थे) का समर्थन कर रहे थे, उनके द्वारा खलीफा पद पर अबू बक्र का विरोध किया गया। इस तरह इस्लाम के अनुयायी दो भागों ‘शिया’ और ‘सुन्नी’ में बट गए। अबू बक्र के समर्थक सुन्नी और अली के समर्थक शिया कहलाये। भारत सहित पूरी दुनिया में इस्लाम धर्म को मानने वालों में शिया और सुन्नी के रूप में मौजूद हैं। संख्या के आधार पर सुन्नी मुसलमानों की संख्या शिया की अपेक्षा अधिक है।

इस्लामी कानून, परंपराओं, व्यक्तिगत तथा नैतिक आचरण को ‘शरीयत’ कहा जाता है। शरीयत के आधार पर ही मुसलमानों में न्याय तथा कानून की व्यवस्था की जाती है। इस कानून (शरीयत) की अलग-अलग व्याख्याओं के कारण समय-समय पर इस्लाम धर्म में विभेद पैदा हुए और अलग-अलग विचारधाराओं तथा पंथों का जन्म हुआ। सुन्नी मुसलमानों के चार प्रमुख पंथ हैं –

1. हनफी पंथ (इसके अनुयाई दक्षिण एशिया और मध्य एशिया में फैले हुए है)

2. मालिकी पंथ (इसके अनुयायी पश्चिम अफ्रीका और अरब के कुछ भागों में निवास करते हैं) 3. शाफ्यी पंथ (इसके अनुयाई अफ्रीका के पूर्वी भाग, अरब के कुछ भागों तथा दक्षिण पूर्व एशिया में है)

4. हंबली पंथ (इसके अनुयाई सऊदी अरब में है)

शिया मुसलमानों में जैदी, इस्माइली, बारहवारी प्रमुख उप संप्रदाय हैं। 'जैदी' मुख्यतः यमन में फैले हुए हैं। 'इस्माइली' दूसरा सबसे बड़ा शिया उपसमुदाय है। ये जफर-अल-सादिक के उत्तराधिकारी 'इस्माइल-बिन-जफर' को अपना गुरू मानते हैं। 'बारहवारी' संप्रदाय के लोगों की संख्या शिया मुसलमानों में सबसे सर्वाधिक है। इनका मानना है कि इनके बारहवे यानी अंतिम इमाम 'महदी' भविष्य में लौट कर आएँगे।

इस तरह दुनिया भर के मुसलमान विभिन्न पंथों में बटे हुए हैं तथा उनकी अपनी कुछ मान्यताएँ हैं, जो इस्लाम धर्म के मूल सिद्धांत के अंतर्गत नहीं आते। इन समस्त विविधताओं के बावजूद कुछ मान्यताओं पर सभी समुदाय एकमत है जैसे-

1. ईश्वर या अल्लाह एक है उसके अतिरिक्त कोई भी पूजनीय नहीं है। ईश्वर के समकक्ष किसी को खड़ा करना गुनाह है।
2. हजरत मुहम्मद अल्लाह के अंतिम रसूल है।
3. कुरान खुदा द्वारा भेजी गई पुस्तक है, उसके प्रत्येक शब्द खुदा से संबंधित हैं, मनुष्य का उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं है।
4. कयामत यानी प्रलय में सभी का विश्वास है। उसमें जीवन के कर्मों का हिसाब - किताब होगा और उसी के आधार पर जन्नत या दोजख में भेजा जाएगा।
5. कलमा, नमाज, रोजा, जकात, हज इस्लाम की इन पाँचों सिद्धांतों पर सभी मुसलमान एकमत है।
6. फ़रिश्ते, नबी और रसूल खुदा द्वारा भेजे गए दूत है।
7. इस्लाम धर्म के मूल मान्यताओं में पुनर्जन्म की अवधारणा नहीं है।

इस्लाम धर्म में 'अल्लाह' को सबसे बड़ा बताया गया है तथा मुहम्मद को उनका अंतिम रसूल माना गया है। दुनिया भर के सभी मुसलमान इस मान्यता पर सहमत है लेकिन इसके अपवाद के रूप में 'अहमदिया' समुदाय को देखा जा सकता है, जो मुहम्मद

को खुदा का अंतिम रसूल नहीं मानता है। भारत में उच्चतम न्यायालय द्वारा इस समुदाय को मुसलमान होने दर्जा प्राप्त है, बावजूद इसके भारत का मुस्लिम समाज इस वर्ग को मुसलमान नहीं मानता है। वहीं पाकिस्तान में क़ानूनी रूप से इस समुदाय को गैर मुस्लिम घोषित किया गया है। वास्तव में अहमदिया एक धार्मिक आंदोलन रहा है, जो कि उन्नीसवीं सदी के अंत में भारत में शुरू हुआ। इस आन्दोलन की शुरुआत गुरुदासपुर के 'कादियान' नामक कस्बे में 23 मार्च 1889 ई० में 'मिर्जा गुलाम अहमद' द्वारा शुरू किया गया। मिर्जा ने स्वयं को 'नबी' घोषित किया और उनके अनुयायियों द्वारा मुहम्मद के बाद एक और पैगंबर के रूप में 'मिर्जा गुलाम' को मान्यता दी गयी। जबकि यह इस्लाम की बुनियादी मान्यताओं के विरुद्ध था इसलिए इस समुदाय को बाकी मुसलमानों द्वारा अस्वीकार किया गया।

भारत में मुसलमानों के मुख्य रूप से चार संप्रदाय हैं- बरेलवी, देवबंदी, अहले हदीस, और शिया। जिनमें बरेलवी, देवबंदी और अहले हदीस सुन्नी संप्रदाय का हिस्सा हैं। बरेलवी की शुरुआत दक्षिण एशिया में सूफी आंदोलन के अंतर्गत एक उपआंदोलन के रूप में माना गया है। भारत में 'अहमद रजा खान कादरी' ने बरेली से इसकी शुरुआत 19वीं-20वीं सदी के मध्य किया था। इन्हें अहले सुन्नत या सुन्नी मुसलमान कहा जाता है। ये मुहम्मद साहब के जीवन को अपना आदर्श मानते हैं जबकि 'देवबंदी' सुन्नी इस्लाम के 'हनफी पंथ' की एक प्रमुख विचारधारा है। भारत में यह दारुल उलूम देवबंद से प्रसारित हुई है। यह आंदोलन 17वीं शताब्दी में शाह वलीउल्लाह देहलवी से प्रेरित रहा। इसे सुन्नी इस्लाम के भीतर एक पुनरुद्धारवादी आंदोलन माना जाता है। ये कर्मकांड का विरोध करते हैं तथा इस्लाम के उन सभी तरीके को अपनाने पर बल देते हैं जो हजरत मुहम्मद द्वारा बतायें गये हैं। सुन्नी मुसलमानों की तीसरी शाखा अहले-हदीस कहलाती है। इन्हें 'सलफी' भी कहा जाता है। ये सुफिज्म में विश्वास नहीं करते तथा इनका मानना है कि मुसलमानों को कुरान और हदीस के अनुसार शरीयत को मानना चाहिए। इनकी यह भी मान्यता है कि जिस बात का वर्णन कुरान या हदीस में नहीं किया गया है, उसको बिना वजह समाज पर लागू नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए यह पंथ 'तीन तलाक' और 'हलाला' जैसी मान्यताओं को नहीं मानता क्योंकि इसका जिक्र कुरान में कहीं भी नहीं है। इस संप्रदाय को 'वहाबी सम्प्रदाय' के नाम से भी जाना जाता है। भारत में शिया मुसलमानों का भी कुछ हिस्सा निवास करता है। हालांकि भारत में यह पूरे मुस्लिम आबादी का मात्र 15% ही है।

'सूफी' इस्लाम धर्म का एक प्रमुख मत है। सूफी मत का महत्त्वपूर्ण सिद्धांत वहदत-उल-वजूद है। जिसका अर्थ है 'ईश्वर सर्वव्यापी सार्वभौमिक व सर्वज्ञाता है'। इस सिद्धांत का प्रतिपादन इब्नुल अरबी द्वारा किया गया था, जिनका जन्म इराक में 'बसरा' नगर के आसपास 11 वीं सदी में हुआ था। सूफियों के निवास को 'खानकाह' कहा जाता है। सूफीमत में ईश्वर को पाने के चार सोपान- शरीयत, तरीकत, मारिफत और हकीकत हैं। चौथे सोपान पर भक्तों का ईश्वर से मिलन होता है। सूफियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता 'रहस्यवाद' है। अनुज शर्मा लिखते हैं-"सूफीवाद एक विशुद्ध इस्लामी अनुशासन है जो मुस्लिमों के आतंरिक जीवन तथा चरित्र का निर्माण ऐसे कर्तव्यों तथा अधिनियमों, अनुबंधों एवं अनिवार्यताओं के जरिये करता है जिन्हें किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी प्रकार से छोड़ा नही जा सकता परन्तु इस्लाम में सूफीवाद का यही समूचा अर्थ नही है। इसका एक रहस्यमय अभिप्राय है।.......इस प्रकार सूफी यह जानता है कि वह आतंरिक रूप से ईश्वर के मन में स्थित एक विचार है।"[1] सूफी मत के दो प्रमुख संप्रदाय 'शरा' और 'बेशरा' हैं। भारत में ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती को सूफी मत का आरम्भकर्ता माना गया है। भारत में सूफियों के कई घराने हैं जिनमें चिश्ती, सुहरवर्दी, निजामी, कादरी, शत्तारी, नक्शबंदी, फिरदौस, कलंदरी, हबीबी आदि प्रमुख है। हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में प्रेममार्गी शाखा पर सूफियों का गहरा असर देखा जा सकता है। इन कवियों द्वारा हिन्दू घरानों की कहानियों पर सूफी विचारधारा को आधार बनाकर अपनी रचनाओं को प्रस्तुत किया गया है। सूफियों द्वारा इस्लाम के उदार स्वरूप का प्रचार किया गया। मजारों का प्रचलन भी इन्हीं लोगों द्वारा प्रचलित किया गया।

भारत में मुसलमानों के कई समुदाय पाए जाते हैं। जिनमें उत्तरीय मप्पिलास, तमिल, कोंकणी, मराठी, वोरा पटेल, दाऊदी बोहरा, सुन्नी बोहरा, बंगाली, आंध्रा मुस्लिम, मेमन, कश्मीरी, हैदराबादी, बियरी, मेयो, कायमखानी, नवायत, उड़िया, खोजा, पूर्वोत्तर आदि हैं। भारतीय मुस्लिम समाज के भीतर इन सभी समुदायों की अपनी-अपनी लोक प्रचलित मान्यताएँ, नियम और रीति-रिवाज हैं। भारत के दक्षिण पश्चिम तट पर अरब के मुसलमान व्यापारियों का सर्वप्रथम व्यापार के लिए आवागमन शुरू हुआ था। इन व्यापारियों ने भारत में वैवाहिक संबंध भी स्थापित किए तथा इनकी संस्कृति, भाषा तथा धर्म का व्यापक प्रभाव इन क्षेत्रों पर पड़ा। भारत के पश्चिमी तट पर

---

[1] अनुज शर्मा, इस्लामिक संस्कृति एवं विचार, पृष्ठ सं० 19

सुन्नी मत के शाफई फिका (विधिशास्त्र) के तीन समुदाय पाए जाते हैं- मोपला, कोंकणी और नवायत। मोपला समुदाय केरल के मालाबार, कर्नाटक, लक्ष्यदीप, कन्याकुमारी तथा अन्य दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों में फैले हुए हैं। इन्हें 'मोपिल्ला' भी कहा जाता है। मोपिला समाज में मातृसत्तात्मक तथा पितृसत्तात्मक दोनों ही उदाहरण देखे जा सकते हैं। ये लोग स्थानीय भाषा बोलते हैं। इनमें जातिगत श्रेष्ठता की भावना होती है तथा अनुलोम विवाह की भी प्रथा भी इस समाज में है। महाराष्ट्र तथा गोवा में कोंकणी बोलने वाले मुसलमानों के समूह को 'कोंकण' कहा जाता है। ये समूह मुंबई, पालगढ़, थाणे, भिवंडी, निजामपुर, रत्नागिरी, रैगाद, सिंधुदुर्ग, सुबुर्ब आदि क्षेत्रों में फैले हैं। यह समुदाय अपना संबंध फारस की खाड़ी में रहने वाले मुसलमानों से जोड़ता है, जो मध्यकाल में व्यापार के संबंध में भारत आते थे और यहाँ की स्त्रियों से विवाह कर लेते थे। इन सम्बन्धों से जो संतान उत्पन्न हुए उन्हें 'नवायत' कहा जाने लगा। इन नवायतों से ही बाद में कोंकणी मुसलमानों की एक अलग धारा का निर्माण हुआ। ये मुसलमानों 'अशराफ' की श्रेणी में आते हैं। ये अधिकतर कारोबार करते हैं। इनमे रक्तशुद्धता की भावना पाई जाती है। इनकी आर्थिक व शैक्षणिक स्थिति अन्य मुसलमानों की अपेक्षा बेहतर है। नयावत मुसलमानों की अधिकांश आबादी वर्तमान समय में भारत के कर्नाटक में निवास करती है। यह समुदाय वहाँ की स्थानीय भाषा बोलता है तथा अपना संबंध अरब मूल से बताता है तथा स्वयं को बाकी मुसलमानों से अलग व श्रेष्ठ मानता है।

दक्षिण भारत में तमिलनाडु में भी मुसलमानों की अच्छी खासी आबादी निवास करती है। यहाँ के मुसलमानों में भी सामाजिक स्तर पर कई समुदाय पाए जाते हैं। 'मैटीसन माइन्स' तमिलनाडु के मुसलमानों के चार उप-समूहों की चर्चा करते हैं- राठोर,लब्बाई,मरक्कयार और कायलार। कायलार और मरक्कयार कोरोमंडल तट पर पाए जाते हैं। जिनमें कायलारों को मरक्कयारों का ही एक भाग बताया जाता हैं। इन मुसलमानों के आपसी भेद को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं-"ज्यादातर प्रत्यर्थी कायलारों और मायक्कारों को शाफई फिका के सुन्नी बतलाते हैं। कहा जाता है कि उनके शाफई होने के कारण यह है कि ये मुस्लिम तमिल स्त्रियों और अरब व्यापारियों की संतान है जो कहा जाता है कि सफाई थे। इसके विपरीत राठोर और लब्बाई हनफी फिका के सुन्नी है और अरबों के वंशज होने के दावे नहीं करते। कम से कम कुछ तमिल मुसलमान महसूस करते हैं कि इन दो फिको के अनुयायियों को आपस में विवाह नहीं करना चाहिए क्योंकि उनके

खान-पान संबंधी प्रतिबंधों में थोड़े से अंतर है, लेकिन दुर्लभ सही, ऐसे विवाह नगरों में होते हैं।"[1]

भारत में मुसलमानों का एक महत्वपूर्ण समुदाय 'बोहरा' समुदाय है। बोहरा समुदाय शिया और सुन्नी दोनों सम्प्रदायों में पाए जाते हैं। इन में 'दाऊदी बोहरा' शियाओं से तथा सुन्नी बोहरा 'हनफी पंथ' से सम्बन्धित हैं। बोहरा शब्द गुजरात के 'वहौराउ' अर्थात व्यापार का अपभ्रंश है। यह समुदाय मुस्ताली मत का हिस्सा है जो 11वीं शताब्दी में उत्तरी मिस्र से धर्म प्रचारकों के माध्यम से भारत में आया था। दाऊदी बोहरा का संबंध फातिमी इमामों से जोड़ा जाता है। जिनको मुहम्मद साहब का वंशज कहा जाता है। भारत में गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्य प्रदेश, कोलकाता तथा चेन्नई में दाऊदी बोहरा समुदाय निवास करता है। इसके अलावा पाकिस्तान के सिंध प्रांत, ब्रिटेन, अमेरिका, दुबई, ईराक, यमन तथा सऊदी अरब में इनकी खासी तादाद है। दाऊदी बोहरा के 21वे और अंतिम इमाम 'तैयब अबुल कासिम' थे। उनके बाद 1132 ई० से इस समुदाय में आध्यात्मिक गुरुओं की परंपरा शुरू हो गई, जो 'दाई-अल-मुतलक सैयदना' कहलाते हैं। यह समुदाय कारोबार में बहुत आगे है। धार्मिक कट्टरता तथा सामुदायिक नियम कानून का यह समुदाय सख्ती से पालन करता है। मुस्लिम महिलाओं के खतना का रिवाज भी इसी वर्ग में पाया जाता है जबकि भारत के अन्य समुदायों में यह प्रथा नहीं है। 'सुन्नी बोहरा' गुजरात में निवास करते हैं तथा उनके भी धार्मिक और सामाजिक बंधन व मान्यताएँ दाऊदी बोहरा के समान ही होते हैं।

महाराष्ट्र तथा राजस्थान में मुसलमानों का एक समुदाय 'खोजा' के नाम से जाना जाता है। खोजा 14वीं शताब्दी में हिंदू धर्म से परिवर्तित, मुसलमानों की एक जाति है जो शिया तथा सुन्नी दोनों में पाई जाती है। खोजा समुदाय भारत के अतिरिक्त पूर्वी अफ्रीका में भी रहते हैं। भारत में आगा खां के पूर्वजों के दूतों को इस समुदाय को इस्लाम धर्म में दीक्षित करने का श्रेय जाता है। ये शिया पंथ के निजारी इस्माइली पंथ का पालन करते हैं। इस तरह भारत के विभिन्न हिस्सों में अनगिनत छोटे-बड़े मुस्लिम समुदाय निवास करते हैं। इन मुसलमानों की अपनी-अपनी धार्मिक मान्यताएँ होती हैं।

[1] सं० इम्तियाज अहमद, भारत के मुसलमानों में जाति व्यवस्था और सामाजिक स्तरीकरण, पृष्ठ सं० 152-153

भारत में जिस प्रकार धार्मिक रूप से मुसलमानों में विविधता है उसी प्रकार सांस्कृतिक रूप में भी बहुत अधिक विविधता दिखायी देती है। शुरू से ही ईरान, मिश्र और अरब और यूनान की सभ्यता और संस्कृति का गहरा असर भारत के मुसलमानों पर रहा है। मध्यकाल में भारत में जब मुसलमानों का आगमन हुआ तब वे अपने साथ अपनी संस्कृति को भी भारत लाए तथा भारत की संस्कृति से भी बहुत कुछ ग्रहण किए। ईरानी शैली की कला को भारत में लाने का श्रेय मुगलों को है। भवन निर्माण में मेहराब, मीनार, गुम्बद, चित्रकारी तथा शिल्पकला के सुंदर उदाहरण मुगलों द्वारा बनवाए गए इमारतों के रूप में देखा जा सकता है। हुमायूँ ने अपने समय में 'अब्दुल समद' और 'मीर सईद' नामक दो इरानी चित्रकारों को भारत में बुलाया था। ये दोनों चित्रकार भारत में इरानी शैली के प्रणेता माने जाते हैं। अकबर के बाद जहाँगीर ने अपने समय में चित्रकला को काफी प्रोत्साहित किया। शाहजहाँ ने स्थापत्य कला के सुंदर नमूने पेश किए। मुगलकालीन दरबारों में कला और साहित्य को बहुत अधिक सम्मान दिया जाता था। अकबर ने अपने दरबार में 'नवरत्नों' के रूप में साहित्यकारों को सम्मानजनक स्थान दिया था। इरफ़ान हबीब लिखते हैं-"इस्लामी सम्पर्कों के फलस्वरूप मुग़ल काल में चित्रकला तथा स्थापत्य कला में भी अद्‌भुत विकास हुआ। धार्मिक दृष्टि से दो धर्मों की उपस्थिति के कारण उनमे टकराव भी हुआ और मेलजोल भी। चुनौती और उसकी प्रतिक्रिया से आवेशित परिवेश में एक नितांत मौलिक और भिन्न ढंग की चीज़ पैदा हुई जिसके तहत दोनों धर्मों को अस्वीकार कर दिया गया।"[1] भारत में हिंदू और मुसलमानों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान को दिनकर ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं-"हिन्दुओं की देखा-देखी मुसलमान जनता भी गाजीमियाँ, पाँचपीर, पीरबदर, ख्वाजा खिजीर आदि कल्पित देवताओं की पूजा करने लगी। मुसलमानों के ये पीर अक्सर ग्राम देवता बन बैठे और हिंदू-मुस्लिम, सब दरगाह पर माथा टेकने लगे।......हिंदू जैसे श्राद्ध करते हैं, कुछ उसी प्रकार मुसलमान भी मृत व्यक्तियों के नाम पर भोज करने और खैरात बाँटने लगे। बिहार में छोटी जात के मुसलमान भी छठ का व्रत (सूर्य पूजा) रखने लगे और बंगाल में वे शीतला माता की पूजा करने लगे।"[2]

---

[1] इरफ़ान हबीब, इतिहास और विचारधारा, पृष्ठ सं० 216

[2] रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ सं० 344-345

सामाजिक स्तर पर भारतीय मुसलमानों को देखा जाये तो इस समुदाय में पर्दा प्रथा का रिवाज है। कुछ निम्न जातियों में थोड़ी छूट है लेकिन उच्च जाति के मुसलमान सख्ती से इसका पालन करते हैं। स्त्रियों को मासिक धर्म में की अवस्था में अशुद्ध माना जाता है। इस दौरान नमाज, कुरान व अन्य धार्मिक अनुष्ठानों से दूर रखा जाता है। पुरुषों का खतना करने की प्रथा है। आमतौर पर मुसलमानों का एक उपवर्ग दूसरे उपवर्ग में विवाह नहीं करता है जबकि धार्मिक रूप से इसके लिए कोई पाबंदी नहीं है। मुसलमान पुरुष एक समय में चार विवाह करने के लिए धार्मिक रूप से स्वतंत्र है जबकि स्त्रियाँ नहीं। स्त्रियों को गैर मर्द के सामने खुले तौर पर जाने की मनाही है। शराब और जुए पर धार्मिक रूप से प्रतिबंध है। मुसलमानों को हराम और हलाल में फर्क करना होता है। खान-पान में भी कुछ विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। मुसलमानों में शाकाहार और मांसाहार में भेद नहीं किया जाता। भोजन में कोरमा, पुलाव, बिरयानी, तंदूरी, जर्दा, सीर, गोश्त, आदि मुगलई व्यंजनों का चलन अधिक रहता है। शादी-विवाह के अवसरों पर अधिकतर मांसाहारी भोजन ही बनाया जाता है। पोशाकों में कुर्ता, पायजामा, शेरवानी, लहँगा, चूड़ीदार सूट, सलवार, कमीज, बुर्का, साफा, गोल टोपी आदि वस्त्रों का चलन अधिक रहता है। जरी के काम वाले बेल-बूटे, लखनऊ चिकन, मोतियों के नक्काशीदार वस्त्रों का चलन भी मुसलमानों के कारण ही लोकप्रिय हुआ है। तंबाकू और हुक्के का प्रसार भी भारत में मुसलमानों के आगमन के बाद ही हुआ है।

भाषाई स्तर पर मुसलमानों में बहुत अधिक विविधता पाई जाती है। अधिकतर मुसलमान अपनी क्षेत्रीय बोलियों का प्रयोग करते हैं। जैसे बंगाली मुसलमान बंगला, उत्तर भारत का मुसलमान भोजपुरी, अवधी, मैथिली, खड़ी बोली का प्रयोग करता है, वहीं दक्षिण व मध्य भारत का मुसलमान भी अपनी-अपनी स्थानीय बोलियों और भाषाओं का व्यवहार करता है। उर्दू भाषा को लेकर पढ़े-लिखे उच्च वर्ग के शहरी मुसलमानों में आकर्षण देखा जा सकता है लेकिन गाँवों में उर्दू के प्रति लोगों में अधिक रुझान नहीं है। सभी मुसलमान अरबी पढ़ना सीखते हैं क्योंकि मुसलमानों में कुरान का पाठ करना अनिवार्य माना गया है। कुरान पढ़ने के लिए मुसलमान अरबी पढ़ना तो सीख लेते हैं लेकिन उसका अर्थ सभी को पता नहीं होता। कुरान का अर्थ जानने वाले को 'मौलवी' कहा जाता है। मौलवी ही कुरान की व्याख्या कर पाता है इसीलिए उसे मुसलमान लोग 'धर्म गुरु' के रूप में सम्मान देते हैं। मौलवी ही मस्जिद में नमाज पढ़ाता है। मुसलमानों में विवाह के अवसर पर 'निकाह' पढ़ाया जाता है। यह कार्य भी मौलवी

द्वारा ही संपन्न कराया जाता है। मस्जिदों की देख-रेख के लिए एक व्यक्ति की नियुक्ति की जाती है इसे 'पेशईमाम' कहते हैं। रमजान के महीने में सूर्यास्त के बाद 'तरावीह' की नमाज पढ़ाई जाती है। जिसमे कुरान के तीसो पारे का पाठ होता है। इस नमाज को हाफिज लोग पढ़ाते हैं। हाफिज उसे कहते है जिसे पूरा कुरान कंठस्थ होता है।

मुसलमानों में हिजरी संवत की मान्यता है। हिजरी का अर्थ प्रवास होता है। हजरत मुहम्मद के मक्का से मदीना की ओर प्रवास के वर्ष से इस पंचांग की शुरुआत मानी जाती है। इसमें वर्ष में 12 महीने तथा 354 या 355 दिन होते हैं। इन 12 महीनों के नाम है- मुहर्रम, सफर, रबी-उल-अव्वल, रबीअलथानी, जमात-उल-अव्वल, जमात-उल-थानी, रज्जब, शाबान, रमजान, शव्वाल, जू-अल-कादा, जू-अल-हज्जा है। यह चंद्र काल दर्शक के अनुसार चलता है। इसी कारण सौर काल दर्शक से 11 दिन पीछे हो जाती है। मुसलमानों के सभी पर्व इसी पंचांग के अनुसार मनाए जाते हैं। मुहर्रम का महीना इस्लामी पंचांग का पहला महीना होता है। मुहर्रम की दसवीं तारीख को 'हुसैन' (हजरत मुहम्मद के नवासे) तथा उनके साथी कर्बला के युद्ध में शहीद हुए थे। उन्हीं की याद में प्रत्येक वर्ष मुहर्रम का त्यौहार मनाया जाता है। शिया और सुन्नी दोनों इस दिन मातम मनाते हैं। घरों में खाना नहीं बनाया जाता। स्त्रियाँ साज-श्रृंगार नहीं करती है और न ही कोई नए कपड़े पहनता है। भारत में इस अवसर पर 'ताजिया' निकालने की प्रथा है। ऐसा माना जाता है कि भारत में तैमूर लंग द्वारा इसकी शुरुआत की गयी थी।

12 रबी-उल-अव्वल को हजरत मुहम्मद का जन्म तथा मृत्यु दोनों हुआ था, अतः इस दिन को 'ईद-मिलाद-उन-नवी' के रूप में मनाया जाता है। इस अवसर पर जगह-जगह 'जलसे' का आयोजन किया जाता है। कुरानख्वानी करायी जाती है तथा कहीं-कहीं जुलूस भी निकाले जाते हैं। शाबान महीने के 14वीं तारीख को सूर्यास्त के बाद 'शब-ए-बारात' मनाया जाता है। 'शब' का अर्थ रात व 'बारात' का अर्थ 'बरी होना' है अर्थात् इस रात को मुसलमान खुदा की इबादत करते हैं तथा अपने गुनाहों के लिए तौबा करते हैं, वह खुदा से माफी माँगते हैं। इसे अरब में 'लैलतुल बराह' या 'लेलतुन निसफे मीन शाबान' के नाम से जाना जाता है। रमजान का महीना मुसलमानों के लिए बेहद पवित्र और खास होता है। इस पूरे महीने सूर्योदय से सूर्यास्त तक अन्न-जल ग्रहण करने की मनाही होती है। ऐसा इसलिए है ताकि पैसे वालों को गरीबों की तकलीफ और भूख के दर्द का एहसास हो सके। इस माह सभी को जकात (दान) के रुप में अपनी संपत्ति का 2.5 प्रतिशत हिस्सा गरीबों को दान करना आवश्यक होता है। सूर्यास्त के बाद अन्न-जल

ग्रहण करने की प्रक्रिया को 'इफ्तार' कहते हैं। रमजान का 27 तारीख 'शब-ए-कद्र' के नाम से जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि इस रात्रि को 'जिब्रील' नाम के एक फरिश्ते द्वारा कुरान की आयतों को पृथ्वी पर नाजिल किया गया था। इस रात सभी मुसलमान जागते हैं और अपने गुनाहों के लिए खुदा से माफ़ी माँगते हैं। रमजान का आखिरी शुक्रवार 'जुमातुल विदा' (अलविदा) के नाम से जाना जाता है। रमजान का महीना समाप्त होने पर शव्वाल महीने की पहली तारीख को 'ईद-उल-फितर' मनाया जाता है। इस दिन बड़े हर्षोल्लास से नये-नये कपड़े पहनकर बच्चे व पुरुष ईदगाह जाते हैं और खुदा का शुक्र अदा करने के लिए नमाज पढ़ते हैं। स्त्रियाँ घर में ही नमाज पढ़ती हैं। इस अवसर पर लजीज व्यंजन बनाए जाते हैं। लोग एक दुसरे के घर जाकर मिलते-जुलते हैं। इस्लामी कैलेंडर का 12वां और अंतिम महीना 'जू-अल-हज्जा' के नाम से जाना जाता है। इस महीने की 10 तारीख को 'ईद-उल-जुहा' के रूप में मनाया जाता है। इस दिन हजरत इब्राहिम अपने बेटे हज़रात इस्माईल को खुदा के हुक्म पर खुदा की राह में कुर्बान करने जा रहे थे किन्तु खुदा ने उनके बच्चे को जीवनदान दे दिया था। इसके अलावा मुसलमानों में शुक्रवार का दिन बेहद खास होता है। इस दिन सभी मुसलमान मस्जिद में नमाज पढ़ने जाते हैं और एक दूसरे के सुख-दुख के बारे में पूछते हैं और सभी के खैरियत की दुआ करते हैं।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति में मुसलमानों की अहम भूमिका है। भारतीय मुस्लिम समाज अनेक विविधताओं से भरा हुआ है। भले ही यहाँ इस्लाम का आगमन अरब से हुआ लेकिन यह धर्म और इसके अनुयायी स्थानीयता के प्रभाव को त्याग न सके। यही कारण है कि भारतीय मुसलमानों में ऐसी कई परम्पराएँ हैं जिनका सीधा-सीधा सम्बन्ध हिन्दू परम्पराओं और मान्यताओं से है। इसके अलावा इस्लाम धर्म के अनुयायियों द्वारा जिन परम्पराओं को अपने साथ अरब और बाहरी देशों से यहाँ लाया गया उसका भी प्रभाव भारतीय मुसलमानों में दिखाई देता है। यह प्रभाव खान-पान, पोशाक, शिल्प-कला, नक्काशी, इमारतों की बनावट, बर्तनों के प्रकार, फलों, मेवे आदि रूपों में देखा जा सकता है। इस प्रकार भारतीय मुसलमानों में स्थानीयता और बाहरी प्रभाव का मिला-जुला रूप दिखाई देता है। भारतीय मुसलमानों में पसमांदा मुसलमानों कि स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक है, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार आदि बुनियादी सुविधाओं को इस वर्ग तक पहुँचाया जाए, इस वर्ग को भी आधुनिक शिक्षा से जोड़ा जाए, जिससे की यह वर्ग भी मुख्यधारा का हिस्सा बन सके।

द्वितीय अध्याय

हिन्दी कथा साहित्य में मुस्लिम समाज की पृष्ठभूमि

द्वितीय अध्याय

हिन्दी कथा साहित्य में मुस्लिम समाज की पृष्ठभूमि

हिन्दी साहित्य में उपन्यास लेखन की परंपरा उस दौर में शुरू हुई, जब भारत पूरी तरह अंग्रेजों का गुलाम था। भारतीय समाज एक तरफ अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहा था तो दूसरी तरफ सामाजिक कुरीतियों एवं धार्मिक-सांस्कृतिक संघर्षों के दौर से भी गुजर रहा था। यह ऐसा दौर था, जब विभिन्न आंदोलनों द्वारा भारतीय जनता को संगठित किया जा रहा था। इस प्रयास में एक तरफ जातीय गौरव को जगाया जा रहा था, तो दूसरी तरफ राष्ट्रीय चेतना को विकसित करने का प्रयास जारी था। इस सब के पीछे एक मात्र उद्देश्य स्वाधीनता आन्दोलन में आम जनता की सहभागिता को सुनिश्चित करना था। ऐसी तमाम कोशिशों में समाज चिंतको के साथ-साथ साहित्यकारों द्वारा भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई गयी। जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य में अंग्रेजों की लूट, शोषणवादी व्यवस्था, तथा सामाजिक अंधविश्वासों पर गम्भीरता से लिखा गया। लेकिन बहुत जल्द ही धर्म के सवाल ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच खाई पैदा की। धर्म के इस सवाल ने समाज के साथ-साथ भाषा को भी बाँट दिया। जिसका शिकार हिन्दी-साहित्य को होना पड़ा। हिन्दी के अनेक साहित्यकारों द्वारा आम बोलचाल की भाषा 'हिन्दुस्तानी' से अरबी-फारसी के सहज बोलचाल के शब्दों को भी बाहर किया गया और इसके स्थान पर संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को प्रमुखता दी गयी। इस षडयंत्र से हिन्दी साहित्य में खेमेबाजी भी शुरू हुई। हिन्दी और उर्दू के साथ भाषा का विवाद आरंभ हुआ और एक दूसरे को नीचा दिखाने की मनोवृत्ति पैदा हुई। इस संबंध में वीरभारत तलवार लिखते हैं-"उन्नीसवीं सदी के नवजागरण में हुए हिंदू-मुस्लिम धार्मिक सुधार आंदोलनों को शुद्धतावादी और फंडामेंटलिस्ट किस्म की प्रवृत्तियों ने भी दोनों समुदायों के बीच अलगाव की भावना को बढ़ाया। पश्चिमोत्तर प्रांत में हिंदू भद्र वर्ग की अलगाव की भावना न सिर्फ हिन्दी को संस्कृतनिष्ट बनाकर उसे बोलचाल की जुबान से अलग और दूर करने के प्रयास में हुई, बल्कि सीधे-सीधे मुस्लिम विरोध के रूप में भी प्रकट हुई।"[1] इसके अलावा हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसे भी

[1] वीरभारत तलवार, रस्साकशी, पृष्ठ 255

रचनाकार रहे हैं जिन्होंने सामाजिक समरसता को कायम रखते हुए, समाज के दुख-सुख को ही अधिक महत्त्व दिया। जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य में स्त्री, दलित, आदिवासी तथा मुसलमानों की समस्याओं को प्रकाश में लाया गया। इस अध्याय में हिंदी कथा साहित्य में चित्रित मुस्लिम समाज किन-किन रूपों में चित्रित हुआ है, इसको जानने का प्रयास किया गया है।

2.1. उपन्यासों में चित्रित मुस्लिम समाज-

हिन्दी उपन्यासों में मुस्लिम समाज का चित्रण सर्वप्रथम 1881 ई० में राधाकृष्ण दास द्वारा 'निस्सहाय हिंदू' नामक उपन्यास में देखने को मिलता है। यह उपन्यास गोकशी की समस्या पर केन्द्रित है। जिसमें गोकशी को हिंदू समाज का पतन और लाचारी के रूप में दिखाया गया है। सन् 1857 की क्रांति के बाद गोकशी को एक व्यापक मुद्दा बनाया गया। इस उपन्यास में दो तरह का मुस्लिम वर्ग है। एक वर्ग गोकशी का समर्थन करता है और उसे अपने धार्मिक अधिकार के अंतर्गत बताता है। उपन्यास में इस वर्ग का प्रतिनिधित्व 'हाजी अताउल्लाह' नामक पात्र करता है, वहीं दूसरे वर्ग का मुसलमान जो गोकशी का विरोध करता है और इसे धर्म की मनमानी व्याख्या बताता है। इस वर्ग का प्रतिनिधि 'मौलवी अब्दुल अजीज' नामक पात्र करता है। उपन्यास में एक 'गोहितकारिणी सभा' की भी स्थापना की गई है। जिसका नेता अब्दुल अजीज को बनाया गया है। उपन्यासकार अब्दुल अजीज के मुख से यह कहलवाता है कि कुरान में गोकशी वर्जित है। देखा जाये तो यह कथन उपन्यासकार के मन की उपज है, क्योंकि कुरान में गोवंश के सम्बन्ध में कही कोई जिक्र नहीं है। उपन्यास में लेखक ने अब्दुल अजीज की हत्या दूसरे वर्ग के मुसलमानों द्वारा करा कर उसे एक आदर्श चरित्र के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

हिन्दी उपन्यास की परंपरा को विकसित करने में देवकीनंदन खत्री की भी विशेष भूमिका रही है। 1887 ई० में 'चंद्रकांता' नामक उपन्यास से हिन्दी में तिलस्मी और ऐयारी उपन्यास लेखन की परंपरा दिखाई देती है। यह परम्परा इतनी प्रसिद्ध हुई कि आगे चलकर 'चंद्रकांता संतति' चौबीस भाग में और 'भूतनाथ' नामक उपन्यास छः भागों में इनके द्वारा लिखा गया। खत्री जी ने इन उपन्यासों में चुनार, नौगढ़, विजयगढ़, जमानिया, रोहतासगढ़ आदि स्थानों के राजकुमारों और राजकुमारियों के प्रेम सम्बन्ध को कथा के रूप में प्रस्तुत किया है। खत्री जी के उपन्यासों में केवल स्थान के नाम ही

वास्तविक हैं, जबकि सम्पूर्ण कथा और उसके पात्र पूर्णरूप से काल्पनिक हैं। खत्री जी ने अपनी रचनाओं में हिन्दू पात्रों के साथ-साथ मुस्लिम पात्रों का भी चित्रण किया है। जिसमें मुस्लिम पात्रों के प्रति असामाजिकता, चरित्रहीनता और षडयंत्रकारी भाव को व्यक्त किया गया है। इस सम्बन्ध में गोपाल राय लिखते हैं-''खत्री जी अपने कथा पुस्तकों में मुसलमान पात्रों को चुन-चुनकर धोखेबाज, दगाबाज, चरित्रभ्रष्ट और षड्यंत्रकारी रूप में चित्रित किया है। उपन्यास में वर्णित वेश्याएँ, नागर, गौहर आदि सभी मुसलमान है। हिंदू राजा अपनी मुसलमान प्रजा से सदा सावधान रहते हैं। यदि भूल से कोई पात्र किसी मुसलमान लड़की से प्रेम कर बैठता है तो उसकी जाति का पता चल जाने पर अफसोस जाहिर करता है। और फिर उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखता।''[1]

प्रेमचंदपूर्व उपन्यासकारों में 'किशोरी लाल गोस्वामी' को एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्धि मिली है। गोस्वामी जी ने मुगलकालीन नवाबों और रानियों को अपने कई उपन्यासों का आधार बनाया है। इन उपन्यासों में 'तारा वा क्षात्र कुल कमलिनी' कनक कुसुम वा मस्तानी, सुल्ताना रजिया बेगम वा रंग महल में हलाहल, हृदयहरिणी वा आदर्श रमणी, लवंगलता वा आदर्शबाला, मल्लिका देवी वा बंग सरोजिनी, सोना और सुगंध वा पन्नाबाई, गुलबहार वा आदर्श मातृस्नेह, लखनऊ की कब्र या शाही महलसरा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन सभी उपन्यासों में मुस्लिम राजाओं, स्त्रियों तथा अन्य सभी पात्रों को चरित्रहीन, धोखेबाज तथा क्रूर दिखाया गया है। देखा जाये तो किशोरीलाल जी तत्कालीन हिंदूवादी आंदोलनों से प्रभावित रहे हैं तथा अपने साहित्य में ऐतिहासिक तथ्यों, घटनाओं को मनमानी तरीके से प्रस्तुत किये हैं। गोस्वामी जी के यहाँ मुस्लिम स्त्रियाँ कामुक, चरित्रहीन, षड्यंत्रकारी रूप में प्रस्तुत की गई हैं। इस सम्बन्ध में गोपाल राय लिखते हैं-''हिंदू गौरव की स्थापना के उत्साहातिरेक में गोस्वामी जी ने हिंदू पात्रों की तुलना में मुसलमान पात्रों को नीच, खुदगर्ज, विश्वासघाती और चरित्रहीन रूप में प्रस्तुत किया है। मस्तानी को छोड़कर गोस्वामी जी के ऐतिहासिक रोमांशों का कोई भी मुसलमान पात्र, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, सच्चरित्र नहीं है। अकबर और दारा जैसे ऐतिहासिक पात्रों को भी, जिनके बारे में इतिहासकारों की धारणा ऊँची है; गोस्वामी जी ने कपटी, धूर्त, क्रूर और चरित्रहीन व्यक्तियों के रूप में चित्रित किया है।"[2] प्रेमचंदपूर्व अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों में

---

[1] गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृष्ठ 75

[2] वही, पृष्ठ 83

गंगा प्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, मथुरा प्रसाद शर्मा, ब्रजनंदन सहाय आदि ने मुगलकालीन मुस्लिम समाज का चित्रण किया है। गंगा प्रसाद गुप्त ने 'नूरजहाँ' उपन्यास में मुगलकालीन शासन व्यवस्था तथा नूरजहाँ के चरित्र को दर्शाया है। जयरामदास गुप्त ने 'नवाबी परिस्तान वा वाजिद अलीशाह' तथा 'मल्का चाँदबीबी' नामक उपन्यास लिखा है। नवाबी परिस्तान वा वाजिद अली शाह उपन्यास में लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह को एक विलासी, क्रूर, हिंसक नवाब के रूप में दिखाया गया है। मथुरा प्रसाद शर्मा ने 'नूरजहाँ बेगम' व 'जहाँगीर' नामक दो ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। उनके उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्यों पर विशेष रूप से ध्यान रखा गया है। दक्षिण के शासक गयासुद्दीन के जीवन संघर्ष की कथा को बाबू ब्रजनंदन सहाय ने अपने उपन्यास 'लालचीन' में दिखाया है। प्रेमचंद से पहले जितने भी उपन्यासकार हुए हैं, उनमें से अधिकांश की रचनाओं में हिंदू-गौरव का गान किया गया है तथा उसके बरख्श मुस्लिम समाज को प्रस्तुत करते हुए मुसलमानों को क्रूर, हिंसक, बर्बर तथा हिन्दू-विरोधी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में इन उपन्यासकारों का उद्देश्य मुस्लिम समाज को अपने उपन्यास का विषय-वस्तु बनाना नहीं रहा है, बल्कि यह साबित करना ज्यादा महत्त्वपूर्ण रहा है कि मुगलकाल में मुस्लिम राजाओं ने हिंदुओं पर बहुत अत्याचार किया है तथा वर्तमान में मुस्लिम समाज किस प्रकार हिंदू संस्कृति के लिए घातक है। अपने इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए इन उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक तथ्यों को नकारा है और मनगढ़ंत ऐतिहासिक घटनाओं की कल्पना की है।

हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम प्रेमचन्द द्वारा हिन्दी कथा साहित्य को यथार्थ के धरातल से जोड़ने का काम किया गया। प्रेमचन्द तत्कालीन सामाजिक समस्याओं विशेषकर किसान जीवन की विसंगतियों को अपने कथा साहित्य में प्रमुखता से उठाते हैं। हिन्दी में उनका प्रथम उपन्यास 'सेवासदन' को माना गया है। यह उपन्यास वेश्यावृत्ति की समस्या पर आधारित है। इस उपन्यास में 'अब्दुल वफा' और 'अब्दुल लतीफ' जैसे पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि वेश्यावृत्ति हिंदू और मुसलमान दोनों समुदाय में समान रूप से प्रचलित है, वहीं उनका 'प्रेमाश्रम' उपन्यास किसान-जीवन के संघर्षों पर आधारित है, जिसमें प्रेमचंद द्वारा मुसलमान जमीदार के रूप में 'गौस खां' नामक पात्र का चित्रण किया है और सर्वहारा मुस्लिम पात्र के रूप में 'कादिर' को दिखाया गया है, जो उपन्यास में शोषणवादी व्यवस्था के प्रति संघर्षरत दिखाई देता है। प्रेमचंद के उपन्यासों में हिन्दू समाज के साथ-साथ मुस्लिम

समाज का भी प्रमुखता से चित्रण दिखाई देता है। 'कर्मभूमि' नामक उनके उपन्यास में मुस्लिम समाज को अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से प्रस्तुत गया है। इस उपन्यास में 'पठानिन' बनारस के गोवर्धन सराय मुहल्ले में रहने वाली एक विधवा मुस्लिम स्त्री है, जो अपनी बेटी 'सकीना' के विवाह के लिए चिंतित है। प्रेमचंद उसके पारिवारिक स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं-"द्वार एक पर्दे की दीवार में था। उस पर एक टाट का फटा-पुराना पर्दा पड़ा हुआ था। द्वार के अंदर कदम रखते ही एक आंगन था, जिसमें मुश्किल से दो खटोले पड़ सकते थे। सामने खपरैल का एक नीचा सायबान था और सायबान के पीछे एक कोठरी थी, जो इस वक्त अंधेरी पड़ी हुई थी, सायबान में एक किनारे चूल्हा बना हुआ था और टिन और मिट्टी के दो चार बर्तन, एक घड़ा और एक मटका रखे हुए थे। चूल्हे में आग जल रही थी और तवा रखा हुआ था।"[1] उपन्यास में सलीम एक युवा पात्र है, जो न्याय के लिए लड़ने वाला तथा गरीबों का हमदर्द है। अन्य मुस्लिम पात्रों में 'काले खां' जो एक सामान्य व्यक्ति हैं तथा 'गजनवी' जो एक सरकारी मुलाजिम है, का नाम लिया जा सकता है। प्रेमचंद के उपन्यासों में मुस्लिम समाज का चित्रण अधिक तो नहीं हुआ है लेकिन जितना भी हुआ है, वह यथार्थ रूप में चित्रित है। प्रेमचंद ने अपने अनुभव संसार में आम जनजीवन की समस्याओं को जितना अधिक प्रश्रय दिया है, उतना उनसे पहले किसी भी साहित्यकार के यहाँ नहीं दिखता। रामविलास शर्मा लिखते हैं-"प्रेमचंद अपने उपन्यासों में बराबर इस चीज पर जोर देते हैं कि हिंदुओं और मुसलमानों की बुनियादी समस्याएँ एक हैं। इसलिए मिलकर उन्हें हल करना चाहिये।"[2]

प्रेमचंदयुगीन अन्य उपन्यासकारों में जी० पी० श्रीवास्तव, पांडेय बेचन शर्मा उग्र और वृंदावन लाल वर्मा का नाम लिया जा सकता है, जिनके यहाँ मुस्लिम समाज का चित्रण दिखाई देता है। जी० पी० श्रीवास्तव के 'गंगा जमुनी' उपन्यास में तत्कालीन सांप्रदायिक समस्याओं पर विचार करते हुए हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल दिया गया है। वहीं पांडेय बेचन शर्मा उग्र के दो उपन्यास 'चंद हसीनो के खतूत' और 'बुधूआ की बेटी' में चित्रित मुस्लिम समाज के आंशिक रूप को देखा जा सकता है, जहाँ उग्र जी की दृष्टि मुस्लिम समाज के प्रति सकारात्मक नहीं दिखती। उन्होंने अपने उपन्यासों में सांप्रदायिक मुद्दों को उठाने का प्रयास तो किया है, परन्तु उसमें पक्षपात और एकांगीयता को साफ-साफ देखा जा सकता है। 'बुधूआ की बेटी' उपन्यास में वे दिखाते हैं कि किस प्रकार

---

[1] प्रेमचन्द, कर्मभूमि, पृष्ठ 41

[2] रामविलास शर्मा, प्रेमचन्द और उनका युग, पृष्ठ 82

मुस्लिम युवकों का एक गिरोह पुत्र प्राप्ति की कामना करने वाली हिंदू महिलाओं के साथ छल-कपट का व्यवहार करता है। इस पूरे उपन्यास में मुस्लिम युवकों को चरित्रहीन, धोखेबाज तथा कपटी साबित किया गया है। इसी प्रकार 'चंद हसीनों के खतूत' में भी उग्र जी हिंदू और मुस्लिम पात्रों के प्रेम सम्बन्ध और विवाह को समस्या के रूप में दिखाया गया है तथा इसे सांप्रदायिकता की समस्या से भी जोड़ा गया है।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा का भी प्रमुख स्थान रहा है। इनकी कई रचनाओं में मुस्लिम समाज को देखा जा सकता है। उनका उपन्यास 'गढ़कुंडार' में दिल्ली के सुल्तान 'बलबन' के शासन काल का चित्रण हुआ है, वहीं 'विराटा की पद्मिनी' में मुगल शासक 'फर्रुखसियर' का उल्लेख मिलता है। वृदावनलाल वर्मा की इन दोनों रचनाओं में मुस्लिम शासकों का नाम मात्र का वर्णन किया गया है।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी उपन्यासों में मुस्लिम समाज का चित्रण पहले की अपेक्षा व्यापक रूप में दिखाई देता है। इस दौर के अधिकांश उपन्यासों में विभाजन की त्रासदी और सांप्रदायिकता को केंद्र में रखकर आवश्यकतानुसार मुस्लिम पात्रों और घटनाओं का चित्रण किया गया है। इस दौर की रचनाओं में यशपाल का 'झूठा सच' विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है। ठीक इसी प्रकार कमलेश्वर का 'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास में भी सांप्रदायिकता को एक गम्भीर समस्या के रूप में देखा गया है। इस उपन्यास में पाकिस्तान के नाम पर मुसलमानों को छले जाने और उससे उत्पन्न मोहभंग की स्थिति को दिखाया गया है। कमलेश्वर द्वारा पाकिस्तान से लौटे मुसलमानों की विवशता और राजनीतिक षड्यंत्र के प्रभाव को हिन्दुओं और मुसलमानों के सन्दर्भ में बड़ी समस्या के रूप में दिखाया गया है। मुस्लिम जीवन के रचनाकार के रूप में 'गुलशेर खां शानी' को भी प्रमुख माना गया है। 'काला जल' नामक उपन्यास को इसके उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है। इस उपन्यास में पहली बार आदिवासी मुसलमानों का चित्रण हुआ है। इसमें यथार्थपरक ढंग से बस्तर के आदिवासी मुसलमानों के जीवन-संघर्ष को दिखाया गया है। इस प्रकार स्वतंत्रता पश्चात् के हिन्दी साहित्य में मुस्लिम समाज को केंद्र में रखकर उपन्यास लिखने की एक लंबी परंपरा दिखाई देती है, जिसका हम विस्तार से विश्लेषण करेंगे-

2.1.1. सामाजिक स्थिति-

भारत में मुसलमानों का एक लम्बा इतिहास रहा है। लगभग एक हजार वर्षों के अपने इस यात्रा में यह वर्ग देश के कई हिस्सों में बसा हुआ है। सामाजिक दृष्टि से यह तीन भागों अशराफ, अजलाफ़ और अरजाल में बटा हुआ है। यह विभाजन जातिगत श्रेष्ठता बोध के साथ ही इन वर्गों की अलग-अलग सामाजिक स्थिति को भी व्यक्त करता है। हिन्दी उपन्यासों में भी इस वर्ग विभाजन के अनुसार अलग-अलग सामाजिक स्थिति देखने को मिलती है। भारत में पसमांदा मुसलमानों का एक बड़ा तबका निवास करता है। जिनकी सामाजिक स्थिति अत्यंत दयनीय है। इस संदर्भ में अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों को विशेष रूप से देखा जा सकता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में बनारस के बुनकर-मजदूर बिरादरी का चित्रण किया है। उन्होंने दिखाया है कि किस प्रकार गरीब तथा अत्यंत पिछड़ा हुआ मुसलमान धनी तथा उच्चवर्गीय मुसलमानों के शोषण का शिकार बनता है। इसके साथ ही उन्होंने गरीब मुसलमानों के जीवन-स्तर, गली-मुहल्ले, खान-पान तथा उस समाज की जटिलताओं का भी सूक्ष्म चित्रण किया है। उनके दूसरे उपन्यास 'समर शेष है' और 'जहरवाद' में भी मुस्लिम समाज के निम्न वर्ग के जीवन-संघर्ष को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है।

भारत में मुसलमानों का बड़ा हिस्सा निम्न वर्ग से आता है। इस वर्ग के मुसलमान भारत के विभिन्न हिस्सों में छोटे- छोटे उद्योग धंधों से जुड़े हैं। इन उद्योग धंधों से घरेलू महिलाओं के लिए भी छोटा-मोटा काम निकल आता है। लेकिन महिलाओं को पारिश्रमिक इतना कम मिलता है कि वे सारा दिन मेहनत करने के बावजूद भी अपना जीवनयापन ठीक से नहीं कर पाती हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने मुसलमानों की विभिन्न समस्याओं जैसे- गरीबी, पिछड़ापन, अशिक्षा, बेरोजगारी, सामाजिक भेदभाव, राजनीतिक शोषण आदि को भी अपने उपन्यासों में दिखाया है। सामाजिक भेदभाव का वर्णन 'मुखड़ा क्या देखें' उपन्यास में उन्होंने इस प्रकार किया है-''अली अहमद ने वहीं बैठे-बैठे लड्डू खाए और हाथ को मुँह तक ले जाकर पानी पिलाने का निवेदन दुकानदारिन से किया। औरत खुद उठकर भीतर गई और पीतल के एक लोटे में पानी भर लाई।

'पी लेबा कि पियायी ?'

दुकानदारिन ने पूछा तो अली अहमद समझ गया।

इस सवाल में जाति धर्म का सवाल छिपा होता था। जो लोटा छूने लायक होते थे, वही लोग खुद से पानी पीते थे। हरिजन और मुसलमान इस कोटे में नहीं आते थे।"[1]

जाति और धर्म की समस्या हमारे भारतीय समाज में सदियों से चली आ रही है। मुसलमान भारत में उसी प्रकार अछूत माना जाता है, जिस प्रकार हरिजन। इस उपन्यास में धर्म परिवर्तन के सवाल को भी उठाया गया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह इस बात पर जोर देते हैं कि जातिगत भेदभाव की समस्या मूलतः समाज की समस्या है। उपन्यास में अली अहमद को एक ईसाई पादरी धर्म परिवर्तन कर ईसाई बनने की सलाह देता है। पादरी उसे लालच देता है कि यदि वह धर्म परिवर्तन कर लेता है तो वह उसे किसी अस्पताल या स्कूल में नौकरी दिला देगा। लेकिन अली अहमद को पता है कि धर्म परिवर्तन उसकी समस्या का हल नहीं है। किसी जमाने में उसके बाप-दादा ने भी हिंदू धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म ग्रहण किया था लेकिन उसकी जाति नहीं बदल पाई। वह पहले भी निम्न जाति का माना जाता था और आज भी। वास्तव में धर्म परिवर्तन समाज की किसी भी समस्या का समाधान नहीं है।

देखा जाए तो जातिगत भेदभाव की समस्या भारतीय समाज की प्रमुख समस्या रही है। इस समस्या को राही मासूम रजा द्वारा अपने उपन्यासों में उठाया गया है। राही ने 'आधा गाँव' उपन्यास में गंगौली गाँव में शिया और सुन्नी मुसलमानों के आपसी भेदभाव को दिखाया है। जिसमें शिया मुसलमानों के यहाँ एक कार्यक्रम में लोगों के बैठने के क्रम को इस प्रकार दिखाया गया है-"तीन दरें के जिस हिस्से में फर्श नहीं था, उसमें जुलाहे बैठे हुए थे। चमारों और भरो के लड़के प्रसाद के लालच में तीन दरे के बाहर जमीन पर उकडू बैठे आपस में लड़ रहे थे।"[2] इस उपन्यास में 'अब्बास' एक उच्च वर्गीय सैय्यद मुसलमान पात्र है। वह अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पढ़ता है और गाँव के ही एक सीनियर जो जाति से 'राकी' यानी निम्नवर्गीय मुसलमान है, उनके घर जाना चाहता है। लेकिन उनके निम्न जाति के चलते अब्बास खुलकर उनसे नही मिल पाता है। परिवार के लोग जब नौहा पढ़ने और सुनने में व्यस्त रहते हैं, ऐसे में ही वह छुप-छुपाकर उनसे मिल पाता है। राही लिखते हैं-"मियाँ लोगों के सामने वह रकियाने नहीं जा सकता था। बड़े जूते पड़ते......'मियाँ अब्बू, तुम इतने बड़े हो गए और तुम्हें यह भी नहीं

---

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह, मुखड़ा क्या देखें, पृष्ठ 37

[2] राही मासूम रजा, आधा गाँव, पृष्ठ 42

मालूम कि अशराफ राकियों-वाकियों के दरवाजे पर नहीं जाते।''[1] राही ने मुसलमानों के आंतरिक भेदभाव के अतिरिक्त हिंदू समाज द्वारा मुसलमानों के साथ किये जाने वाले भेदभाव को भी दिखाया है। भारतीय समाज में मुसलमान अछूत माना जाता है। हिंदू, मुसलमानों को अपने बर्तन में खाना-पानी नहीं देते हैं और न ही मुसलमानों के घर का अन्न-जल ग्रहण करते हैं। वर्तमान में पढ़े-लिखे लोगों के बीच यह धारणा टूटी है लेकिन गाँवों में अभी भी भेदभाव प्रचलित है। 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में 'टोपी' जब सकीना के जोर देकर कहने पर, खाना खाने के लिए उसके घर पर बैठता है, तो वह अजीब स्थिति का सामना करता है। राही लिखते हैं- ''उस दिन उसने पहली बार किसी मुसलमान के घर खाना खाया। अलीगढ़ आकर थाली की आदत तो छूट गई थी, फिर भी जिस डोंगे से इफ्फन सालन निकाल रहा था, उसी डोंगे से उसे अपने लिए सालन निकालना अजीब लगा। जिस चमचे से सकीना दाल निकाल रही थी, उसी चमचे से अपने लिए दाल निकालना आसान नहीं था।''[2] टोपी शुक्ला 'इफ्फन' का घनिष्ठ मित्र है। वह प्रगतिशील विचारों से प्रभावित है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में पढ़ने के कारण उसका मुसलमानों से घनिष्ठ संबंध है। मुसलमानों के बीच टोपी का उठना-बैठना उसके परिवार के लोगों को पसंद नहीं है। इसी कारण उसकी माँ उसे रसोई में नहीं घुसने देती। घर पर उसकी थाली को सबसे अलग रखा जाता है। उसकी माँ जब कभी उसे प्यार से गले लगा लेती है, तब उसे गंगा स्नान करना पड़ता है, क्योंकि टोपी मुसलमानों के साथ रहता है। राही द्वारा अंतर्जातीय विवाह की समस्या को भी उठाया गया है। 'असंतोष के दिन' नामक उपन्यास में विष्णु जी की बेटी मुसलमान लड़के से प्रेम करती है और उससे विवाह करना चाहती है, किन्तु विष्णु जी बेटी के इस फैसले से नाराज होते हैं और पत्नी से कहते हैं कि लड़के की बात और है, लेकिन मैं लड़की को मुसलमानों के हाथ में नहीं दे सकता। उन्हें इस बात का क्रोध रहता है कि इसे मुसलमान ही मिला था प्यार करने को। विष्णु जी इसे अपराध के रूप में देखते हैं। भारतीय परिवारों में आमतौर पर अंतर्जातीय विवाह को सहजता से स्वीकार नहीं किया जाता क्योंकि उन्हें जाति से बहिष्कृत होने का भय रहता है। विष्णु जी भी इसी बात का हवाला देते हैं कि यदि बड़ी बेटी का ब्याह मुसलमान के यहाँ कर देंगे तो छोटी बेटी के विवाह में समस्या आएगी।

---

[1] वही, पृष्ठ 62

[2] राही मासूम रजा, टोपी शुक्ला, पृष्ठ 70

अंतर्जातीय विवाह की समस्या मुसलमानों में भी मौजूद है। उच्चवर्गीय मुसलमान निम्न वर्ग के मुसलमानों से वैवाहिक संबंध नहीं रखते। इसके अलावा वर्ग विशेष के भीतर जो उपवर्ग होता है वह भी आपस में शादी-विवाह नहीं करता। 'सात आसमान' नामक उपन्यास में असगर वजाहत इस समस्या को प्रमुखता से उठाया है। इस समस्या को रेखांकित करते हुए लिखते हैं-''अब्बू साब की शादी तो हो गई थी लेकिन दिक्कत यह थी कि अजीमन बुआ जात की फकीर थी और उनकी बिरादरी अब्बू साब की शादी को मान्यता नहीं दे रही थी। बिरादरी का कहना था कि अब्बू साब कम से कम पाँच घरों में भीख माँगकर फकीर बिरादरी में आ जाए, तो उनकी बात बन सकती है।"[1] भारतीय समाज में इन तमाम विषमताओं के बावजूद हिंदुओं और मुसलमानों के बीच आपसी सौहार्द काफी हद तक बना हुआ है। लोग तीज-त्यौहार, विवाह, जन्म-मरण आदि अवसरों पर एक दूसरे के घर जाते हैं। गाँव में तो ऊँच-नीच के भेद को परे रखकर बच्चों द्वारा ताऊ, चाचा, मामा, भाई जैसे रिश्तों को जोड़कर पुकारा जाता है। कमलेश्वर इस सांप्रदायिक सौहार्द को फैजाबाद के उन गली-मुहल्लों में दिखाते हैं, जहाँ कभी राजनेताओं ने बाबरी मस्जिद के नाम पर भीषण तांडव रचा था। वे लिखते हैं-''मीर बाकी के गाँव सनेहुआ पहुँचने से पहले जब वह फैजाबाद की सड़कों से गुजरा, तो उसे सब सामान्य सा ही लगा। वही बाजार, वही गहमागहमी और वही सामान्य जीवन। बच्चे रिक्शों में लदे स्कूल जा रहे थे। मुसलमान औरतें बुर्का पहने बाजारों में खरीद-फरोख्त कर रही थी या चूड़ियाँ पहन रही थी। हिंदू मनिहार उनकी नाजुक कलाइयों में चूड़ियाँ पहना रहे थे और वे बुर्के का पल्ला उठाए खुले मुँह उनके सामने बैठी थी। वे मनिहार उनके भाई, चाचा या मामा थे।''[2]

हिन्दी उपन्यासकारों में 'गुलशेर खां शानी' एकमात्र ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने आदिवासी इलाकों में रहने वाले निम्नवर्गीय मुसलमानों के जीवन-संघर्ष, पीड़ा, अंतर्विरोध व त्रासदी को अपने उपन्यासों के माध्यम से पाठकों को परिचित कराया है। शानी का बहुचर्चित उपन्यास 'काला जल' में दो मुस्लिम परिवारों की तीन पीढ़ियों की कथा है। इस उपन्यास में आदिवासी इलाके में रहने वाले, सुख-सुविधा से विहीन तथा जीवन की कठिनाइयों से लड़ते-जूझते समाज को चित्रित किया गया है। शानी द्वारा भारतीय समाज की उस स्थिति को बयाँ किया गया है, जिसमें भारत का एक बड़ा

---

[1] असगर वजाहत, सात आसमान, पृष्ठ 9

[2] कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृष्ठ 79

हिस्सा अपना जीवन बसर कर रहा है। इस उपन्यास में 'बी दारोगन' नामक हिन्दू पात्र को विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण दिखाया गया है। बी दारोगन का वास्तविक नाम 'बिट्टी रौताइन' है और जो मिर्जा करामात बेग से विवाह के बाद 'बी दारोगन' के नाम से जानी जाती है। मिर्जा को हिंदू युवती से विवाह करने के कारण बिरादरी से अलग कर दिया जाता है। बिरादरी से पुनः जुड़ने के लिए उनको बिलासपुर के एक मुस्लिम परिवार की लड़की से दूसरा विवाह करना पड़ता हैं। इसी उपन्यास में 'बब्बन' नामक पात्र को भी दिखाया गया है जो कथावाचक के रूप में है। उसकी फूफी बहुत गरीब है लेकिन अत्यंत धार्मिक। शानी अपने उपन्यासों में स्त्री-पुरुष प्रेम संबंधों को प्रमुखता से दिखाते है। उनका उपन्यास 'एक लड़की की डायरी' में एक अविवाहित स्त्री की कथा है। 'बानू' इस उपन्यास की मुख्य पात्र है। वह पढ़ना चाहती है, लेकिन घर के हालात ठीक न होने के कारण, उसकी पढ़ाई पूरी नहीं हो पाती। उसकी बड़ी बहन नजमा का विवाह भी गरीबी के कारण उसकी उम्र से बहुत बड़े तथा पहले से विवाहित एक अधेड़ युवक से कर दिया जाता है। इस प्रकार देखा जाये तो शानी अपनी रचनाओं में उन तमाम छोटी-बड़ी समस्याओं को गंभीरतापूर्वक उठाते हैं तथा उस वर्ग के साथ खड़े दिखाई देते हैं, जो साहित्य में भी उपेक्षित रहा है।

मुस्लिम समाज पर केन्द्रित रचनाकारों में नासिरा शर्मा का भी विशेष महत्त्व रहा है। इनकी रचनाओं में मुस्लिम समाज की कुरीतियों, शोषण व स्त्रियों की समस्याओं को प्रमुखता से उठाया गया है। नासिरा अपनी रचनाओं में पुरुषवादी सत्ता को भी चुनौती देती दिखाई देती है। 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में एक रुढ़िवादी परम्परा को दिखाया गया है। एक परम्परा के तहत 'महरुख' की मंगनी बचपन में ही कर दी जाती है। बाद में उसका मंगेतर उससे विवाह न करके दूसरी स्त्री से विवाह करता है। इस सड़ी-गली व्यवस्था के कारण महरूख आजीवन अविवाहित रहने के लिए विवश होती है। उपन्यास में स्त्री शिक्षा और स्वतंत्रता के प्रश्न को भी प्रमुखता से उठाया गया है। इस सन्दर्भ में 'नामदेव' लिखते हैं-''ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में रूढ़ परंपरा व पुरुष वर्चस्व का तीव्र विरोध देखने को मिलता है। इस उपन्यास की पात्र महरुख की सगाई मुस्लिम समाज में व्याप्त एक अंधविश्वास के तहत, जन्म से पहले ही, रफत के साथ हो गई है और उसको अपनी इच्छानुसार जीवनसाथी चुनने का अधिकार नहीं रह गया है।''[1] इसी प्रकार नासिरा शर्मा अपने दूसरे उपन्यास 'जिंदा मुहावरे' में विभाजन की त्रासदी को

[1] नामदेव, भारतीय मुसलमान : हिन्दी उपन्यासों के आईने में, पृष्ठ 125

चित्रित करती हैं। इस उपन्यास में विभाजन में एक परिवार के दो भागों में बँट जाने और उसके बाद उन परिवारों की स्थितियों को चित्रित किया गया है। देखा जाये तो नासिरा शर्मा द्वारा अपने समस्त आग्रहों में मानवीय संबंधों को धर्म, समाज, राष्ट्र, सत्ता से भी ऊपर व्यक्त किया गया है।

मुस्लिम समाज पर केन्द्रित रचनाकारों में मेहरुन्निसा परवेज का स्थान प्रमुख रहा है। मेहरुन्निसा भी शानी की ही तरह बस्तर क्षेत्र के निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज को अपनी रचना का माध्यम बनती है। 'कोरजा' नामक उपन्यास में इनके द्वारा स्त्रियों की स्थिति को रेखांकित किया है। इस उपन्यास में हिंदू-मुस्लिम, स्त्री-पुरुष प्रेम, आर्थिक तंगी, यौन समस्या, वैवाहिक जीवन की असफलताओं को कम्मो, मोना ,रब्बो, नसीमा आदि पात्रों के माध्यम से दिखाया गया है। रब्बो की माँ और नानी आर्थिक तंगी से जूझ रही हैं। रब्बो आर्थिक तंगी से त्रस्त होकर दूसरे पुरुष से शारीरिक संबंध बनाने को विवश होती है। दरिद्रता और गरीबी का जैसा भयावह चित्रण मेहरून्निसा परिवेज द्वारा इस उपन्यास में किया है, यह स्थिति पूरे भारतीय मुस्लिम समाज की पीड़ा को व्यक्त करता है। भारत में मुसलमानों का एक छोटा तबका ही आर्थिक रूप से संपन्न है, जबकि बड़ा हिस्सा नारकीय जीवन जीने को विवश है। यह हमारे भारतीय समाज में मुसलमानों के संदर्भ में एक कटु यथार्थ है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भारतीय मुसलमान जिस विसंगतिपूर्ण स्थिति को जी रहा है, उसे हिन्दी उपन्यासकारों ने परत-दर-परत खोलने का प्रयास किया है। भारतीय समाज में मुसलमान दो स्तर पर कठिनाई को झेलता है, पहला वाह्य समस्या के रूप में जिसमें यह कि वह अल्पसंख्यक है, भारतीय समाज में अछूत है, उस पर तरह-तरह के आरोप लगाए जाते हैं तथा दूसरा यह कि इस समाज की आंतरिक समस्याएँ भी जटिल रूप धारण करती जा रही हैं। हिन्दी उपन्यासकारों द्वारा दोनों ही स्तरों पर भारतीय मुस्लिम समाज को प्रमुखता से रेखांकित किया गया है।

2.1.2.आर्थिक स्थिति-

आर्थिक पक्ष समाज में रह रहे किसी भी वर्ग की स्थिति को निर्धारित करता है। भूमंडलीकरण के बाद से पूरी दुनिया अर्थ केन्द्रित हुई है। इस आधार ने समाज में आर्थिक असमानता को जन्म दिया। आर्थिक असमानता भारत ही नहीं पूरे विश्व की समस्या है। भारत में अन्य पिछड़े वर्गों की ही तरह मुसलमानों का एक बड़ा हिस्सा आर्थिक विपन्नता

में जीवन व्यतीत कर रहा है। पारंपरिक रोजगार भारतीय पसमांदा मुसलमानों का मुख्य व्यवसाय रहा है, जिसका औद्योगीकरण के कारण तेजी से ह्रास हुआ है। मुसलमान आर्थिक रूप से उच्च, मध्यम, निम्नमध्यम और निम्नवर्ग में विभक्त है। आर्थिक रूप से सम्पन्न मुसलमानों की संख्या बहुत कम है। निम्नमध्यम और निम्नवर्ग के मुसलमानों की संख्या उनकी अपेक्षा काफी अधिक है। हिन्दी उपन्यासों में प्रायः इन्हीं दोनों वर्गों का चित्रण मिलता है। शानी ने 'काला जल' उपन्यास में सर्वप्रथम निम्नवर्गीय मुसलमानों का चित्रण किया है। शानी द्वारा मिर्जा करामात बेग, बी दारोगन, रज्जू मियाँ, फूफी रशीदा, बिट्टी रौताइन आदि पात्रों के माध्यम से बस्तर के मुसलमानों के जीवन संघर्ष को दिखाया गया है। उनके जीवन-परिवेश के बारे में वे लिखते हैं-“पड़ोस का हाल उससे अच्छा न था। तीन चार घरों को छोड़कर, बाकी सारी आबादी निम्न वर्ग के रिक्शा वाले, बढ़ई, कारीगर आदि किस्म के लोगों की थी, जो स्वयं तो दिनभर गायब रहते, लेकिन अपने नंगे-गंदे बच्चों को सड़कों पर लापरवाही से धूप में खेलने के लिए छोड़ जाते।”[1] उपन्यास का पात्र मिर्जा करामात बेग चूड़ी बेचने का काम करता है। चूड़ी बेचकर उसके परिवार का गुजारा नहीं हो पाता, इस कारण पूरा परिवार घोर आर्थिक तंगी में अपना जीवन व्यतीत करता है। आर्थिक तंगी के बावजूद भी उनके भीतर धार्मिक पाखंडो के प्रति घोर आस्था है। धार्मिक पाखंड के कारण मिर्जा करामात के मरने पर उसकी सारी जमा-पूँजी चालीसवें में खर्च हो जाती है। ठीक इसी तरह बब्बन की फूफी का चरित्र भी देखा जा सकता है जो घोर आर्थिक दरिद्रता में अपना जीवन बिताने के बावजूद भी 'शबे बारात' के मौके पर फातिहा के लिए तमाम तरह के इंतजामात में फालतू खर्च करती है।

मुसलमानों के आर्थिक विपन्नता को बदिउज्जमाँ के उपन्यासों में भी देखा जा सकता है। उनका उपन्यास 'छाको की वापसी' में बिहार के 'गया' शहर के एक मुस्लिम मुहल्ले में रहने वाले छाको के परिवार की कथा को प्रस्तुत किया गया है। 'छाको' का पिता दर्जी का काम करता है। उसकी एक बहन जो विधवा है और वह अपने बच्चों के साथ पिता के पास ही रहती है। छाको के पारिवारिक संघर्ष को बदिउज्जमाँ ने बड़ी मार्मिकता के साथ दिखाया है। इस उपन्यास में बेरोजगारी की समस्या को भी उठाया गया है। जिसमें पढ़े-लिखे लोगों के बीच भी रोजगार की समस्या है। उपन्यास का पात्र 'गाँधी भाई' पढ़े-लिखे, जुझारू, कर्मठ कांग्रेस के कार्यकर्ता हैं, लेकिन रोजगार के अभाव में वे पारिवारिक खर्च को उठाने में वह सक्षम नहीं है। बदिउज्जमाँ ने पारम्परिक पेशों,

[1] गुलशेर खां शानी, काला जल, पृष्ठ 266

अशिक्षित वर्ग तथा पढ़े-लिखे नौजवानों के मध्य बेरोजगारी, कम आमदनी और उसके प्रभाव से समाज में व्याप्त दरिद्रता को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार ग्रामीण और कस्बाई जीवन पर लिखने वाले रचनाकारों में राही मासूम रजा का स्थान विशेष है। 'राही' भारत में मुस्लिम समाज की स्थिति को कई रूपों में प्रस्तुत करते हैं। उनके यहाँ भी आर्थिक पक्ष पर विशेष बल दिया गया है। अपने उपन्यास 'आधा गाँव' में जमींदारी प्रथा के अंत के बाद जमीदार मुसलमानों की खराब आर्थिक स्थिति को उन्होंने मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। जमीदारों की शानों-शौकत, अय्याशी और स्त्रियों के शोषण को राही ने बारीकी से दिखाया है। बड़े-बड़े जमीदार, छोटे जमीदारों, किसानों तथा निम्नवर्गीय समाज के लोगों पर अपना वर्चस्व दिखाते हैं। उनकी स्त्रियों का शोषण करते हैं। राही की ही भांति असगर वजाहत ने भी मुस्लिम जमीदारों में जमीदारी समाप्त होने के बाद आर्थिक विपन्नता की स्थिति को दिखाया है। उनके उपन्यास 'सात आसमान' में जमीदारों के जीवन स्तर, रहन-सहन की विस्तारपूर्वक प्रस्तुति देखी जा सकती है। जमीदारी प्रथा के अंत के बाद, जमीदारों का भी जीवन स्तर समाज के वंचित तबको के समान दिखाया गया है। उच्च सामाज का भी आर्थिक रूप से कमजोर हो जाने के कारण उनके बीच उत्पन्न निराशा और कुंठा को व्यक्त करते हुए असगर वजाहत लिखते हैं-"अब्बा मियाँ का जो कुछ भी था, जमीदारी ही थी। वही सैकड़ों सालों से पुरखों की बची-खुची जायदाद थी। उसी से उनका सम्मान था। उसी से उनका नाम था। उसी से उनकी आमदनी थी। वही उनकी जिंदगी का ढर्रा थी। जमीदारी चली जाने के बाद उन्होंने कसम खाई कि वो कभी अपने इलाके पर नहीं जाएंगे। वो ये नहीं चाहते थे कि जहाँ उनका जबरदस्त रोब-दाब था, जहाँ उनके नाम से लोग थर्राते थे, वहाँ वो एक आम आदमी की हैसियत से जाएँ।"[1] असगर वजाहत उपन्यास में यह दिखाते है कि किस प्रकार जमीदारी समाप्त होने के बाद उच्चवर्गीय मुसलमानों में पढ़ने-लिखने और सरकारी नौकरी को पाने पर जोर दिया जाने लगा। देखा जाए तो भारतीय समाज में यह रुझान स्वतंत्रतापूर्व से ही दिखाई देता है। पूँजीवादी प्रभाव और अंग्रेजी हुकूमत के दखल से जब सामंती और जमीदारी प्रथा में पहले वाली बात न रह गयी, तब समाज के उच्च तबको द्वारा सरकारी उच्च पदों को पाने की ललक बनी। यह ललक उच्चवर्ग के मुसलमानों में भी थी। स्वतंत्रता के बाद मुसलमानों का उच्च वर्ग ही इस ओर तेजी से आगे बढ़ा और शिक्षा के महत्त्व को समझा। उपन्यास में

---

[1] असगर वजाहत, सात आसमान, पृष्ठ 154

इस स्थिति को देखे तो लक्खू मियाँ जमीदारी खत्म होने के बाद वकालत की पढ़ाई कर, वकील बन जाता है। इसी तरह अब्बू मियाँ बीड़ी का कारखाना लगा लेते हैं। वहीं कुछ लोग जानवरों के व्यवसाय में जुट जाते हैं। ठीक इसके विपरीत जो निम्नवर्गीय मुसलमान शिक्षा से कोसो दूर रहे, उनके द्वारा अपने पुरखो के पारम्परिक पेशे को ही अपनाया गया।

मुसलमानों के आर्थिक स्थिति को नासिरा शर्मा के यहाँ भी देखा जा सकता है। उनके उपन्यास 'जिंदा मुहावरे' में जमीदारी प्रथा के अंत के बाद की जमीदारों की स्थिति, उनकी आर्थिक विपन्नता पर प्रकाश डाला गया है। उन्होंने जमीदारों की झूठी शानो-शौकत को भी दिखाया है। अपनी ऐठ और अय्याशी के लिए वे अपनी पुरखो की जमीने बेचकर अपना शौक पूरा करते हैं, लेकिन उनके भीतर इस डर को भी दिखाया गया है कि यह अमीरी बहुत दिनों तक उनका साथ नहीं देने वाली, उन्हें भी मेहनत मजदूरी करनी पड़ सकती है। उपन्यास का पात्र 'सरफुद्दीन' जो विभाजन में पाकिस्तान जा चुका होता है, बहुत बाद में जब वह भारत में रह रहे अपने रिश्तेदारों से मिलने आता है तो उनकी गरीबी, उदासी देखकर दुखी होता है।

मुसलमानों के सामाजिक, आर्थिक स्थिति को अब्दुल बिस्मिल्लाह के यहाँ भी देखा जा सकता है। उन्होंने अपने उपन्यास 'मुखड़ा क्या देखे' में जमींदारी प्रथा के अंत के बाद मुस्लिम जमीदारों के जीवन स्तर को दिखाया है। जमीदारी समाप्त होने के बाद मध्यवर्गीय मुसलमानों का जीवन स्तर और आर्थिक स्थिति पर किस प्रकार असर हुआ है, इसे इस उपन्यास में देखा जा सकता है। उपन्यास में 'जब्बार मौलवी' और 'रामवृक्ष पांडे' दोनों ही जमीदार है और दोनों ही आर्थिक विपन्नता के दौर से गुजर रहे हैं। अधिकतर जमीदार, जमीदारी प्रथा के उन्मूलन के बाद सरकारी नौकरी के तरफ अपना रुख करते है। अब्दुल बिस्मिल्लाह लिखते हैं-''जमीदारी ख़त्म होने से जब्बार मौलवी साहब को भी बहुत रंज हुआ, 'करीम ने फिर बोलना शुरू किया, 'मगर क्या करते ? हाँ इतना जरूर किया उन्होंने कि काश्तकारों को समझा-बुझाकर जमीने वापस ले ली। अधिया पर खेती कराने लगे। पर आधा-तिहाई में भला क्या बचता है ? वे तो कहिए सत्तार को नौकरी मिल गई, कि कुछ सहारा हो गया; पोस्ट मास्टर हो गए हैं।''[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह ने निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज को अपने उपन्यास में प्रमुखता से दिखाया है।

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह, मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ 100

समाज में आर्थिक तंत्र का जाल किस कदर घर कर गया है, जिसके अभाव में प्रत्येक व्यक्ति के भीतर निराशा और हताशा का भाव भर चुका है। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में चूड़ी बेचने वाले मुसलमानों की स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने गरीबी के कारण एक व्यक्ति के आत्मसम्मान को लगने वाले ठेस को भी दिखाया है। गरीबी व्यक्ति के भीतर की सारी आकांक्षाओं, स्वप्नों, आत्मसम्मान को चूर कर देती है। व्यक्ति निराशा, कुंठा, लज्जा व अनेक मानसिक यंत्रणाओं का शिकार बन जाता है। साथ ही बढ़ती हुई महँगाई ने भी मध्य व निम्न वर्ग को अधिक प्रभावित किया है। महँगाई एक ऐसी समस्या है जो विभाजन के बाद भारत में दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है। पूँजीवाद के प्रभाव से आम जनता को काफी नुकसान हुआ है। आज भी भारत की एक बड़ी आबादी भूख की समस्या से त्रस्त है, उसे भरपेट भोजन भी नहीं मिल पाता। भारतीय मुसलमानों में भी यह समस्या विकट रूप में देखी जा सकती है। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में 'अली अहमद' एक गरीब युवक है। वह इलाहाबाद में जवाहरलाल से मिलने के लिए घर से पैदल निकल पड़ता है। रास्ते में उसे प्यास लगती है। तमाम बड़े-बड़े चमकते होटलों को देखकर, वह चुपचाप एक छोटी सी पुरानी दुकान पर जाता है। दुकानदारिन से उसके जो संवाद होते हैं वह इतने सहज व यथार्थपूर्ण हैं कि उनसे एक प्रकार का तादात्म में स्थापित हो जाता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह उसे कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं-"वह दुकान के सामने बैठ गया और अपना मुँह थोड़ा आगे करके जोर से बोला, 'बतासा कइसे दिहूँ ?

'बतासा ? चार रुपिया सेर।'

अली अहमद बुझ गया। उसने लाई का एक लड्डू उठा कर पूछा,.. अउर बंधुइया लाई ?

'इकन्नी में आठ'

'अरे काहे अइसन अत्त किहे हऊ। इकन्नी में बारा तो हमरे गाँव मा अहै। दुई पइसा के छै ठै देबू ?'

पाँच ठे मिली, गुड़ बहुत महँगा होई गवा है भइया।"[1]

---

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह, मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ 37

बढ़ती महँगाई और आर्थिक तंगी ने परिवार में रिश्तों पर भी प्रभाव डाला है। समाज में एकल परिवार का चलन तेजी से बढ़ा है। दहेज की समस्या भी कहीं न कहीं महँगाई से जुड़ी हुई समस्या है। बेरोजगारी से आम जनता त्रस्त है। मुसलमानों के समक्ष भी यह सारे मुद्दे विद्यमान है। कम साक्षरता और आर्थिक विपन्नता ने मुसलमानों को हाशिये पर धकेलने का काम किया है। भारत के सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में मुसलमानों की भागीदारी महज तीन से चार फीसदी तक ही सीमित है। इसमें भी यह हिस्सा उच्चवर्गीय मुसलमानों का ही है। वहीं निम्नवर्गीय मुसलमान फैक्ट्रीयों में मजदूरी करने को विवश है। इस स्थिति ने इस समाज को व्यपक स्तर पर प्रभावित किया है। न्यूनतम मजदूरी की समस्या निम्नवर्गीय समाज की स्थिति को और भी जटिल बना रही है। आर्थिक तंगी के कारण निम्न वर्ग शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य मूलभूत आवश्यकताओं को भी पूरा करने में असमर्थ है। अब्दुल बिस्मिल्लाह 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में भी इस समस्या को दिखाया है। इस उपन्यास में दिखाया गया है कि किस प्रकार बड़े काश्तकार छोटे काश्तकारों का शोषण करते हैं। हाजी अमीरुल्ला साड़ी के बड़े व्यापारी हैं। छोटे कारीगर जो कतान खरीदने में असमर्थ हैं, उनके यहाँ से कतान ले जाते हैं और साड़ी बुनकर उनको पहुँचाते हैं। हाजी साहब उन कारीगरों को उचित मूल्य नहीं देते। मतीन कहता है-"करघा अपना, जांगर अपनी, सिर्फ कतान हाजी साहब का, लेकिन हाजी साहब की कोठियाँ तन गई और मतीन इसी ईट की कच्ची दीवारों वाले दरबे में गुजर कर रहा है। पेट को ही नहीं अटता, क्या करें ? कितनी भी सफाई से बिनो, नब्बे रुपया से ज्यादा मजदूरी नहीं मिलने की। हफ्ते भर में सिर्फ नब्बे रुपया। उसमें से भी कभी पाँच रुपया 'दाग' का तो कभी तीन रुपया 'मत्ती' का और कभी 'रफू' का तो कभी 'तीरी' का कट जाता है। महँगाई की हालत यह है कि दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जा रही है।"[1] इस उपन्यास में मतीन एक बुनकर सोसाइटी बनाना चाहता है। जिसमें सरकार द्वारा बुनकरों को आर्थिक सहायता प्रदान करने की योजना है। बैंककर्मी, मतीन से फाइल पास करवाने के नाम पर पैसे माँगता है। जब तक मतीन पैसे जुटाता, उससे पहले हाजी अमीनुल्ला बुनकरों से फर्जी हस्ताक्षर करवाकर, सोसायटी बनाने का दावा पेश कर देते हैं। इस प्रकार के भ्रष्टाचार के कारण बुनकरो को आर्थिक सहायता नहीं मिल पाती। हम देख सकते हैं कि मुसलमानों की आर्थिक स्थिति, उनके शोषण, महँगाई, भ्रष्टाचार व रोजगार की समस्या को हिन्दी उपन्यासों में प्रमुखता से दिखाया गया है। इन उपन्यासों

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह, झीनी झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ 11

में भारत की स्वतन्त्रतापूर्व तथा स्वतंत्रता पश्चात् की आर्थिक स्थिति को सफलतापूर्वक दिखाया गया है। समय और परिस्थिति के प्रभाव में किस प्रकार भारतीय समाज में पारम्परिक पेशों से जुड़े वर्गों का क्षरण होता गया है, जिसका प्रभाव मुसलमानों पर भी देखा जा सकता है।

2.1.3. राजनीतिक स्थिति-

1947 भारतीय इतिहास में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। यह वह समय था जहाँ एक तरफ देश अंग्रेजी हुकुमत से मुक्त हो रहा था, दूसरी तरफ भारत से विभाजित होकर एक अलग देश 'पाकिस्तान' बन रहा था। यह परिघटना पूर्णतया राजनीतिक था। देखा जाये तो भारत विभाजन की भूमिका 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही बननी शुरू हो गई थी। कांग्रेस के ढुलमुल रवैए ने मुसलमानों के भीतर असुरक्षा की भावना पैदा की। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ तक धार्मिक कट्टरता को राजनीति का आधार बनाया गया। हिंदुओं और मुसलमानों के भीतर धर्मिक कट्टरता को जगाया गया। मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में 'मुस्लिम लीग' तो वहीं 'विश्व हिंदू परिषद' हिन्दुओं का प्रतिनिधि बनकर सामने आया। समाज में ऐसे दलों की सक्रियता से सांप्रदायिक दंगों में इजाफा हुआ और हिन्दू और मुसलमानों के बीच विभेद गहरा हुआ। अंग्रेजों द्वारा भी इस स्थिति को गम्भीरता से नहीं लिया गया। इस दौर में धर्म और राजनीति का जो घालमेल हुआ उसका भारतीय समाज पर व्यापक असर हुआ। इस प्रभाव को विभाजन के बाद भी हमारे समाज में देखा जा सकता है। विभाजन के बाद मुसलमानों को वोट बैंक के रूप में राजनीतिक पार्टियों द्वारा देखा जाने लगा। आजादी के पश्चात् कांग्रेस पार्टी की सरकार बनी और कई दशकों तक उसके द्वारा शासन किया गया। इस दौरान भी सांप्रदायिक दंगो का होना जारी रहा। ये दंगे प्रायः हिन्दू बनाम मुस्लिम ही रहे है। इन दंगों से भारतीय मुसलमानों को काफी क्षति हुई। विडंबना यह है कि कांग्रेस पार्टी ने इन दंगो पर नियंत्रण बनाने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया। इसके साथ ही भारतीय जनता गरीबी, अशिक्षा, महँगाई, बेरोजगारी, सूखा, अकाल, भुखमरी आदि से जूझ रही थी। इस कारण धीरे-धीरे लोगो का आजादी से मोहभंग होने लगा। हिन्दी रचनाकारों ने विभाजन और उसके बाद मोहभंग की स्थिति को प्रमुखता से चित्रित किया है। हिन्दी उपन्यासकारों ने भी इस राजनीतिक परिवेश को अपने उपन्यासों की विषय-वस्तु बनाया है। 'मैला आंचल', 'झूठा सच', 'आधा गाँव', 'राग दरबारी', 'तमस' जैसे कालजयी उपन्यास तत्कालीन

राजनीतिक परिदृश्य के यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं। यशपाल ने 'झूठा सच' उपन्यास में विभाजन के दौरान के साम्प्रदायिक वातावारण को प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में भारतीय समाज में विभाजन के दिनों की आतंरिक गतिविधियों के साथ-साथ गाँधी की भूमिका को प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया है। दंगों के भयावह समय में गाँधी जी लोगों से सांप्रदायिक सौहार्द बनाये रखने की अपील करते हैं। साथ ही वे सरकार से भी आग्रह करते हैं कि वह लोगों की सुरक्षा व आपसी सौहार्द को बनाए रखने की जिम्मेदारी निभाए। गाँधी जी पाकिस्तान में भी अमन कायम करना चाहते हैं। वे कहते हैं कि-"मैं पाकिस्तान जाना चाहता हूँ और जाऊँगा। मैं कायदे आजम के सामने जाकर हाथ जोड़कर दया और शांति के लिए प्रार्थना करूंगा।"[1] गाँधी जी सत्य और अहिंसा में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे। वे शुरू से ही भारत विभाजन के विरुद्ध रहे। जबकि जिन्ना ने राजनीति में मुसलमानों की भागीदारी सुनिश्चित करने को ज्यादा महत्त्व दिया और अलग देश पाकिस्तान की माँग रखी। जिसे तत्कालीन भारतीय नेताओं ने स्वीकार कर लिया। इन सभी स्थितियों की भारी कीमत भारतीय जनता को चुकानी पड़ी। कथाकार कमलेश्वर जिन्ना के राजनीतिक नीतियों की निंदा करते हुए लिखते हैं-"अरे कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना! सुना तुमने, तुम खुद पश्तूनों, पंजाबियों, बलूचियों, सिंधियों, बंगालियों और मुहाजिरों को नहीं संभाल पाओगे।

--ये आपस में लड़ मरेंगे।....

--मजहब काम नहीं आएगा।....तब तहजीब तवारीख और नसों में बहता खून ही काम आएगा। जो कौम की असलियत को तय करेगा।"[2]

विभाजन के बाद भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली शुरू की गई। जिसमें जनता को अपना नेता स्वयं चुनने का अधिकार दिया गया। दुर्भाग्य से इस लोकतांत्रिक प्रणाली को विकसित करने की अपेक्षा जाति और धर्म पर केन्द्रित राजनीति को अधिक महत्त्व दिया गया। राजनीतिक दलों ने जनता को एकजुट करने के लिए धर्म व जाति के नाम पर चुनाव लड़ना शुरू किया। मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में मुसलमान प्रत्याशी और हिंदू बहुल क्षेत्रों में हिंदू प्रत्याशी तथा जाति विशेष की संख्या बल को आधार बनाकर प्रत्याशी खड़ा करना, राजनीतिक पार्टियों का चरित्र बन गया। परिणामस्वरूप

---

[1] यशपाल, झूठा सच, पृ 87

[2] कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृष्ठ 106

राजनीतिक दलों ने कई ऐसे लोगो को अपनी पार्टी में शामिल किया जो वैचारिक तौर पर कट्टर थे। कांग्रेस पार्टी ने भी मुसलमानों का वोट पाने के लिए मुस्लिम लीग के पुराने समर्थकों को अपने पार्टी में शामिल किया। इस सम्बन्ध में राही मासूम रजा लिखते हैं- ''उन दिनों कांग्रेस वाले भी कुछ जल्दी में थे। उन्हें पता था कि चुनाव में उन्हें मुसलमान वोटों की जरूरत पड़ेगी इसलिए उन्होंने धड़ाधड़ पुराने मुस्लिम लीगियों को, शहर कमेटी, जिला कमेटी, अल्लम कमेटी, गल्लम कमेटी में भरना शुरू कर दिया।''[1] कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के पुराने नेताओं को भी अपनी पार्टी में शामिल कर लिया, इससे स्पष्ट है कि कांग्रेस पार्टी ने वैचारिक प्रतिबद्धता से ज्यादा चुनाव जीतने पर बल दिया। यह सही है कि कांग्रेस पार्टी ने मुसलमानों को वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल किया है। लम्बे समय तक केन्द्रीय सत्ता में रहने के बावजूद मुसलमानों के बुनियादी समस्याओं, उनके आर्थिक व सामाजिक सुधार के लिए कांग्रेस पार्टी ने कभी अपनी प्रतिबद्धता नहीं दिखाई। यही कारण है कि स्वतंत्रता के बाद विभिन्न क्षेत्रों में मुसलमानों की भागीदारी लगातार कम होती गई। मुसलमानों की सामाजिक आर्थिक व शैक्षणिक स्थिति का पता लगाने के लिए 2006 में कांग्रेस ने 'सच्चर कमेटी' गठित की। इस कमेटी ने मुसलमानों की खराब आर्थिक, सामाजिक व शैक्षणिक स्थिति के पीछे कई कारण बताये हैं बावजूद इसके इन समस्याओं के समाधान के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया।

स्वतंत्रतापूर्व भारतीय राजनीति व स्वाधीनता संग्राम में कांग्रेस पार्टी काफी सक्रिय रही है। मुस्लिम लीग की स्थापना के बावजूद बहुत सारे मुसलमान कांग्रेस का समर्थन करते थे और पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता भी रहे। दूधनाथ अपने उपन्यास 'आखिरी कलाम' में मुसलमानों का कांग्रेस पार्टी के प्रति रुझान को इस प्रकार व्यक्त करते हैं- ''हमारे दादा अब्दुल्ला उर्फ मल्लू राजा अयोध्या में उनतालीस साल तक दर्जी रहे। बहुत बड़े कारीगर थे हुजूर हाथ में हुनर था जस भी था। '32 से '39 तक नगर कांग्रेस कमेटी के मेंबर रहे। फिर भारत छोड़ो आंदोलन से आजादी तक और उसके बाद भी तकरीबन '49 तक जिला कांग्रेस कमेटी में रहे।''[2] स्वतंत्रता के बाद भी कांग्रेस पार्टी के प्रति मुसलमानों का रुझान रहा है। किन्तु 80 का दशक आते-आते क्षेत्रीय पार्टियों के प्रति लोगों का रुझान तेजी से बढ़ता गया। स्वतंत्रता के बाद मुसलमानों के राजनीतिक नेतृत्व

---

[1] राही मासूम रजा, ओस की बूंद, पृष्ठ 16

[2] दूधनाथ सिंह, आखिरी कलाम, पृष्ठ 276

पर भी सवाल उठते रहे हैं। जिसके कारण विभिन्न पार्टियों द्वारा मुसलमानों को प्रतिनिधि बनाने में लगातार कटौती देखी जा सकती है। भारतीय राजनीति में मुसलमानों की वर्तमान स्थिति यह है की यह वर्ग केवल वोट बैंक के रूप में देखा जाता है। सभी राजनीतिक दल उन्हें चुनाव में साधने की कोशिश करते हैं। मुसलमानों का अपना कोई मजबूत राजनीतिक नेतृत्त्व न होने के कारण वह कभी इस पार्टी को, कभी उस पार्टी को समर्थन देते है। यहाँ एक और तथ्य भी सही है कि मुसलमानों का राजनीतिक रुझान सदैव एक सा नहीं रहा है। राजनीतिक दलों के चरित्र पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए राही लिखते हैं-"राजनीति चाहे दाएँ हाथ की हो या बाएँ हाथ की.... कोई मुसलमानों को उसका क्षेत्रीय पहचान देने को तैयार नहीं है। चुनाव के दिनों में चुनाव का नक्शा बनता है। वोटरों की खाना बंदी होती है तो मुसलमानों का खाना अलग बनता है।"[1]

राही मुसलमानों के क्षेत्रीय पहचान की बात करते हैं। उनका मानना है कि मुसलमान देश के विभिन्न हिस्सों में बटा हुआ है। वह जिस प्रदेश में निवास करता है, वहाँ की स्थानीयता का प्रभाव उस पर साफ दिखाई पड़ता है। उसका खान-पान, बोली, भाषा, व्यवहार, परंपरा, रीति-रिवाज, वेशभूषा आदि पर स्थानीय का वैसा ही प्रभाव होता है, जैसा कि हिंदुओं पर। भारत में गुजराती, पंजाबी, बंगाली, मराठी और दक्षिण भारतीयों को उसके क्षेत्रीय पहचान के आधार पर जाना जाता है। जबकि पूरे देश में मुसलमानों को एक विशेष धार्मिक पहचान दे दी गयी है। भारत में कई ऐसे राजनीतिक दल हैं, जो मुसलमानों का खुलकर विरोध करते है। महाराष्ट्र में 'शिवसेना' ऐसी ही एक राजनीतिक पार्टी है, जो क्षेत्रीय और सांप्रदायिक राजनीति को बढ़ावा देती है। उसके कार्यकर्ता हाथ में त्रिशूल लिए खुद को शिवभक्त बताते हैं और 'आमची मुंबई' का नारा लगाते हैं। शिवसेना के नेता मुसलमानों के खिलाफ खुलेआम भड़काऊ भाषण देते हैं। राही ने क्षेत्रवाद, जातिवाद, धर्म व सम्प्रदायवाद की राजनीति करने वाली पार्टियों की निंदा की है। धर्म निरपेक्षता के सवाल पर भारत के सभी राजनीतिक पार्टियों का चरित्र संदेहास्पद रहा है। भिवंडी में हुए एक सांप्रदायिक दंगे पर राजनीतिक पार्टियों की क्या प्रतिक्रिया रही है उसे राही ने इस प्रकार दिखाया हैं-"बसंतदादा पाटिल, मुख्यमंत्री ने टाइम्स ऑफ इंडिया के संवाददाता के इस बयान को गलत बताया था कि भिवंडी में

---

[1] राही मासूम रजा, असंतोष के दिन, पृष्ठ 51

लोग जिंदा जलाए गए। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के संवाददाता ने कहा कि बसंतदादा पाटिल झूठ बोल रहे हैं।

भारतीय जनता पार्टी के मंच से कोई बयान नहीं आया।/जनता पार्टी चुप।/शिवसेना चुप रही।/पीजेंट एंड वर्कर्स पार्टी चुप रही।/कांग्रेस एस चुप।/कांग्रेस जे चुप।/कांग्रेस आई चुप।/सी.पी. एम चुप / सी.पी. आई चुप।

भारतीय राजनीति चुप के सहारे में खड़ी थी। भारतीय पत्रकार बोल रहे थे।''[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सांप्रदायिकता के मुद्दे पर सभी पार्टियाँ चुप्पी साध लेती हैं। इसका सीधा मतलब वोट बैंक से है। भारत में राजनीतिक पार्टियों को इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि देश में सांप्रदायिक माहौल को बदला जाए और हिंदू मुस्लिम के बीच दूरी कम की जाए। बल्कि वे इस सांप्रदायिकता को चुनाव में जनमत तैयार करने के लिए इस्तेमाल करते हैं।

पिछले कुछ दशकों में मीडिया जगत में एक बड़ा परिवर्तन आया है। समाचार पत्रों, टीवी चैनलों और सोशल मीडिया ने भारतीय राजनीति को निम्न स्तर तक पहुँचाने में अपना भरपूर सहयोग दिया है। आज की मीडिया अवधारणा निर्मित करने का काम करती है। जनता को उन्ही खबरों से परिचित कराती है, जिनसे उनका राजनीतिक सरोकार जुड़ता है। मीडिया द्वारा अपने लाभ के लिए सनसनीखेज और ज्वलंत ख़बरों को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाता है। यह स्थिति तब और भयावह हो जाती है जब साम्प्रदायिक तनाव और दंगों से समाज जूझ रहा होता है। बाबरी विध्वंश के समय मीडिया के चरित्र को व्यक्त करते हुए दूधनाथ सिंह लिखते हैं-''यही वह निर्देशित हमलावर है जो अख़बार का लक्ष्य है और जो आज दुनिया में बड़े-बड़े सनसनीखेज, चित्रों की सजधज, त्रिआयामी चलन, तथाकथित वस्तुपरकता और 'सिर्फ तथ्य ही तथ्य' और 'सिर्फ टिप्पणी ही टिप्पणी' के साथ हैरतअंगेज कारनामा कर दिखाता है। 'जनमानस' के इन्हीं निर्देशित हमलावरों का जमावड़ा उन दिनों अयोध्या और फैजाबाद में था।''[2] अयोध्या में बाबरी मस्जिद विध्वंस पूरी तरह राजनीतिक दलों द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम था। भारतीय जनता पार्टी के नेताओं ने रथ यात्रा निकालकर पूरे देश में

---

[1] राही मासूम रजा, असंतोष के दिन, पृष्ठ 70

[2] दूधनाथ सिंह, आखिरी कलाम, पृष्ठ 224

सांप्रदायिक वातावरण निर्मित किया और लोगों को अयोध्या में संगठित होकर, मस्जिद का ढाँचा गिराने का आह्वान किया। उन दिनों उत्तर प्रदेश में मुसलमानों के हिमायती माने जाने वाले 'समाजवादी पार्टी' के मुखिया मुलायम सिंह यादव मुख्यमंत्री थे। उन्होंने मस्जिद विध्वंस, लूटपाट व दंगे करने वाले कारसेवकों को रोकने के लिए कोई सार्थक कदम नहीं उठाया। दूधनाथ लिखते हैं कि-"सुबह के अखबार में कुछ वक्तव्य थे और और मुख्यमंत्री की धमकी भरी सन्यासी उद्घोषणा थी कि- मैं 'कारसेवकों' पर गोली नहीं चलवाऊँगा।"[1] बाबरी विध्वंश की घटना पर राज्य सरकार ने किसी भी तरह की कार्यवाही करने से मना कर दिया। साथ ही केंद्र में बैठी कांग्रेस पार्टी ने भी अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं समझी। बिहार में राष्ट्रीय जनता दल प्रमुख लालू प्रसाद यादव ने आडवाणी की रथयात्रा को अवश्य रोक दिया था। इस घटना ने मुसलमानों के राजनीतिक भविष्य को बहुत हद तक प्रभावित किया।

भारतीय राजनीति में 80 का दशक विशेष उल्लेखनीय रहा है। इंदिरा गाँधी का शासन और उनके द्वारा इमरजेंसी का लगाया जाना भारत के लिए अविस्मरणीय घटना बनी। हिन्दी उपन्यासों में इंदिरा गाँधी द्वारा लगाई गई इमरजेंसी का जिक्र बार-बार आता है। उपन्यासकारों ने इसे एक तानाशाही फैसले के रूप में दिखाया है। राही ने 'कटरा बी आरजू' नामक उपन्यास में आपातकाल की घटना को आधार बनाया है। आपातकाल पर लिखा गया यह हिन्दी का पहला उपन्यास है। उपन्यास में आम जन-जीवन पर इमरजेंसी के प्रभाव को दिखाया गया है। किस प्रकार पुलिस निर्दोष लोगों को पकड़ कर जेल में डाल रही थी। इमरजेंसी के पक्ष में वोट न देने के कारण उपन्यास का पात्र 'अब्बास' पर सरकार का तख्ता पलटने का आरोप लगाया जाता है। अब्बास उर्दू का एक मामूली सा पत्रकार है। इमरजेंसी की घटना को बदिउज्जमाँ ने भी अपने उपन्यास 'छठा तंत्र' में उठाने का प्रयास किया है।

समाज पर राजनीति के प्रभाव को असगर वजाहत ने भी अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। किस प्रकार वर्तमान भारतीय राजनीति का चरित्र विकृत हुआ है साथ ही भारतीय राजनीति में धन-बल का प्रयोग के साथ ही गुंडे, बदमाशों की राजनीति में सक्रियता को भी इनकी रचनाओं में प्रमुखता से उठाया गया है। नेताओं पर संगीन मुकदमों का होना तथा धन कमाने की लालसा में राजनीति को धंधा बना दिया गया है।

---

[1] दूधनाथ सिंह, आखिरी कलाम, पृष्ठ 366

लगभग सभी राजनीतिक दलों और उसके नेताओं का यही हाल है। नेता धर्म के नाम पर राजनीति करते हैं और अपनी जेब भरते हैं। 'बरखा रचाई' उपन्यास में शकील मुसलमानों का नेता बना फिरता है। अपने मित्र से बात करते हुए कहता है-"जमीन खरीदकर डाल दी है... सोचा है कभी कॉलोनी कटवा दूंगा... बगैर पॉलिटिक्स के पैसा नहीं आता और बिना पैसे की पॉलिटिक्स नहीं होती....एम.पी. का टिकट चाहिए तो चार एम.एल.ए. के उम्मीदवारों का पैसा देना है।.. पार्टी तो देती है, नहीं देती है उससे कोई मतलब नहीं है... अपना एक सर्किल तो बनाना ही पड़ता है।...जिसमें सभी होते हैं....दादी दाढ़ी न रखूँ तो लोग मुसलमान नहीं मानेंगे...मुसलमान न माना तो गई पॉलिटिक्स...अब तो ये है कि कितने वोट हैं आपके पास ? मैंने शहर ही नहीं इलाके की मस्जिदों का एक नेटवर्क बना दिया है...मदरसे उन्हीं में शामिल है।"[1] शकील खुद को मुसलमानों का नेता मानता है तथा विकास के नाम पर केवल मस्जिद और मदरसों का नेटवर्क बनाता है। मुसलमानों के विकास से उसका कोई सरोकार नहीं है। वह सिर्फ अपने भविष्य के लिए प्रॉपर्टी बनाता है। यह हाल वर्तमान में देश की संपूर्ण राजनीति का है। मुसलमान नेता धर्म के नाम पर वोट तो ले लेते हैं लेकिन उनकी मूलभूत सुविधाओं पर भी ध्यान नहीं देते। यही कारण है कि भारतीय राजनीति में मुसलमानों की समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि जो लोग उनका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, वे अपने स्वार्थ के लिए राजनीति कर रहे हैं। नेताओं को यह ज्ञात है कि भारतीय जनता जितनी अधिक अशिक्षित होगी, राजनीति करना उतना ही आसान होगा।

भारतीय राजनीति पर एक बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह उठता है कि स्वतंत्रता के बाद राजनीति में चेहरे बदल गए, लेकिन व्यवस्था में कुछ खास परिवर्तन नहीं हुआ। यही कारण था कि स्वतंत्रता के कुछ ही सालों बाद लोगों का आजादी से मोहभंग होने लगा। सरकार की निरंकुश तानाशाही रवैया, भ्रष्टाचार, महँगाई आदि से आम जनता का जीवन कठिन होता चला गया। भारतीय मुसलमानों को विशेष रूप से राजनितिक अवहेलना का शिकार होना पड़ा है। अल्पसंख्यक बनाम बहुसंख्यक की राजनीति ने मुसलमानों को काफी उपेक्षित किया है। राही लिखते हैं-"मुसलमान की परिभाषा क्या है ? मुसलमान वह है जो इस देश का नागरिक है। चुनावों में वोट देता है। दंगों में मारा जाता है और जो इस बड़े देश के किसी क्षेत्र का नहीं है, वह केवल मुसलमान है। इसके

[1]असगर वजाहत बरखा रचाई, पृष्ठ 49

सिवा उसकी और कोई पहचान नहीं है।"[1] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भारतीय राजनीति में मुसलमानों की जो स्थिति है, उसे हिन्दी उपन्यासकारों ने प्रमुखता से उठाने का प्रयास किया है।

2.1.4. साम्प्रदायिक स्थिति-

मानव सभ्यता को नियंत्रित, संचालित व विकसित करने में धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ धर्म का स्वरूप भी विकसित होता रहा है। इस यात्रा में कई नए धर्मों के साथ-साथ उनके भीतर विभिन्न सम्प्रदायों को भी देखा जा सकता है। धर्मों के भीतर सम्प्रदायों की उत्पति, उसकी मान्यताओं में विभेद के साथ ही जातिगत भिन्नता को प्रमुख कारण माना गया है। इन संप्रदायों के मध्य आपसी टकराव का इतिहास सैकड़ों वर्ष पुराना है। हिंदू धर्म में शैव और वैष्णव, इस्लाम में शिया और सुन्नी, ईसाई धर्म में प्रोटेस्टेंट एवं कैथोलिक आदि संप्रदायों के बीच होने वाले संघर्ष को लंबे समय से देखा जा सकता है। इस संघर्ष में प्रत्येक सम्प्रदाय स्वयं से दूसरे को निम्न, विकृत तथा धर्म की मूल मान्यताओं से परे बताता है। इस संघर्ष में हमेशा से ही बहुसंख्यक, अल्पसंख्यक पर हावी होने का प्रयास करता रहा है। असगर अली इंजीनियर सांप्रदायिकता को एक आधुनिक परिघटना मानते हैं, जिसकी उत्पत्ति में संप्रदायों के अभिजात वर्ग के बीच राजनीतिक सत्ता और आर्थिक प्रतिस्पर्धा की भूमिका को बताते है। उन्होंने भारत में सांप्रदायिकता की शुरुआत 18वीं शताब्दी से माना है। भारत में 1857 की क्रांति के बाद हिंदू-मुस्लिम संबंधों में कड़वाहट आने लगी थी। परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक शक्तियों का तेजी से प्रसार हुआ। हिन्दी उपन्यासों में राधाकृष्ण दास ने 1881 में सर्वप्रथम अपने उपन्यास 'निस्सहाय हिन्दू' में गोकशी की समस्या को केंद्र में रखते हुए सांप्रदायिकता का चित्रण किया है।

सांप्रदायिकता की चरम परिणति के रूप में भारत विभाजन जैसी त्रासदी को देखा जा सकता है। विभाजन एक दर्दनाक हादसा था, जिसमें लाखों लोगों की हत्या हुई। अनगिनत लोग बेघर हुए। न जाने कितनी महिलाएँ विधवा हुई और न जाने कितनी महिलाओं का अपहरण और बलात्कार हुआ। विभाजन के इस दंश और सांप्रदायिक

[1] राही मासूम रजा, असंतोष के दिन, पृष्ठ 52-53

वातावरण को यशपाल ने 'झूठा सच' उपन्यास में उठाया है। विभाजन के नाम पर आम जनता के साथ किस प्रकार छल किया गया। यशपाल ने अपने उपन्यास में दिखाया है कि किस प्रकार सांप्रदायिक माहौल में पुलिस, प्रशासन, कानून, न्यायपालिका सब निष्फल हो जाते हैं। विभाजन के बाद भी साम्प्रदायिकता की समस्या समाप्त नही हो पाई। तत्कालीन शासन व्यवस्था की असफलता पर यशपाल गाँधी जी के वक्तव्य के संदर्भ में लिखते हैं-"किसी भी सरकार के लिए यह बहुत शर्म की बात है कि नागरिकों को उनका न्यायोचित अधिकार न मिले, नागरिकों के जानमाल की रक्षा न की जा सके। मैं सरकार से जोरदार अपील करता हूँ कि न्याय की रक्षा में जो भी विरोध और अड़चने आए, उनका सामना किया जाए । गैर जिम्मेवार भीड़ के प्रदर्शन से डर जाना सरकार के लिए शर्म की बात है।"[1] यशपाल द्वारा दिल्ली के एक मुसलमान युवक के माध्यम से विभाजन के दौरान सरकारी तंत्र की असफलता को दिखाया गया है। विभाजन के समय वह युवक डरकर पाकिस्तान चला जाता है, लेकिन भारत सरकार द्वारा आश्वासन मिलने पर वापस अपने मकान पर जब पहुँचता है तो वहाँ पर किसी हिंदू का कब्जा पाता है। हिंदुओं का एक बड़ा समुदाय उसे उसका मकान वापस देने का विरोध करता है। स्थानीय पुलिस प्रशासन को भी जनता के विरोध से सहमत होना पड़ता है, भीड़ के आगे पुलिस लाचार दिखती है। सांप्रदायिक माहौल में जनता किस तरह आपस में एक दूसरे की दुश्मन बन जाती है, यशपाल ने इसको भी बखूबी चित्रित किया है। विभाजन के दौरान हुए सांप्रदायिक दंगों का महिलाओं पर क्या असर हुआ, इसे यशपाल ने 'बती' नामक पात्र के माध्यम से दिखाया है। विभाजन के दौरान बती अपने परिवार से बिछड़ जाती है। कुछ मुसलमान उसे अपने गाँव में उठा ले जाते हैं। नब्बू उसके साथ बलात्कार करता है। जब वह अपने पति को खोजते हुए वापस पहुँचती है तो उसका पति भी उसे अपनाने से इंकार कर देता है। इस दुर्घटना के बाद वह मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जाती है। बती के अतिरिक्त तारा, कनक, उर्मिला, शीलो आदि स्त्री पात्रों के माध्यम से स्त्री उत्पीड़न की घटना को दिखाया गया है। यशपाल ने शरणार्थी कैंप की अव्यवस्था और स्थानीय लोगों द्वारा उनकी मजबूरी का फायदा उठाना, उनके साथ लूटपाट आदि घटनाओं को भी यथार्थपरक ढंग से दिखाने का प्रयास किया है।

साम्प्रदायिक समस्या को राही मासूम रजा के उपन्यासों में भी देखा जा सकता है। उन्होंने 'आधा गाँव' उपन्यास में हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता और शिया-सुन्नी के

---

[1] यशपाल, झूठा सच, भाग दो, पृष्ठ 98

आपसी मतभेद व तनाव को ग्रामीण संदर्भ में प्रस्तुत किया है। राही इस उपन्यास में दिखाते हैं कि गाजीपुर के 'गंगौली' गाँव के लोग किस तरह धीरे-धीरे सांप्रदायिकता की गिरफ्त में आ जाते हैं। गाँव के लोगों ने पाकिस्तान का नाम भर सुना है। गाँव में कुछ हिंदू मुसलमानों पर यह दबाव बनाते हैं कि मुसलमान पाकिस्तान चले जाए। कुछ मुसलमान पात्र पाकिस्तान के समर्थन में हैं। उन्हें लगता है कि अलग मुस्लिम राष्ट्र बन जाने पर उनकी आर्थिक स्थिति कुछ बेहतर हो जाएगी। वे ज्यादा स्वतंत्रता से अपना जीवन व्यतीत कर पाएंगे। जबकि अधिकांश मुसलमान अपना घर-बार छोड़कर जाने को तैयार नहीं होते हैं। गाँव के कुछ लोग यह निश्चय नहीं कर पाते कि उन्हें क्या करना चाहिए। वे अपने बेटे-बेटियों को पाकिस्तान भेज देते हैं, लेकिन अपने यहीं रह जाते हैं। अपनों से बिछड़ने का दर्द विभाजन से उत्पन्न एक बड़ी त्रासदी बनकर भारतीय सामाज में उभरी। जो मुसलमान पाकिस्तान चले गए, उन्हें वहाँ बसने, कारोबार को खड़ा करने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा तथा जो मुसलमान पाकिस्तान नहीं गए, उन्हें सांप्रदायिकता का दंश झेलना पड़ा। जिसके परिणामस्वरूप अपने ही देश में विभाजन के बाद मुसलमानों को संदिग्ध नजरिए से देखा जाने लगा। गाँव-गाँव में सांप्रदायिक दंगे होने लगे। मुहर्रम के जुलूस पर हुए एक हमले का वर्णन करते हुए राही लिखते हैं-"हुसैन मियाँ के फाटक में पहले से लट्ठबद इकट्ठे थे। वे निकल आए। लट्ठबद अहीरों, चमारों और भरों के गोल ने 'जय बजरंगबली ! जय इमाम साहब।' बोल कर धावा कर दिया। लकड़ी के अखाड़े वालों ने 'या हुसैन !' का नारा मारकर उनकी लाठियों को अपनी लाठियों पर रोका और फिर बड़े ताजिए के आगे-आगे चलने वाले अहीर लट्ठबद, जो आगे बढ़ गए थे, लौट आये। घमासान की लड़ाई होने लगी।"[1] राही दिखाते हैं कि किस प्रकार विभाजन के बाद गंगौली में गाँव के लोग हिंदू-मुसलमान और शिया-सुन्नी में बँट गए और गाँव का पूरा माहौल तनावपूर्ण वातावरण में परिवर्तित हो गया।

'आधा गाँव' की ही तरह हिन्दी साहित्य में सांप्रदायिकता की पृष्ठभूमि पर एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'तमस' भीष्म साहनी द्वारा लिखा गया है। इस उपन्यास में भीष्म साहनी ने सांप्रदायिकता की जड़ को एक लंबे साजिश का परिणाम बताया है। साथ ही उन्होंने भारत में सांप्रदायिकता का उत्तरदायी अंग्रेजों को माना है। एक बात जो सामान्य है, जिसे राही और भीष्म साहनी दोनों ने माना है, वह यह कि सांप्रदायिकता पूँजीवाद या आर्थिक वर्चस्व के कारण उत्पन्न हुई है। असगर अली इंजीनियर ने भी साम्प्रदायिकता

[1] राही मासूम रजा आधा गाँव, पृष्ठ 76

को पूँजीवाद से ही जोड़कर देखा है। भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में कुल पाँच दिन की घटनाओं को आधार बनाया है। उपन्यास का वातावरण विभाजन से पूर्व का है। उपन्यास में घटित घटनाओं को अंग्रेज कमिश्नर 'रिचर्ड' द्वारा प्रायोजित बताया गया है। जो हिंदुओं और मुसलमानों को विभिन्न मुद्दों पर आपस में लड़ाने की कूटनीति रचना है। सांप्रदायिक तनाव फैलाने के लिए मस्जिद में सूअर का मांस फेंका जाता है। सांप्रदायिक तनाव की स्थिति को भीष्म साहनी इस प्रकार दिखाते हैं-"मुहल्लों के बीच लींकें खींच गई थी, हिंदुओं के मुहल्ले में मुसलमानों को जाने की अब हिम्मत नहीं थी और मुसलमानों के मुहल्ले में हिंदू-सिक्ख अब नहीं आ जा सकते थे। आँखों में संशय और भय उतर आए थे। गलियों के सिरों पर और सड़कों के नाकों पर जगह-जगह कुछ लोग हाथों में लाठियाँ और भाले लिए और मुश्के बांधे छिपे बैठे थे। जहाँ कहीं हिंदू और मुसलमान पड़ोसी एक दूसरे के पास खड़े थे, बार-बार एक ही वाक्य दोहरा रहे थे; 'बहुत बुरा हुआ है, बहुत बुरा हुआ है।'"[1] ठीक इसी प्रकार कमलेश्वर के यहाँ भी साम्प्रदायिकता और उससे जुड़ी समस्याओं को देखा जा सकता है। उनका उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' सांप्रदायिकता के विरुद्ध एक ऐतिहासिक दस्तावेज माना जाता है। इस उपन्यास में संसार भर में फैले नफरत, हिंसा और घृणा के माहौल पर व्यंग्यात्मक ढंग से कटाक्ष किया गया है। कमलेश्वर कहते हैं कि पाकिस्तान एक नफरत का नाम है। इस मुल्क की बुनियाद ही नफरत के आधार पर हुई है। उपन्यास में अर्दली बोलता है-"जब नफरत का जहर मेरी नसों में दौड़ता है तब मैं इंसान का चोला उतारकर हिंदू बन जाता हूँ।

--ये नफरत का जहर कहाँ से आया ?

उसी सन् सैंतालिस वाली फसल से यह जहर जन्मा है हुजूर ! जो हिंदू को ज्यादा बड़ा हिंदू और मुसलमान को ज्यादा बड़ा मुसलमान बनाता है।"[2]

कमलेश्वर बाबरी मस्जिद को मुद्दा बनाए जाने और उसके आधार पर भारतीय जनता में नफरत फैलाने की राजनीति की निंदा करते हैं। भारत-पाक संबंधों को अत्यधिक तूल देने और राजनीतिक दलों द्वारा सांप्रदायिक माहौल बनाने या उसको समाप्त करने के लिए सरकार द्वारा कोई कदम न उठाने की भी निंदा करते हैं। कमलेश्वर का दूसरा उपन्यास 'लौटे हुए मुसाफिर' भी सांप्रदायिक माहौल पर लिखा गया है। इस

---

[1] भीष्म साहनी, तमस,पृष्ठ 135

[2] कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृष्ठ 69

उपन्यास में गरीब और निम्नवर्गीय मुसलमानों पर सांप्रदायिकता के प्रभाव को दिखाया गया है। बस्ती के लोग पाकिस्तान की परिकल्पना से परिचित नहीं है। वे रोज मजदूरी करके पेट भरते हैं और आपस में सद्भाव से रहते हैं, लेकिन सांप्रदायिकता की लहर जब उनके गाँव में पहुँचती है, तब वे सहम जाते हैं। बस्ती में सांप्रदायिक दंगे और मारकाट तो नहीं होती लेकिन एक अजीब सी दूरी हिंदुओं और मुसलमानों के बीच बन जाती है। सांप्रदायिक तनाव इतना बढ़ जाता है कि लोग जल्दी-जल्दी अपना कारोबार बंद करने लगते हैं और एक दूसरे को बिना दुआ-सलाम किए निकल जाते हैं। हिंदू लोग मुसलमानों के टाँगे पर नहीं बैठते। अधिकतर मुसलमान, बस्ती को छोड़कर अन्य शहरों में चले जाते हैं लेकिन पाकिस्तान नहीं जाते। बाहर जाने वाले मुसलमान अपनी बस्ती को नहीं भूला पाते और कुछ वर्षों बाद बस्ती में वापस आकर अपने घरों में बसना चाहते हैं। जो लोग पाकिस्तान चले गए हैं, वे भी अपनी बस्ती के मोह को नहीं भुला पाते हैं। उपन्यास का पात्र 'इफ्तिकार' मेला देखने के बहाने पाकिस्तान से तीन साल बाद भारत आता है और अपनी बस्ती को देखने जाता है। सांप्रदायिकता ने लोगों की भावनाओं के साथ कितना भद्दा मजाक किया, इसको कमलेश्वर ने इस प्रकार उपन्यास में बहुत मार्मिकता से दिखाया है।

साम्प्रदायिकता के प्रभाव को बदीउज्जमाँ के उपन्यास 'छाको की वापसी' में भी देखा जा सकता। यह सांप्रदायिक समस्याओं पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में विभाजन के पूर्व से लेकर बंग्लादेश के निर्माण तक की सांप्रदायिक समस्याओं को दिखाया गया है। इस उपन्यास में दो तरह के मुस्लिम पात्र हैं, एक वली अहमद उर्फ गाँधी भाई है, जो कांग्रेस का समर्थन करते हैं। दूसरी ओर हबीब अहमद हैं जो मुस्लिम लीग के समर्थक हैं। उपन्यास में जमशेदपुर के दंगे का वर्णन है, जिसमें वली अहमद उर्फ गाँधी भाई मारे जाते हैं। मुस्लिम लीग द्वारा धर्म के नाम पर लोगों को संगठित करने के कारण बहुत सारे मुसलमानों को यह लगने लगता है कि पाकिस्तान की परिकल्पना किसी सुंदर और स्वतंत्र जीवन की परिकल्पना है। हबीब अहमद का यह सोचना कि पाकिस्तान जाकर वह स्वतंत्रता से अपना जीवन व्यतीत कर सकेगा और हिंदुओं के जुल्म से हमेशा के लिए आजाद हो जाएगा, एक बहुत बड़ा फरेब था। जब वह विभाजन के पश्चात पाकिस्तान चला गया और वहाँ पर फिर बंगाली मुसलमानों द्वारा भाषाई आधार पर अलग देश बनाने के लिए विद्रोह हुआ और दंगे हुए, तो उसे यह सब देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। पूर्वी पाकिस्तान में बंगाली मुसलमान, बिहारी मुसलमानों

को नफरत से देखते थे। हबीब इन सब घटनाओं और भेदभाव से दुखी होता है। इस उपन्यास में दंगों का यथार्थपरक चित्रण हुआ है। लेखक ने सांप्रदायिकता को मानव सभ्यता के लिए खतरनाक बताया है। सांप्रदायिकता का कोई अंत नहीं है। वह विभिन्न मुद्दों पर उत्पन्न हो सकता है। कभी भाषा के आधार पर, तो कभी धर्म के आधार पर, तो कभी नस्ल के आधार पर।

स्वतंत्रता के बाद कई सांप्रदायिक दंगे हुए, लेकिन 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस ने पूरे देश को सांप्रदायिक दंगों की आग में जलने के लिए विवश किया। इस घटना ने भारतीय समाज में हिंदू-मुस्लिम के बीच एक चौड़ी खाई पैदा की। बाबरी मस्जिद विध्वंस की घटना पर आधारित दूधनाथ सिंह का उपन्यास 'आखिरी कलाम' हिन्दी में एकमात्र उपन्यास है। इस उपन्यास में बाबरी विध्वंस से पूर्व और विध्वंस के दौरान तथा बाद के सांप्रदायिक वातावरण, नफरत, तनाव को फैजाबाद के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। कारसेवकों द्वारा फैजाबाद में किए गए तांडव को इस उपन्यास में विस्तारपूर्वक दिखाया गया है। दूधनाथ सिंह लिखते हैं-"लौटते हुए कारसेवकों के एक झुंड ने बूढ़े के सामने आकर कहा, 'जय श्री राम बोलने का।' बूढ़ा बकर-बकर मुँह ताकता रहा। जब दो-तीन बार आदेश देने पर भी वह कुछ नहीं बोला तो एक कारसेवक को खिलन्दरापन सूझा। उसने जेब से माचिस निकाली, फूंक-से किया और झोपड़ी में धरा दिया।"[1] 18 वीं शताब्दी में सांप्रदायिकता की जो शुरुआत हुई थी, वह आज भी किसी न किसी रूप में देखने को मिलता है। हिन्दी उपन्यासकार ने इस समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। विभाजन से संबंधित उपन्यासों में सांप्रदायिकता की चरम स्थिति को दिखाया गया है। ये सभी उपन्यास एक ऐतिहासिक दस्तावेज हैं, जो भारत की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं।

2.1.5 धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति-

धर्म मनुष्य को एक श्रेष्ठ सत्ता के प्रति विश्वास करने, उसे पवित्र मानने तथा उसमें एक संवेगात्मक जुड़ाव की माँग करता है। साथ ही वह मनुष्य के जीवन को नियंत्रित करने व सामाजिक जिम्मेदारियों की ओर संकेत भी करता है। यह एक तर्कहीन व्यवस्था है, जो श्रद्धा और भक्ति पर आधारित है। जबकि संस्कृति मानव सभ्यता का वह अंग है, जिसमें हमारा जीवन, रहन-सहन और हमारी विचारधारा निर्मित होती है। धर्म और

---

[1] दूधनाथ सिंह, आखिरी कलाम, पृष्ठ 419

संस्कृति दो भिन्न-भिन्न उपादान हैं। किन्तु दोनों में एक स्तर पर जुड़ाव भी देखा जाता है। धार्मिक कर्मकांड, मान्यताएँ, कब संस्कृति का हिस्सा बन जाती हैं, पता ही नहीं चलता। भारतीय मुसलमानों के धार्मिक एवं सांस्कृतिक संरचना या विशेषता पर बात करें, तो एक खास किस्म की विशेषता से युक्त समाज हमें दिखाई देता है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि इस्लाम धर्म का मूल उद्गम अरब देश में हुआ, इसलिए बहुत सारे रीति-रिवाज, मान्यताएँ, आचार-विचार, वेशभूषा, खान-पान आदि को भारतीय मुसलमानों ने धर्म के साथ-साथ ग्रहण कर लिया, लेकिन खास बात यह थी कि भारत में इस्लाम का प्रसार उन लोगों के बीच अधिक हुआ जो पहले से किसी धर्म विशेष से जुड़े हुए थे। ऐसे में धर्मांतरण के बाद एक खास किस्म की धार्मिक मान्यता और सांस्कृतिक स्वरुप का विकास हुआ। जिसका प्रभाव भारतीय मुसलमानों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जैसे उत्तर भारत की अधिकांश मुसलमान महिलाएँ बुरका भी पहनती हैं और सिंदूर भी लगाती हैं। विवाह, जन्म-मरण आदि अवसरों पर ऐसी अनगिनत मान्यताएँ जो मुसलमानों के बीच प्रचलित हैं, वे लोक संस्कृति या स्थानीयता से प्रभावित हैं। इन सब के बावजूद कुछ सैद्धांतिक, व्यावहारिक मान्यताएँ ऐसी भी हैं, जिन्हें मुसलमानों की धार्मिक व सांस्कृतिक विशेषता के रूप में देखा जा सकता है।

इस्लाम में एकेश्वरवाद की मान्यता है। धार्मिक आधार पर सामाजिक समानता पर बल दिया गया है। इन मान्यताओं को हिन्दी उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में दिखाया है। राही मासूम रजा ने अपने उपन्यास ‘आधा गाँव’ में इस्लाम के भीतर सामाजिक समानता को कुछ इस प्रकार दिखाने का प्रयास करते हैं-“मुसलमान-मुसलमान भाई-भाई होता है। इस्लाम ऊँच-नीच को नहीं मानता। क्या आँहजरत (रसूल) ने सलमान फारसी को अपने अहले बैत में नहीं गिनाया।”[1] इस्लाम की इन बुनियादी मान्यताओं के बावजूद ऊँच-नीच का फर्क भारतीय मुसलमानों के बीच कायम है। राही ने मुस्लिम समाज में प्रचलित ऊँच-नीच, जाति प्रथा, छुआ-छूत को अपने उपन्यासों में दिखाया है। ‘आधा गाँव’ उपन्यास में दिखाया गया है कि नईमा की दादी जुलाहिन है इसलिए वह सैदानियों के साथ नहीं रह सकती। इसी प्रकार अब्बास को फारुख के घर जाने की मनाही है क्योंकि वह सैय्यद है और फारुख राकी जाति (निम्नवर्ग) से सम्बंधित है। शिया मुसलमानों के यहाँ जलसे में जुलाहों को अलग पंक्ति में बैठाया जाता है। इस प्रकार के कई उदाहारण इनके उपन्यासों में देखे जा सकते हैं।

---

[1] राही मासूम रजा, आधा गाँव, पृष्ठ 63

राही के अलावा अब्दुल बिस्मिल्लाह, असगर वजाहत, गुलशेर खां शानी आदि रचनाकारों ने भी मुसलमानों के आंतरिक वर्ग-भेद और जातिगत संरचना को दिखाने का प्रयास किया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के लगभग सभी उपन्यासों में जुलाहा, दर्जी, चूड़िहार, धुनिया, रंगरेज, फकीर और न जाने कितने वर्गों के पात्रों का वर्णन मिलता है। भारतीय समाज एक धर्मभीरु समाज है। यहाँ लगभग सभी ईश्वर के प्रति आस्था रखते हैं। भीष्म साहनी ने 'तमस' उपन्यास में मुसलमानों की धार्मिक निष्ठा और विश्वास को दिखाया गया है। उपन्यास का पात्र करीम खान कहता है-"कुरान शरीफ में फरमाया है कि इंसान की खेतीयाँ मेरे हुक्म से खड़ी हैं। इंसान के सब इरादे मेरे हुक्म पर खड़े हैं। मेरा हुक्म नहीं होगा तो लहलहाती खेतीयाँ झुलस जाएंगी, मेरे हुक्म पर बाढ़ आएगी, शहरों में शहर तबाह हो जाएंगे, और बूढ़े ने कहा, "सब कुछ मालिक के हाथ में है, इंसान के हाथ में कुछ भी नहीं। सब काम परवरदिगार के हुक्म से होते हैं उसका जो हुक्म होगा वही होगा।"[1] कुरान शरीफ मुसलमानों का पवित्र धार्मिक ग्रंथ माना जाता है। इस्लाम में ईश्वर के अतिरिक्त किसी और के समक्ष सिर झुकाना पाप माना जाता है। आम तौर पर सभी मुसलमान कुरान में लिखी बातों पर अमल करते हैं। फिर भी कुछ मान्यताएँ ऐसी भी हैं, जो लोक से प्रभावित है।

मुसलमानों में एक बड़ा विभाजन शिया-सुन्नी संप्रदाय के रूप में देखा जा सकता है। इसके अलावा भी मुसलमानों में कई और वर्ग भेद मौजूद है। लेकिन शिया और सुन्नी का मतभेद काफी पुराना और संघर्षपूर्ण रहा है। शिया लोगों की धार्मिक मान्यताओं को राही मासूम रजा 'आधा गाँव' उपन्यास में दिखाते हुए लिखते हैं-"अब वह शिया मुसलमानों को यह बताने के लिए नाहक घंटों क्यों बोलते कि अल्लाह एक है, मुहम्मद आखिरी पैगंबर और अली पहले खलीफा।"[2] शिया मुसलमान अली को पहला खलीफा यानी मुहम्मद साहब का उत्तराधिकारी मानते हैं। शिया मुसलमान नमाज पढ़ते वक्त सिजदे के लिए मिट्टी के एक टुकड़े का इस्तेमाल करते हैं, जिसका जिक्र राही ने अपने उपन्यास में किया है। इसके अलावा शिया मुसलमान मुहर्रम के महीने में काले कपड़े पहनते हैं। राही ने शिया और सुन्नी के धार्मिक मतभेद को गंगौली गाँव में हुए एक धार्मिक कार्यक्रम में 'कशीदा' पढ़ते समय बढ़ते हुए तनाव के रूप में दिखाया है-"पहले कैश जंगपूरी ने एक कसीदा पढ़ा। उनके कसीदे में बड़ा सख्त तबर्रा था। खालू मियाँ की

---

[1] भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ 108

[2] राही मासूम रजा, आधा गाँव , पृष्ठ 46

धुली हुई उर्दू सुनने के लिए बहुत से सुन्नी मुसलमान भी आए हुए थे। अब्बा वगैरह बहुत परेशान हुए। तमाम पढ़े-लिखे सुन्नी जानू बदलने लगे। खैर खुदा-खुदा करते कसीदा खत्म हुआ।''[1] यहाँ भी शिया मुसलमानों के खलीफा संबंधी मान्यता को दिखाया गया है। राही ने तबर्रा को फुटनोट में स्पष्ट करते हुए लिखा है कि शिया लोग पहले तीन खलीफाओं को नहीं मानते। बहुत से सख्त शिया उन्हें गाली देना जरूरी मानते हैं, आमतौर पर इसी को 'तबर्रा' कहते हैं। कसीदे में कैश जंगपुरी ने तबर्रा में तीनों खलीफाओं को भला-बुरा कहा, सुन्नी मुसलमान अपने खलीफा के बारे में इस तरह के बयान सुनकर नाराज होते हैं। इस तरह के धार्मिक मान्यताओं सम्बन्धी मतभेद अक्सर धार्मिक कार्यक्रमों में देखे जाते हैं।

हिन्दी साहित्य में विशेष रूप से मुस्लिम रचनाकारों द्वारा मुसलमानों के तीज-त्योहारों का सुंदर चित्रण किया है। शानी ने 'काला जल' उपन्यास में 'शबे बारात' का जिक्र किया है। बब्बन की फफू और माँ शबे-बारात को पूरी श्रद्धा के साथ मनाती हैं। इस अवसर पर सभी अपने घरों में और बुजुर्गों के कब्र पर जाकर 'फातिहा' पढ़ते हैं और रात भर खुदा की इबादत करते है। मुसलमानों में 'रमजान' का महीना पवित्र माना जाता है। रमजान महीने के सत्ताईसवीं तारीख की रात 'शब-ए-कद्र' के नाम से जाना जाता है। शानी लिखते हैं-''यही है शबेकद्र- वह रात जो इबादत और दुआ की रात कहलाती है। यही है अजीब गुनाहों से तौबा करने का बेशकीमती मौका, जब जन्नत के दरवाजे खुले होते हैं और जब सिर्फ एक रात की इबादत चार सौ बरस के सिजदे के बराबर होती है। लिहाजा जहाँ दो जून ठीक से रोटी का प्रबंध न हो सके वहाँ फातिहा की इतनी सारी तैयारी छोटी फूफी ने कहाँ से कर ली, यह सोचना भी गुनाह में पड़ना था।''[2] इसके अलावा शानी ने 'मुहर्रम' के पर्व का भी चित्रण अपने उपन्यासों में किया है।

मुस्लिम समाज में धार्मिक अन्धविश्वासों को भी कई रचनाओं में देखा जा सकता है। कुछ मुसलमानों की मान्यता है कि जुलूस में चलने वाले ताजिए के भीतर से अगर कोई महिला उस पार हो जाएगी तो उस दौरान उसके द्वारा माँगी हुई मन्नत जरूर पूरी होती है। आम दिनों में भी महिलाएँ मन्नत माँगती है कि उसका फला काम पूरा होने पर वह मुहर्रम में चढ़ावा चढ़ाएँगी। इसीलिए मुहर्रम के अवसर पर कागज और बांस के छोटे-छोटे ताजिए बनाकर चौक पर चढ़ाए जाते हैं। मुहर्रम के जुलूस में लोग मातम

[1] वही, पृष्ठ 47

[2] गुलशेर खां शानी, कला जल, पृष्ठ 18-19

करते हैं। शिया मुसलमान अंगार पर चलते हुए खुद को लोहे की जंजीर से पिटते हैं। बीच-बीच में नौहे पढ़े जाते हैं और हुसैन के नाम के नारे लगाये जाते हैं। मातम का वर्णन राही ने 'आधा गाँव' उपन्यास में इस प्रकार किया है-''तमाम लोग मातम करने लगे और फिर जोर जोर से रोने लगे। भाई साहब थक कर दोनों हाथों से मातम करने लगे। मैं थक कर बैठ गया। फिर एक-एक करके तमाम लड़के थक गए। रोने वालों की आवाज और ऊँची हो गई। मौलवी कुरबान अली के हाथ और तेज हो गए। ''हुसैन! हुसैन!''... ''हुसैन! हुसैन!"... "मौला! हुसैन!"... "आका! हुसैन!" ..."हुसैन! हुसैन!"[1] राही की तरह अब्दुल बिस्मिल्लाह ने भी मुहर्रम का बड़ा ही यथार्थपरक चित्रण किया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने मुहर्रम पर ताजिए के जुलूस निकालने सम्बन्धी मान्यता पर सभी मुसलमानों की सहमति न होने का जिक्र किया है। ताजिये की परंपरा भारतीय समाज में ही प्रचलित है। उसमें भी बहुत से मुसलमान इसे गुनाह मानते हैं। विशेष रूप से देवबंदी मुसलमानों का गुट इसका विरोध करता है। मुहर्रम में जगह-जगह अलग-अलग ढंग से जुलूस निकालने व मातम मनाने की परंपरा है। अब्दुल बिस्मिल्लाह इसी तरह की एक मान्यता का जिक्र करते हुए लिखते हैं-''अब्बा यद्यपि ताजियादारी और सवारी आदि के कट्टर विरोधी थे लेकिन रफीक भैया पर वे ही सवारी चढ़ाया करते थे। पहली तारीख की शाम को रफीक भैया साफ वस्त्र पहनते और सिर पर रुमाल बाँधकर सामने लोबान जलाकर खड़े हो जाते। हफीज भैया और टोले के अन्य लोगों के साथ मैं उन्हें घेरकर खड़ा हो जाता तब अब्बा नौहा पढ़ते और जैसे ही वे या अली कहते हम लोग याली याली चीखने लगते।''[2] हिन्दी उपन्यासों में मुसलमानों के लगभग सभी त्योहारों का वर्णन किया गया है। अधिकतर मुस्लिम रचनाकारों ने त्योहारों को पूरी मार्मिकता के साथ यथार्थपरक ढंग से दिखाया है।

भारत में सूफियों के आगमन व प्रचार के कारण पीर-फकीर की मान्यता समाज में फैली हुई है। मुसलमानों का कुछ वर्ग दरगाह, पीर-फकीर व फातिहा आदि का समर्थन करता है, जबकि कुछ वर्ग इसको धार्मिक पाखंड बताते हुए इसका विरोध करता है। सूफी पीर-फकीरों के प्रति मुसलमानों की आस्था को भीष्म साहनी ने 'तमस' उपन्यास में दिखाया है। उपन्यास में 'गोलड़ा शरीफ' के पीर गाँव में आते हैं तो लोग कतारबद्ध सिर झुकाकर खड़े हो जाते हैं और पीर बाबा का हाथ चुमने लगते हैं। पीर बाबा के संबंध में

[1] वही, पृष्ठ 53

[2] अब्दुल बिस्मिल्लाह, जहरवाद, पृष्ठ 93

गाँव वालों का मत है कि वे बहुत पहुँचे हुए फकीर है और किसी भी समस्या का समाधान उनके पास मौजूद है। इसे हम अंधविश्वास भी कह सकते हैं क्योंकि ऐसी कोई भी ताकत मनुष्य के पास नहीं है जिससे वह चमत्कार करके किसी भी समस्या का समाधान कर सके। गाँव के मुसलमानों के बीच गोलड़ा शरीफ के पीर को लेकर जो अंधविश्वास फैला हुआ है उसे उपन्यास में इस प्रकार दिखाया गया है-"इनके हाथ में बड़ी शफा है। मेरा पोता है, अब तो रोठा हो गया, जब वह छोटा सा बच्चा था तो उसे कमपेड़े हो गए। दोनों गाल सूज गए। किसी ने कहा कि गोलड़ा शरीफ के पास ले जाओ पीर साहिब ने इशारा किया 'बच्चे को मेरे सामने लेटा दो', मैंने लिटा दिया। फिर उन्होंने पास रखा बड़ा सा छुरा उठाया और उसे एक-एक बार बच्चे के दोनों गालों को छुआ दिया।........बुखार जा चुका था।"[1] ठीक इसी प्रकार धार्मिक अन्धविश्वासों का चित्रण राही के उपन्यासों में भी देखने को मिलता है। उनके 'आधा गाँव' उपन्यास में फुस्सू मियाँ को लगता है कि अगर पत्नी को ताबीज पहना देंगे, तो उसे बेटा हो जाएगा। बेटे-बेटी में फर्क पूरे भारतीय समाज में देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'छाको की वापसी' उपन्यास में 'ख्वाजा खिजर' के फातिहा का वर्णन किया गया है। मुसलमान फाल्गु नदी में ख्वाजा खिजर के बेड़े को बहाया करते हैं। उनकी मान्यता है कि खिजर साहब पानी में डूबने वालों को बचा लेंगे। 'काला जल' उपन्यास में बब्बन की माँ आर्थिक तंगी से बचने के लिए तांत्रिक के पास जाती है और चढ़ावा चढ़ाती है। तांत्रिक उसे अगरबत्ती का राख कागज में लपेट कर देता है और उसे बब्बन को खिलाने के लिए कहता है। बब्बन का पिता किसी दूसरी स्त्री की तरफ आकर्षित रहता है, तांत्रिक उसे राख खिलाकर वश में करने की बात कहता है। ऐसे अनेक अंधविश्वासों को हिन्दी साहित्यकारों द्वारा प्रस्तुत किता गया है।

मुसलमानों के खान-पान संबंधी विशेषताओं को भी हिन्दी उपन्यासों में दिखाया गया है। हिंदू और मुसलमानों के भोजन संबंधी अंतर को 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में सटीक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में टोपी पहली बार किसी मुसलमान के घर खाना खाता है। राही लिखते हैं-"दाल का मजा भी कुछ नया था। लहसुन से बघारी हुई अरहर की दाल उसने पहली बार खायी क्योंकि उसके घर में लहसुन प्याज का तो गुजर ही नहीं था। उसके यहाँ तो पतली दाल में कच्चा घी डाला जाता था। उस मजे का

---

[1] भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ 110

भी जवाब नहीं था, परन्तु सकीना की बघारी हुई दाल का मजा भी अपनी जगह था।"[1] टोपी शुक्ला उपन्यास में राही ने मुसलमानों के यहाँ अलग तरह के प्रयोग होने वाले बर्तनों का भी जिक्र किया है, जैसे मुसलमानों के यहाँ डोंगे का प्रयोग होता है और हिंदुओं के घर थाली का प्रचलन है। मुसलमानों की वेशभूषा, आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, धार्मिक परंपराएँ, मान्यताएँ, अंधविश्वास, रूढ़ियाँ आदि कई ऐसे पहलुओं पर हिन्दी उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी चलायी है। मुस्लिम समाज पर लिखे गए इन उपन्यासों में तरह-तरह की धार्मिक मान्यताओं और सांस्कृतिक विभिन्नताओं को देखा जा सकता है।

2.1.6. स्त्रियों की स्थिति-

हिन्दी साहित्य में 70 के दशक में स्त्री विमर्श की शुरुआत हो चुकी थी। यह विमर्श पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर लगाए गए तरह-तरह के बंधनों के विरोध में खड़ा हुआ। स्त्री का भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है। उसकी देह का मालिक पुरुष नहीं बन सकता। स्त्री समाज में पुरुष की सहचरी बनकर रहना चाहती है, दासी बनकर नहीं। इस प्रकार और भी कई रूढ़िवादी परंपराओं व पुरुषवादी सत्ता के विरोध में स्त्री विमर्श खड़ा हुआ। इस विमर्श ने धीरे-धीरे भारतीय समाज में भी अपना प्रभाव दिखाया। हिन्दी उपन्यासकारों ने स्त्रियों की समस्याओं को विभिन्न दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। उपन्यासों में स्त्री एक ओर पुरुषवादी सत्ता द्वारा प्रताड़ित हो रही है, तो दूसरी ओर अपनी स्वतंत्रता व अस्तित्व की तलाश करती हुई, पुरुषवादी सत्ता को नकार भी रही है। किंतु यह प्रतिरोध एक सीमित वर्ग तक ही सिमट कर रह गया है। अभी भी स्त्रियों का एक बड़ा वर्ग अपने अधिकार और स्वतंत्रता के प्रति जागरूक नहीं है और शोषण का शिकार बन रहा है। अगर हम मुस्लिम स्त्रियों की बात करें, तो उनमें भी चेतना का प्रसार उतना नहीं हो पाया है, जैसा कि होना चाहिए था। मुस्लिम स्त्रियों को अल्पसंख्यक समाज में भी 'अल्पसंख्यक' माना गया है। कारण यह है कि मुस्लिम महिलाओं को इतना अधिक सामाजिक बंधनों में जकड़कर रखा गया है कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में अभी तक उनकी कोई विशेष भूमिका दिखाई नहीं देती है। मुस्लिम समाज स्त्रियों की शिक्षा को लेकर जागरूक नहीं है, अगर स्त्रियाँ पढ़-लिख भी ले तो नौकरी के क्षेत्र में जाने के लिए तमाम तरह की बंदिशें लगाई जाती है। अधिकांश

---

[1] राही मासूम रजा, टोपी शुक्ला, पृष्ठ 70

मुस्लिम पुरुष पर्दे में रहने वाली तथा घरेलू कामकाज करने वाली स्त्रियों को पसंद करते हैं। मुस्लिम समाज में स्त्रियों की दुर्दशा को हिन्दी उपन्यासों में भी दिखाया गया है। शानी ने अपने उपन्यास 'काला जल' में मुस्लिम समाज की स्त्रियों की स्थिति को दिखाने का प्रयास किया है। उनके उपन्यासों में स्त्री पात्र घरेलू कामकाज में लगी, आर्थिक तंगी को झेलती, बच्चे पैदा करती और उन्हें पालती हुई नजर आती है। इस सन्दर्भ में राजेन्द्र यादव लिखते हैं-"शानी ने 1960 में काला जल लिखना शुरू किया था। एक-डेढ़ वर्ष में लिख जाने के बाद भी उसका प्रकाशन सन् 1965 में हुआ। हिन्दी में वह स्त्री विमर्श का दौर नहीं था। स्त्री यहाँ सिर्फ सहती, घुटती और रोती है बिना किसी सक्रिय प्रतिरोध के।"[1] 'काला जल' उपन्यास में स्त्रियों को उसी रूप में दिखाया गया है, जैसा कि भारतीय समाज में स्त्रियाँ अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं। मुस्लिम स्त्रियाँ इतनी शिक्षित और जागरूक नहीं है कि वह पति, परिवार, रिश्तेदार और समाज द्वारा लगाये गये प्रतिबंध का प्रतिकार कर सके। उन्हें पता ही नहीं कि तरह-तरह के कायदे-कानून जो उन पर धर्म और संस्कृति के नाम पर थोपे जाते हैं वे शोषण का एक तंत्र है, जो उनकी स्वतंत्रता को बाधित करते हैं। 'काला जल' उपन्यास में शानी इसी बात को कहने का प्रयास करते हैं कि किस प्रकार घर की बुजुर्ग महिलाएँ संस्कार के नाम पर नवयुवतियों के हँसने, बोलने, उठने-बैठने आदि पर प्रतिबंध लगाती हैं। शानी ने अंतर्जातीय विवाह तथा बहुविवाह की समस्या को भी अपने उपन्यासों में दिखाया है।

हिन्दी उपन्यासकारों में अब्दुल्ल बिस्मिल्लाह द्वारा भी स्त्रियों की स्थिति को अपने उपन्यासों में प्रमुखता से दिखाया गया है। उनके उपन्यासों में निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज की स्त्रियों की दुर्दशा का यथार्थपूर्ण अंकन मिलता है। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में निम्नवर्गीय स्त्रियाँ अशिक्षा, कुपोषण, बीमारी, पुरुषवादी सत्ता द्वारा शोषित, धार्मिक कुरीतियों व अन्धविश्वासो में जकड़ी हुई हैं। अलीमुन को टी० बी० की बीमारी है। उसका पति साड़ी बुनने का काम करता है। अलीमुन की स्थिति को अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस प्रकार दिखाया है-"अलीमुन को टी० बी० हो गई है। मतीन को मालूम है, लेकिन वह कुछ नहीं कर सकता। घर का जो काम है, वह बीवी को ही करना होगा। फेराई-भराई, नरी-ढोटा, हांडी-चुली सभी कुछ करना होगा। बिना किए काम नहीं चलेगा। और रहना भी होगा पर्दे में। खुली हवा में घूमने का सवाल नहीं।

[1] गुलशेर खां शानी, काला जल, पृष्ठ 44

समाज के नियम सत्य हैं, उन्हें तोड़ना गुनाह है। मतीन जानता है।"[1] मतीन घर के कामों में पत्नी की सहायता नहीं कर सकता क्योंकि वह पुरुष है। समाज का बंधन है कि पत्नी को बाहर जाकर खुली हवा में नहीं घूमना है। मतीन की कमाई इतनी नहीं है कि वह अपनी पत्नी का ठीक से इलाज कर सके। इलाज तो दूर ठीक से दो वक्त की रोटी का भी जुगाड़ करने में वह सक्षम नहीं है। वह एक कमसिन युवती 'नजबूनिया' के प्रति आकर्षित है और उससे दूसरा विवाह करना चाहता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यासों में विवाह और तलाक की समस्या पर भी प्रकाश डाला है। मुस्लिम समाज में विवाह एक समझौता है। शरीया कानून के तहत पुरुषों को चार विवाह करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। मुस्लिम समाज में तलाक के नियम भी शिथिल है। पूरी तरह रूढ़िवादिता में जकड़ा हुआ मुस्लिम समाज इन कानूनों में बदलाव की भी माँग नहीं करता। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यासों में कई संदर्भो के माध्यम से इन कुरीतियों को दिखाया है। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में लतीफ अपनी पत्नी को बेवजह मारता-पीटता है और एक दिन गुस्से में तीन तलाक दे देता है। उसकी पत्नी अपने मायके चली जाती है। बच्चों के लिए जब उसका मन व्याकुल होता है तब वह अलीमुन से कहती है कि अगर उसका पति उसे रखने को तैयार हो जाए, तो वह वापस आ जाएगी। अलीमुन उसे बताती है कि तलाकशुदा औरत अपने पति के साथ बिना हलाला किये नहीं रह सकती है। हलाला के बारे में अलीमुन उसे बताती है कि-"पहले किसी से उसका निकाह हो। वह कम-से-कम एक रात उस आदमी के साथ बीवी की तरह रहे और फिर वह आदमी उसे तलाक दे दे, तभी वह दुबारा निकाह पढ़कर लतीफ के साथ बीवी बनकर रह सकती है- वरना नहीं। तलाक का कानून ऐसा-वैसा थोड़े है। कमरुन का दिल बैठ गया। इतनी जलालत के लिए खुद को तैयार करना उसके लिए मुमकिन नहीं था।"[2] हलाला मुसलमानों में प्रचलित एक धार्मिक कुप्रथा है, जिसमें मुस्लिम महिलाओं का शारीरिक व मानसिक शोषण होता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने निम्न वर्गीय समाज में तीन तलाक और हलाला जैसी कुप्रथा के प्रचलन को दिखाया है। नजबुनिया का पति भी उसे विवाह के कुछ दिनों बाद ही तलाक दे देता है और मतीन उसे अपनी दूसरी पत्नी के रूप में निकाह पढ़ाकर घर लाता है। स्त्रियों की दुर्दशा का जैसा चित्रण अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यासों में किया है वह निम्नवर्गीय मुस्लिम

---

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह, झीनी झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ 9-10

[2] वही, पृष्ठ 71-72

समाज का एक कटु यथार्थ है। अरबी उर्दू की सामान्य शिक्षा दिलाकर कम उम्र में ही लडकियों का विवाह कर दिया जाता है, वे बच्चे पैदा करती हैं, तलाक होता है, जीवनभर आर्थिक तंगी से जूझती हैं, बीमारी हो जाती है और फिर उनका असामयिक निधन हो जाता है यही निम्नवर्गीय मुस्लिम स्त्रियों का जीवन है। तीन तलाक और हलाला की समस्या को केंद्र में रखकर भगवानदास मोरवाल ने 'हलाला' नामक उपन्यास लिखा है। इस उपन्यास में निम्नवर्गीय समाज में स्त्रियों की स्थिति और विवाह एवं तलाक की समस्या को प्रमुखता से उठाया गया है।

मुस्लिम महिलाओं की समस्याओं को नासिरा शर्मा के उपन्यास में भी देखा जा सकता है। मुस्लिम महिलाओं से जुड़े कई मुद्दों और समस्याओं को उठाया है। भारतीय मुस्लिम स्त्रियों पर उनके द्वारा लिखा गया उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह उपन्यास शिया समाज में प्रचलित एक रूढ़िवादी परंपरा पर आधारित है। उपन्यास की नायिका 'महरुख' का जन्म एक जैदी परिवार में होता है। चार पीढ़ियों के बाद उनके परिवार में बेटी पैदा हुई है इसलिए उसकी मौसी खालिदा कीचड़ से भरे एक ठीकरे पर चांदी का रुपया फेंककर उसकी मंगनी अपने बेटे से कर देती है, ताकि नवजात बच्ची के सिर से मृत्यु का साया टल जाए। बड़े होने पर उसका मंगेतर उससे विवाह न करके किसी दूसरी लड़की से विवाह कर लेता है। 'महरुख' बचपन में तय की गई इस मंगनी को तोड़ना पाप समझती है। अतः उस रूढ़िवादी परंपरा का निर्वाह करते हुए अंत में वो अविवाहित रहने का निर्णय लेती है। इस उपन्यास में मुस्लिम स्त्रियों की शिक्षा संबंधी समस्या को भी उठाया गया है। नासिरा द्वारा मुस्लिम स्त्रियों के जीवन पर लिखा गया 'अजनबी जजीरा' नामक उपन्यास भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में विधवा व असहाय स्त्रियों के रोजगार संबंधी समस्या को उठाया गया है। उपन्यास में समीरा और रुया दो स्त्री पात्र हैं। समीरा विधवा हो गई है। उसकी कई जवान बेटियाँ है। पिता की मृत्यु के बाद आर्थिक तंगी के कारण उनकी पढ़ाई छूट जाती है। घर की चारदीवारी में कैद अपनी बेटियों के विवाह को लेकर समीरा हमेशा चिंतित है। अपनी दोस्त 'रुया' द्वारा बेटियों के बारे में पूछे जाने पर वह झूठ बोल देती है कि वह सब अपने मामू के पास रहती हैं और वहीं पढ़ रही हैं। जबकि रुया अपनी बदहाली पर पर्दा नहीं डालती। वह अपने जीवन की नंगी तस्वीर इस प्रकार बयाँ करती है-"मैं अपना बदन नुचवाती हूँ.... आपने हम-शहरिया से और क्या करूँ, ईमान को लेकर चाटू या इस्मत को लेकर नाचूँ? देखो, अब मेरे पास इतने रियाल है कि मैं हफ्ता आराम से गुजार

सकूँ....अल बाकर मुझे गाली देता है, बदकार और बेवफा कहता है, वह शहवतरानी का इल्जाम देता है। फिर मेरे पैरों पर गिर कर फूट-फूट कर रोता है जब इन पैसों से उसके पेट की आग बुझाती हूँ... जिंदगी का इतना बदसूरत चेहरा देखने के हम हकदार नहीं थे, जो हमने बोया नहीं वह हम क्यों काट रहे हैं।"[1] रुया के पति 'अल बाकर' को पैरालाइसिस हो गया है। घर का खर्च व पति की दवाइयों का खर्च उठाने के लिए वह वेश्यावृत्ति करती है। नासिरा ने अपने अन्य उपन्यासों में भी स्त्रियों की समस्या, स्वतंत्रता, समानता, शिक्षा, रोजगार व स्वावलंबन के प्रश्न को उठाया है। उनके यहाँ आधुनिक स्त्रियों का चित्रण भी हुआ है। नासिरा के यहाँ स्त्रियों के जिस रूप का चित्रण मिलता है वह किसी समाज, देश या धर्म विशेष से संबंधित नहीं है बल्कि वे वैश्विक स्तर पर स्त्रियों की समस्याओं को उठाती हैं। स्त्री विमर्श पर केन्द्रित रचनाकारों में नासिरा शर्मा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

स्त्रियों की समस्या पर केन्द्रित रचनाकारों में मेहरुन्निसा परवेज का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने 'कोरजा' और 'अकेला पलाश' नामक अपने उपन्यासो में स्त्रियों की समस्याओं को प्रमुखता से उठाया है। कोरजा उपन्यास में कम्मो एक आधुनिक युवती है और नौकरी करती है। वह धार्मिक जड़ता, अंधविश्वास, रीति-रिवाज व संस्कारों का विरोध करती है। वह स्त्रियों के स्वावलंबन पर जोर देती है तथा पुरुषवादी सत्ता को नकारती है। यह उपन्यास स्त्री विमर्श पर केन्द्रित है। जिसमें एक आधुनिक पढ़ी-लिखी लड़की द्वारा स्त्री स्वतंत्रता के प्रश्न को उठाया गया है। ठीक इसी प्रकार उनके 'अकेला पलाश' उपन्यास में भी स्त्री के आधुनिक होने तथा अपनी स्वतंत्रता के लिए आवाज उठाते हुए दिखाया गया है। उपन्यास में तहमीना का विवाह उसके उम्र से बहुत बड़े युवक से कर दिया जाता है। जो उसको यौन संतुष्टि नहीं दे पाता और मारता पीटता है। वह पति के इस दुर्व्यवहार से दुखी है और पति के उपेक्षापूर्ण व्यवहार का प्रतिकार करती है। वह तुषार नामक युवक से यौन संबंध बनाती है। उपन्यास के अन्य स्त्री पात्र भी पारंपरिक बंधनों को तोड़ने के लिए मुखर दिखाई देती हैं। उनके उपन्यासों में परंपरा और आधुनिकता के बीच द्वंद्व को देखा जा सकता है। ऐसा बेवजह नहीं है कि इनके स्त्री पात्र शिक्षित होते हुए तथा स्वयं निर्णय लेने में समर्थ होते हुए भी, सामाजिक बंधनों से मुक्त नहीं हो पाती हैं। तुषार तहमीना के साथ शारीरिक संबंध तो बनाता है लेकिन विवाह करने के लिए तैयार नहीं होता। ठीक इसी तरह उपन्यास में नाहिद अंतर्जातीय

[1] नासिरा शर्मा, अजनबी जजीरा, पृष्ठ 27

विवाह तो कर लेती है लेकिन ससुराल वालों के द्वारा उसके साथ किए जा रहे धार्मिक भेद-भाव का विरोध नहीं कर पाती है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हिन्दी उपन्यासों में मुस्लिम समाज में स्त्रियों की स्थिति को विविध संदर्भो में दिखाया गया है। इन उपन्यासों में निम्नवर्गीय स्त्रियों के साथ-साथ मध्यमवर्गीय और कामकाजी स्त्रियों की समस्याओं को भी स्थान दिया गया है।

2.2. हिन्दी कहानियों में चित्रित मुस्लिम समाज-

हिन्दी साहित्य में 'कहानी' नामक विधा का जन्म 'सरस्वती' पत्रिका के उद्भव के साथ हुआ। कथानक रूप में संक्षिप्त होने के कारण इस विधा को खासी लोकप्रियता मिली। चंद्रधर शर्मा गुलेरी से लेकर प्रेमचंद, प्रसाद, नागार्जुन, यशपाल, अज्ञेय, जैनेन्द्र जैसे प्रसिद्ध रचनाकारों द्वारा अनेक कहानियाँ लिखी गई। कई उपन्यासकार, उपन्यास के साथ-साथ कहानी लेखन में भी अपनी अलग पहचान बनाए हैं। सामाजिक परिप्रेक्ष्य को लेकर जितनी गंभीरता उपन्यासों में दिखाई गई, उन परिप्रेक्ष्यों पर कहानी कहीं से भी कमतर नहीं दिखती। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इस विधा का और अधिक महत्त्व बढ़ा है। समाज और मनुष्य के भीतर जिस तरह की जटिलता आई, उसे प्रदर्शित करने का सार्थक माध्यम कहानी को बनाया गया। सन् 1960 के आसपास हिन्दी आलोचना में 'नई कहानी' और 'नई कविता' की चर्चा आरंभ हो चुकी थी, जबकि उपन्यास के सन्दर्भ में ऐसा कोई बदलाव नहीं दिखता। ये दोनों ही विधाएँ अपने सामाजिक जटिलताओं, समाज के मनोविज्ञान तथा अन्य स्थितियों को प्रस्तुत करने का माध्यम बन सकी हैं। 1960 तक आते-आते हिन्दी कहानी के स्वरूप में व्यापक बदलाव हुए। यह बदलाव सामाजिक परिवेश से लेकर भाषा, बिंब आदि अनेक स्तरों पर देखा जा सकता है। पहले जहाँ कहानी में समाज के आदर्श रूप या फिर किसी महत्त्वपूर्ण घटना या फिर ग्रामीण-आंचलिक परिवेश को ही प्रमुखता दी जाती थी। लेकिन 'नई कहानी' तक आते-आते समाज, परिवेश, व्यक्ति तथा उसकी भाषा सब बदलने लगी। इसलिए कहानी में भी समाज के साथ-साथ व्यक्ति-मन के भीतरी उथल-पुथल को स्थान दिया गया। जिसके फलस्वरूप कहानियों में कुंठा, हताशा, दर्द, अकेलापन आदि मनोवैज्ञानिक स्थितियों का अंकन आरम्भ हुआ। नामवर सिंह इस संबंध में लिखते हैं-''बड़ी ईमानदारी के साथ मोहन

राकेश ने स्वीकार किया है कि हमारी पीढ़ी ने यथार्थ के अपेक्षाकृत ठहरे हुए अर्थात् वैयक्तिक और पारिवारिक रूप को अपनी रचनाओं में अधिक स्थान दिया है, जो समूची पीढ़ी के लिए तो सच नहीं है लेकिन कई कहानियों पर ठीक बैठता है।"[1] मोहन राकेश जिस वैयक्तिक और पारिवारिक स्थिति को कुछ कहानीकारों के संदर्भ में ठीक संदर्भित कर रहे हैं, वास्तव में वह समय और परिवेश का प्रभाव ही है। जहाँ अनेक प्रकार की अलग-अलग समस्याओं को रचनाकर्ता द्वारा अपनी सुविधानुसार, अपनी रचनाओं में स्थान दिया जाता रहा है। इस दौर तक आते-आते भारतीय समाज में ऐसी अनेक घटनाएँ घटी, जिसका व्यापक असर साहित्य पर पड़ा। इन समस्याओं में स्वतंत्रता के साथ-साथ, भारत विभाजन, सांप्रदायिक दंगे, जाति और धर्म के नाम पर विभेद तथा भूमंडलीकरण और उदारीकरण जैसी नीतियों ने व्यक्ति को व्यापक रूप से प्रभावित किया। इस दौर के लेखन में धर्म, सांप्रदायिकता, राजनीति जैसे अनेक कारणों को देखा जा सकता है। कमलेश्वर लिखते हैं-"विभाजन मोहभंग, यांत्रिकता, विसंगतियाँ, परिवारों का विघटन, राजनीतिक भ्रष्टाचार और व्यापक असंतोष के बीच जो मनुष्य साँस ले रहा था, जिसका समकालीन साहित्य जवाबदेही से कतरा रहा था.....या जिसके आंतरिक और वाह्य संकट की अभिव्यक्ति नही दे पा रहा था वह मनुष्य इतिहास के क्रम में अपने पूरे परिवेश को लिए दिए गये अवरुद्ध राह पर संभ्रमित और चकित खड़ा था।"[2] कमलेश्वर जिस समस्या का जिक्र कर रहे हैं, यह समस्या वास्तविक रूप में भारतीय समाज की गंभीर समस्या रही है। बहुत बाद तक हिन्दी के अनेक रचनाकार इस पर लिखने से कतराते रहे। लेकिन ऐसा दौर भी आया जब उपन्यास से लेकर कविता और कहानियों के माध्यम से इस पर खूब लिखा गया। जिसमें प्रमुखतः मलबे का मालिक, गुलकी बन्नो, शुतुरमुर्ग, जहाँ लक्ष्मी कैद है, अमरकांत की जिंदगी और जोंक, बदबू, वापसी जैसी कहानियों के माध्यम से तत्कालीन समस्याओं पर विचार किया गया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज का विभाजन और उसमें हुए सांप्रदायिक दंगों का भी तरह-तरह से उल्लेख विभिन्न रचनाकारों द्वारा किया गया। यह समस्या इतनी गंभीर रही कि आज भी जब-तब इसका फायदा राजनीतिक दलों द्वारा उठाया जाता है। इन समस्याओं पर मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम रचनाकारों द्वारा सार्थक बहस को प्रस्तुत किया गया है। चूँकि भारतीय समाज में मुसलमान अल्पसंख्यक है, इसलिए भी

---

[1] नामवर सिंह, कहानी नई कहानी, पृष्ठ 28

[2] कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका, पृष्ठ 17

समाज के अवसरवादियों द्वारा समय-समय पर द्वेषपूर्ण वातावरण को निर्मित किया जाता है। जिसके कारण दंगे, विस्थापन और असुरक्षा की भावना बनी रहती है। साथ ही समाज में आपसी संबंध भी खराब होते हैं और यह चंद लोगों द्वारा अपने व्यक्तिगत फायदे के लिए ही किया जाता है। इन सब के बावजूद समाज सापेक्ष लेखकों और पाठकों के बीच शोषित वर्ग के प्रति न तो सहानुभूति कम होती है और न ही लेखन का कार्य स्थगित किया जाता है। समाज में एकात्मकता को बनाए रखने के लिए अनेक रचनाकारों द्वारा अपनी रचनाओं में ऐसे प्रसंगों को उठाया जाता रहा है, जिसमें हिंदू-मुस्लिम प्रेम-संबंध, विवाह और एक दूसरे के प्रति सहयोगपूर्ण व्यवहार को देखा जा सकता है। हिंदू-मुस्लिम परिवेश को हिन्दी साहित्य की अनेक कहानियों में व्यक्त किया गया है। जिसमें आपसी प्रेम के साथ ही द्वेष-भाव, नफरत, विभेद आदि अनेक स्थितियों को देखा सकता है। समाज में व्याप्त इस तरह के माहौल को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आदि अनेक बिन्दुओं के आधार पर इस अध्याय में विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है-

2.2.1. सामाजिक स्थिति-

हिन्दी कहानियों में अन्य वर्गों के साथ-साथ मुस्लिम समाज के विविध रूपों का चित्रण किया गया है। जिसमें उसके आंतरिक गतिरोध तथा समस्याओं को विशेष रूप से स्वतंत्रता पश्चात् की कहानियों में अधिक विस्तृत रूप से देखा जा सकता है। मुस्लिम समाज पर केन्द्रित स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों में शानी, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, नासिरा शर्मा, मेहरून्निसा परवेज आदि को देखा जा सकता है। इन कहानीकारों द्वारा स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज तथा अपने अस्तित्व एवं अधिकार के लिए संघर्ष कर रहे मुस्लिम समाज को प्रस्तुत किया गया है। जिसमें मुस्लिम समाज के अंतर्विरोधों, उनकी विसंगतियाँ और समस्याओं को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है। 1947 में भारत विभाजन से उत्पन्न साम्प्रदायिक माहौल ने भारतीय मुसलमानों के प्रति अन्य वर्गों के भीतर जो भाव पैदा किया, उसका असर समाज में आज भी बरकरार है। इस विभेद ने भारतीय मुसलमानों की पहचान को अपने ही देश में संदेहास्पद बना दिया। आए दिन मुसलमानों पर देशद्रोह व पाकिस्तान समर्थक होने का आरोप लगाया जाता है। शानी द्वारा 'युद्ध' नामक कहानी में इस स्थिति को व्यक्त किया है। इस कहानी में भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान मुसलमानों के प्रति नफरत और संदेह की स्थिति को दिखाया गया है। कहानी में 'वसीम रिजवी' एक सरकारी दफ्तर में काम करता है। युद्ध

के दौरान दफ्तर में ऊपर के अधिकारियों का आदेश आता है कि रिजवी से सभी चार्ज ले लिये जाए, क्योंकि यह पूरे देश की सुरक्षा का मामला है। भारत-पाक युद्ध के दौरान मुसलमानों की स्थिति को दिखाते हुए शानी लिखते हैं-“युद्ध छिड़ते ही मुसलमानों में जो आतंक और भय समा गया था, उसका आभास दफ्तरों में पा लेना सबसे ज्यादा आसान था। दो एक दिन हर क्षण यह लगता था कि अब कोई दंगा छिड़ा, अब कोई फसाद हुआ। दरअसल, मुसलमान झाड़ियों में दूबके खरगोश की तरह अजीब सकते की आलम में डरा हुआ और चौकस हो गया था।”[1] देखा जाए तो भारत-पाक के बीच युद्ध हो या अन्य किसी तरह का प्रतियोगी मुकाबला, ऐसी सभी स्थितियों में भारत में रह रहे मुसलमानों में भय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जगह-जगह दंगे-फसाद होने लगते हैं या होने की स्थिति पैदा हो जाती है। सरकारी दफ्तरों तथा अन्य प्रतिष्ठानों में मुसलमानों के साथ भेदभाव किया जाने लगता है। आम दिनों में भी सरकारी नौकरियों में नियुक्ति से लेकर अन्य कामकाज तथा आपसी व्यवहार में मुसलमानों के साथ भेदभाव का बर्ताव किया जाता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने भी इस समस्या को अपनी कहानी ‘अधर्मयुद्ध’ में दिखाया है। इस कहानी का कथावाचक मुसलमान है। वह हिन्दी विषय से एम०ए० पास किया है। नौकरी के लिए जब वह इंटरव्यू के लिए जाता है तो वहाँ उससे पहला सवाल यही पूछा जाता है कि तुम मुसलमान होकर हिन्दी क्यों पढ़े ? हमारे देश में हिन्दी को हिंदुओं की भाषा और उर्दू को मुसलमानों की भाषा होने का दुष्प्रचार बहुत पहले से ही किया जाता रहा है, साथ ही इनको धर्म से भी जोड़ा गया है। कथावाचक जब नौकरी के लिए जाता है तब उसके साथ कुछ अजीब तरह की स्थिति उत्पन्न होती है-“यहाँ आते ही मैंने सर्वत्र यह प्रकट कर दिया कि मैं मुसलमान हूँ। अतः सब होशियार हो गए। भंडारे में खाना परोसने वाला मेरे पत्तल पर दूर से ही रोटियाँ फेंक देता है और सब्जी का लोंदा कुछ इस अंदाज में गिराता है जैसे गाय गोबर कर रही हो। कॉलेज में पानी पीने के लिए मेरे वास्ते एक काँच का गिलास मँगाकर अलग रख दिया गया है। (अन्य लेक्चरर्स पीतल के इलाकों में पानी पीते हैं) इस प्रकार मुझे एडजस्ट करने की पूरी व्यवस्था कर ली गई है।”[2] हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव इतने गहरे तक समाज में व्याप्त है कि भारतीय मुसलमान अपने ही समाज में खुद को उपेक्षित महसूस करने लगता है।

---

[1] गुलशेर खां शानी, चर्चित कहानियाँ, पृष्ठ 9

[2] अब्दुल बिस्मिल्लाह, ताकि सनद रहे, पृष्ठ 49-50

मुसलमानों के साथ बाहरी भेद-भाव के साथ-साथ मुस्लिम समाज की आंतरिक वर्गवादी व्यवस्था व जातिवाद की गहरी पकड़ को भी अब्दुल्ल बिस्मिल्लाह ने अपनी कहानियों में दिखाया है। भारतीय मुसलमानों के बीच जातिवाद उत्पन्न होने तथा जाति के प्रति लोगों की आस्था और प्रतिबद्धता को उन्होंने 'विदूषक' कहानी में दिखाया है। मुस्लिम समाज में वर्ग-संघर्ष तथा सामंतवादी सोच किस तरह व्याप्त है और वह निम्नवर्गीय मुसलमानों का किस प्रकार शोषण करती है ? इस समस्या को अब्दुल बिस्मिल्लाह ने 'लफंगा' नामक कहानी में दिखाया है। इस कहानी में 'हाफिज जी' जो सवर्ण मुसलमान हैं, वह 'नूरे' धुनिया की जमीन जबरदस्ती हड़प लेते हैं। गाँव के सवर्ण निम्नवर्गीय गरीब मुसलमानों का शोषण करते हैं। उनकी जमीनों पर कब्जा करने के लिए उन्हें धर्म के नाम पर डरा-धमकाकर, उनकी जमीनों पर मजार व मस्जिद आदि बनवाने के बहाने अपने नाम करा लेते हैं। गाँव के निम्नवर्गीय मुसलमान इस तरह के शोषण से भी त्रस्त हैं। बाद में सारे गरीब मुसलमान आपसी मतभेद और वर्गसंघर्ष को भुलाकर एकजुट होते हैं। वे सवर्ण मुसलमानों का विरोध करते हैं और अपनी जमीने वापस लेते हैं ।

नासिरा शर्मा ने भी मुस्लिम समाज के अंतर्विरोध को अपनी कहानियों में दिखाया है। उनकी कहानियों का फलक काफी विस्तृत है। भारत में स्वतंत्रता के बाद मुसलमानों को काफी उपेक्षित किया गया। उन पर तरह-तरह के आरोप लगाए गए। नासिरा इस बात को भी रेखांकित करती हैं कि किस प्रकार दंगों के दौरान पुलिस वाले मुस्लिम बस्तियों का मजाक उड़ाते हैं और ठीक से सुरक्षा व्यवस्था भी उपलब्ध नहीं कराते। सरकार और प्रशासन के पक्षपातपूर्ण रवैये को 'सरहद के इस पार' नामक इनकी कहानी में देखा जा सकता है। कहानी में हिंदू-मुस्लिम फसाद के दौरान पुलिस और सरकार के अलोकतांत्रिक रवैए से त्रस्त होकर 'रेहान' कहता है-"मारो सारे हिंदुओं को, गले दबा दो इनके। साले कहते हैं कि तुम पाकिस्तानी हो। जाकर पूछो इनसे, तुम्हारे बाप दादा कहाँ हैं ? मेरे बाप दादा इसी धरती के आगोश में गड़े हैं। सबूत चाहिए तो जाकर देखो हमारे कब्रिस्तान, सब के सब मौजूद हैं वहाँ- खुद गद्दार हैं और हम पर इल्जाम लगाते हैं। नौकरी न देने का अच्छा बहाना ढूंढा है। आखिर कहें भी क्या ?"[1] नासिरा द्वारा मुस्लिम समाज को विभिन्न दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया गया है। उन्होंने 'कच्ची दीवारे' नामक अपनी कहानी में एक वृद्ध दंपत्ति के संघर्ष को प्रस्तुत किया

[1] नासिरा शर्मा, पत्थर गली, पृष्ठ 29

है। इसी प्रकार ‘पुराना कानून’ नामक कहानी में निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज की समस्याओं का चित्रण मिलता है। ‘ताबूत’ कहानी में मुस्लिम समाज की रूढ़िवादिता और आर्थिक तंगी को दिखाया गया है।

नासिरा शर्मा द्वारा समाज के वंचित तबकों के साथ-साथ स्त्रियों की समस्याओं को भी अपनी कहानियों में प्रमुखता से उठाया है। ‘दूसरा कबूतर’ कहानी में पुरुषों द्वारा स्त्रियों के साथ किए जाने वाले दुर्व्यवहार और बहु विवाह की समस्या को दिखाया गया है, तो वहीं ‘बावली’ नामक कहानी में संतान पैदा न कर सकने के कारण स्त्रियों के पारिवारिक और सामाजिक उपेक्षा की स्थिति को व्यक्त किया गया है। ‘विरासत’ कहानी पारंपरिक व्यवसायों के नष्ट हो जाने के बाद निम्नवर्गीय मुसलमानों के समक्ष रोजगार की समस्या को दर्शाती है। यह कहानी मुसलमानों की फ़कीर जाति से संबंधित है। फकीर जाति के लोग मुसलमानों के यहाँ कब्र खोदने का काम करते हैं। इस काम से उनका जीविकोपार्जन बहुत कठिनता से चल पाता है जिसके कारण यह समाज गाँव से शहरों की तरफ पलायन करनें को मजबूर है। शहरों में भी यह वर्ग अपनी जातिगत पहचान को छिपाकर रहता है, क्योंकि समाज में उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। भारतीय समाज की यह विडंबना रही है कि यहाँ सभी धर्मों में ऊँच-नीच का भेदभाव बना हुआ है।

भूमंडलीकरण के बाद दुनिया जिस तरह से परिवर्तित हुई, उससे समाज का पूरा ढाँचा ही बदल गया। अर्थ केन्द्रित दुनिया ने पारम्परिक व्यवसाय को हाशिये पर धकेल दिया। यह बदलाव संपूर्ण विश्व के साथ-साथ भारत में भी हुआ। भारत में पारम्परिक व्यवसायों के विनाश होनें से मुसलमानों की स्थिति दिनों-दिन खराब होती जा रही है। अब्दुल बिस्मिल्लाह द्वारा इस स्थिति को ‘खण्ड खण्ड आदमी’ नामक अपनी कहानी में व्यक्त किया गया है। इस कहानी में एक चूड़ीहार दंपति की करुण कथा को व्यक्त किया गया है। यह दंपत्ति संतानविहीन है। ‘अकबर’ और उसकी पत्नी ‘बकरीदन’ फेरी लगाकर चूड़ियाँ बेंचती हैं। अकबर को अपने पिता के लकड़ी के व्यापारियों का कर्ज अदा करने के लिए अपना पुश्तैनी मकान बेचना पड़ता है। मुहल्ले के हाजी साहब उसे रहने के लिए जमीन देते हैं लेकिन कुछ दिनों बाद ही वह जमीन उससे वापस ले ली जाती है। अकबर के पिता चूड़ी बेचने का काम छोड़कर, लकड़ी का कारोबार करने लगे थे ताकि उनका सामाजिक और आर्थिक स्थिति कुछ सुधर सके। लेकिन समाज में जाति व्यवस्था की जड़े इतने गहरे तक व्याप्त हैं कि उससे निकलना संभव नहीं है। अब्दुल बिस्मिल्लाह लिखते हैं-“उसने देखा कि बाप के कारनामों का समाज पर कोई असर नहीं पड़ा है। चूड़ी का

काम छोड़ने के बाद भी वे चूड़िहारा ही कहे जाते थे। अतः उसकी समझ में आ गया कि भारतीय समाज का यह कोढ़ इतनी सरलता से ठीक नहीं हो सकता। कहने को इस्लाम में कोई विषमता नहीं है, पर मुसलमानों में भी ऊँच-नीच जैसी दुर्भावना की जड़े गहरे तक फैली हुई हैं।''[1] इस कहानी में दिखाया गया है कि आर्थिक संकट के कारण चूड़ी के कामकाज में भी प्रतिस्पर्धा बढ़ने लगी है। उसकी पत्नी उसे बताती है कि अब मनिहारे, धुनिये, फकीर और हिंदू लोग भी इस पेशे को करने लगे हैं। अतः अब इसमें भी गुजारा करना आसान नहीं है। इसी प्रकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ने 'शत्रु' कहानी में भी दिखाया है कि मुस्लिम समाज में ऊँच-नीच व जात-पात की जड़े किस गहराई तक व्याप्त है। उच्च वर्ग के लोग दूसरे वर्ग के साथ उठना-बैठना, बात करना भी उचित नहीं समझते। इस कहानी में कल्लू की बीवी को आसपास की औरतों से मिलने की मनाही थी क्योंकि वह सैयदानी थी और आसपास एक भी सैयद नहीं थे। कहानी में 'बड़े मियाँ' कहते हैं कि ऊँची कौम की औरतों को आम औरतों के पास नहीं बैठना चाहिए क्योंकि उनमें बेअदबी भरी होती है और सैय्यद के समान और कोई कौम ऊँची नहीं होती है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भारतीय मुस्लिम समाज में अनेक विसंगतियाँ व्याप्त है और इन विसंगतियों को हिन्दी कहानियों में बड़ी बारीकी से दिखाया गया है।

2.2.2. आर्थिक स्थिति-

भारतीय मुसलमानों की आर्थिक स्थिति को भी हिन्दी कहानियों में प्रारंभ से ही दिखाया जाता रहा है। प्रेमचंद ने 'ईदगाह' कहानी में 'हामिद' की दादी को आर्थिक तंगी से जूझते हुए दिखाया है। ईद के दिन जहाँ सारे बच्चे नए कपड़े, नए जूते व पैसे लेकर ईद का मेला देखने जाते हैं, वहीं हामिद सिर पर पुरानी टोपी लगाए, बिना जूते पहने, मात्र तीन पैसे लेकर ईद का मेला देखने जाता है। उसकी दादी 'अमीना' अपनी कोठरी में बैठकर रो रही होती हैं। गरीबी, छोटे बालक हामिद को इतना समझदार बना देती है कि वह उन तीन पैसों का चिमटा खरीदकर लाता है। मुस्लिम समाज की आर्थिक विषमता को हिन्दी के अन्य कहानीकारों के यहाँ भी देखा जा सकता है। मुस्लिम समाज पर केंद्रित यशपाल की 'परदा' कहानी में भी इस समाज की आर्थिक तंगी को दिखाया गया है। इसी प्रकार अब्दुल बिस्मिल्लाह द्वारा भी मुस्लिम समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता को केंद्र

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह, ताकि सनद रहे, पृष्ठ 164

में रखकर कई कहानियाँ लिखी गयी हैं। 'शीरमाल का टुकड़ा' नामक उनकी कहानी में 'नाईन' जाति की महिला अपनी दो बेटियाँ 'महरून' और 'नसीबन' को लेकर काम करने, मुन्नू मियाँ के घर विवाह के अवसर पर जाती है। काम करते-करते दोपहर का समय हो जाता है और उन तीनों को खाने के लिए कुछ भी नहीं मिलता। दोनों बेटियाँ भूख से व्याकुल है। लोग खाना खाकर उठने लगते हैं, तभी महरून देखती है कि दस्तरख्वान पर ढेर सारा खाना पड़ा है, जिसे थोड़ी देर में उठाकर फेंक दिया जाएगा। बचे हुए खाने में से एक शीरमाल का टुकड़ा वह अपने दुपट्टे में छिपा लेती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह इस कहानी में यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि किस प्रकार हमारे समाज का बहुत बड़ा तबका दाने-दाने को मोहताज है वहीं कुछ वर्गों द्वारा खाने की बर्बादी की जाती है। इसी प्रकार मेहरुन्निसा परवेज की कहानियों में भी मुस्लिम समाज की आर्थिक स्थिति को देखा जा सकता है। 'नया घर' कहानी में उन्होंने निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज की आर्थिक समस्याओं को बड़ी मार्मिकता से दिखाया है। महँगाई और बेकारी इस कदर हावी है कि लोग भरपेट भोजन के लिए भी मारे-मारे फिर रहे हैं। इस कहानी में 'सियालगुड़ीन' नामक पात्र सूखा रोग से ग्रस्त अपनी बेटी के बचाव के लिए मुर्गी की अंतड़िया पकाकर खिलाती है। डॉक्टर घी, दूध खिलाने के लिए कहता है, लेकिन वह अपनी असमर्थता जाहिर करती है।

वर्तमान समय में भी रोजगार की समस्या मुसलमानों के बीच गंभीर समस्या बनी हुई है। अशिक्षा, गरीबी, जानकारी का अभाव के साथ ही पारंपरिक पेशों को अपनाए रहने के कारण मुस्लिम समाज में बेकारी को और विकराल रूप दिया है। इन स्थितियों को भी हिन्दी कहानीकारों द्वारा अपनी रचनाओं में प्रमुखता से उठाया गया है। नासिरा शर्मा की 'तारों की शतरंज' कहानी में रोजगार की समस्या को गम्भीरता से उठाया गया है। इस कहानी में 'शरफू' मांझा सुतने का काम करता है। पर इससे अच्छी आमदनी न होने के कारण उसके परिवार का भरण-पोषण ठीक से नहीं हो पाता। इसलिए उसके बच्चे इस पुश्तैनी काम को नहीं करना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में नासिरा लिखती हैं-"दोनों बेटे फारुख और शेखू कई बार साफ-साफ कह चुके थे कि माँझा सूतने में उनका दिल नहीं लगता। इतना रद्दी काम करके वह पैसा नहीं कमा सकते हैं। शीशा चढ़ाने में घायल हथेलियाँ और जब जख्म से चर्राती उंगलियाँ उन्हें सुख नहीं देती है। सारे दिन की कड़ी मेहनत के बाद खाने को मिलती है रोटी और लहसुन की चटनी या

फिर दूसरे तीसरे दिन कोई सब्जी या दाल।"[1] 'शरफु' के दोनों बेटे पुश्तैनी काम को छोड़कर पतंग की दुकान खोलना चाहते हैं लेकिन पूँजी के अभाव में दुकान खोलना उनका सपना ही रह जाता है। इसी तरह नासिरा ने 'मिट्टी का सफर' कहानी में एक ऐसे पिता-पुत्र की कथा को व्यक्त करती है, जिसका जीवन घोर आर्थिक दरिद्रता से ग्रस्त है। इस स्थिति में वे एक अभिशप्त जीवन जीने को विवश हैं। पिता जी-तोड़ मेहनत कर कुछ पैसे जुटाता है ताकि उसका पुत्र पढ़ सके, लेकिन पुत्र की अकाल मृत्यु पिता के सारे सपने तोड़ देती है। पारंपरिक व्यवसायियों की समस्या पर केंद्रित 'विरासत' कहानी में हिम्मतशाह बुल्लन से कहता है-"भाई यह गाँव छोड़ और चल मेरे साथ शहर.... अब इस काम में कुछ नहीं रखा है।"

"मतलब ? यही हमारा काम है एका कैसे छोड़ दे ? छोड़ के जायेंगे कहाँ दूसरे काम के पीछे ?" "और नहीं तो क्या। वहाँ नकद रुपया है, वर्दी है, हाथ में बंदूक है.... यहाँ क्या है, कभी झोली भर अनाज, एक दो लौकी कोहड़ा, पुराना कपड़ा, सदका खैरात का खाना और कभी चंद रुपल्ली।"[2]

पुश्तैनी रोजगार की घटती माँग मुस्लिम समाज की इस स्थिति का एक कारण तो है ही, लेकिन कम मजदूरी का मिलना भी इस आर्थिक विषमता का एक प्रमुख कारण है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने 'कागज के कारतूस' कहानी में रोजगार व न्यूनतम मजदूरी को बड़ी समस्या के रूप में दिखाने का प्रयास करते हैं। इस कहानी में 'वसीउल्ला' नेतागिरी करता है और उसकी बेटियाँ मजदूरी करके घर का खर्च चलाती है। वसीउल्ला की विवाहित बेटी अपने पिता को पत्र लिखती है कि उसके पति को अच्छी नौकरी नहीं मिल पाई है। जिस स्कूल में वह पढ़ा रहा है, वहाँ मात्र डेढ़ सौ रुपया ही तनख्वाह मिलती है, जिससे उसके परिवार का खर्च नहीं चल पाता। विवाह से पूर्व उसका पति बेरोजगार रहता है और वह वसीउल्ला द्वारा नौकरी दिलाने की शर्त पर उसकी बेटी से विवाह करता है। लेकिन वसीउल्ला उसको नौकरी नहीं दिला पाता। इस कारण वह पत्नी को तलाक देने की धमकी देता रहता है। इस कहानी में न्यूनतम मजदूरी न मिलने की समस्या को इस प्रकार दिखाया है-"किसी ने बताया है शहर में कागज के कारतूस बनते हैं। बच्चों की पिस्तौल वाले। एक हजार कारतूस बनाने पर एक मिलता है। खूब मेहनत

---

[1] नासिरा शर्मा, सबीना के चालीस चोर, पृष्ठ 30

[2] नासिरा शर्मा, सबीना के चालीस चोर, पृष्ठ 24

की जाए तो दिन भर में चार-पाँच हजार कारतूस बनाए जा सकते हैं।"[1] बढ़ती महँगाई और बेरोजगारी के कारण ग्रामीण मुसलमानों को आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ रहा है। गाँव में रोजगार की समस्या गंभीर रूप से विद्यमान है। गाँवों में अधिकांश लोग खेती पर आश्रित होते हैं। भूमिहीन किसान दूसरों के वहाँ मजदूरी करके अपना जीवनयापन करते हैं। कुछ जातियाँ जैसे- नाई, धोबी, सुनार, लोहार, चूड़िहार आदि अपने पारंपरिक व्यवस्था से जुड़े हुए हैं। गाँव में कुछ ऐसी भी जातियाँ होती हैं, जो 'प्रजा' कहलाती हैं। इनका काम उच्च वर्ग के लोगों की सेवा करना होता है। उसके बदले में उन्हें जो थोड़ा बहुत अनाज व पैसा मिल जाता है और उसी से वे अपना जीवनयापन करते हैं। मुसलमानों में नाई, फकीर आदि ऐसी ही जातियाँ हैं। 'अली अनवर' ने अपनी पुस्तक 'मसावात की जंग' में 'कब्रखोदवा' जाति का जिक्र किया है। यह जाति मुहल्ले के मुसलमानों के लिए कब्र खोदती है और खैरात-जकात के रूप में इन्हें कुछ पैसा मिल जाता है जिससे वे अपना जीवन बसर करते हैं। ये मुसलमान 'अरजाल' की श्रेणी में आते हैं। कब्र खोदने वाली जाति की समस्या को केंद्र में रखकर नासिरा शर्मा ने 'विरासत' नामक कहानी लिखी है। इस कहानी में गाँवों में रोजगार के संकट के कारण पलायन की समस्या को दिखाया गया है। गाँव में रह रहे लोग आर्थिक संकट से जूझ रहे हैं। नासिरा ने उनकी समस्या को इस प्रकार दिखाया हैं-"अब न कब्र की खुदाई मिलती है न मुर्दे के घर से खाना आता है। बस वही मोहर्रम या ताजिया सजाए, उठाए, दफनाए में जो चढ़ावा हिस्सा मिल जाए। ईद मा एक जोड़ी नया कपड़ा.... उससे रोज का भूखा पेट कहाँ भरत है ....किस मुँह से बताएँ यह सब मालिक को कि खर्चे में बहुत तंगी है। जो खेत क्यारी कभी मिला रहा ओहि से उपजे अनाज से एक समय पेट भर जात है।"[2] इस प्रकार नासिरा शर्मा ने मुसलमानों की खराब आर्थिक स्थिति और उसके कारण उनके जीवन पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को अपनी कहानियों में दिखाया है। 'चिमगादड़े' कहानी में आर्थिक तंगी झेल रहे मुसलमानों की शिक्षा संबंधी समस्या को रेखांकित किया गया है। भारत में मुसलमानों का एक बड़ा हिस्सा अशिक्षित है। गरीब मुसलमान अधिकतर अपने बच्चों को अरबी-उर्दू की सामान्य शिक्षा को मदरसों और मकतबों के माध्यम से दिलाने में ही समर्थ हो पाते हैं। अरबी और उर्दू माध्यम से प्राप्त शिक्षा रोजगार देने में ज्यादा सक्षम नहीं होती है इस कारण यह शिक्षा उद्देश्यहीन मानी जाती है। इस कहानी

---

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह, रैन बसेरा, पृष्ठ 65

[2] नासिरा शर्मा सबीना के चालीस चोर, पृष्ठ 18

में मुस्लिम लड़कियों की शिक्षा हेतु एक स्कूल खोला गया है। स्कूल की प्रिंसिपल के प्रयास से मुहल्ले की कुछ लड़कियाँ पढ़ने के लिए आने लगती हैं। स्कुल की प्रिंसपल मुसलमानों के शैक्षणिक समस्या को उनकी आर्थिक तंगी से जोड़कर देखती हैं। वह कहती हैं-"जिनको दो समय का खाना नहीं मिलता है, जिनके घरों में सारे दिन की मेहनत मजदूरी के बाद रूखी सूखी रोटी पर जिंदगी गुजरती हो, वहाँ पढ़ाई का क्या काम ? पढ़ाई उन्हें क्या देगी ? मैं एक बात साफ कर दूँ; इन घरानों में आई लड़कियाँ पाँचवे के बाद नहीं पढ़ेंगी। क्या यही कम है कि इस मामूली संस्था के जरिए उन घरों में तालीम की बुनियाद डाल रहे हैं जिनके घरों में पेट के अलावा कोई अन्य चीज वजूद नहीं रखती है।"[1] इसी प्रकार 'कच्ची दीवारें' नामक कहानी में नासिरा ने आर्थिक तंगी झेल रहे एक मुस्लिम परिवार की स्थिति को दिखाया है। साथ ही इस कहानी में शहरी क्षेत्रों के अधीन आने वाले मकानों पर लगने वाले टैक्स तथा महँगाई की समस्या को भी दिखाया गया है।

हिन्दी में मुस्लिम समाज पर कहानियाँ लिखने वाले लगभग सभी रचनाकारों ने मुसलमानों के रोजगार की समस्या को दिखाया है। पारंपरिक व्यवसायों के विघटन से मुस्लिम समाज में बढ़ती बेकारी, गरीबी, भुखमरी, कुपोषण, अशिक्षा जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। गरीबी की समस्या मुसलमानों में विकट रूप में देखी जा सकती है। आर्थिक विपन्नता के कारण मुस्लिम समाज में स्वास्थ्य और शिक्षा संबंधी समस्या अधिक पाई जाती है। हिन्दी कहानीकारों ने इन सभी समस्याओं को अपने कहानियों के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है।

2.2.3. राजनीतिक स्थिति –

भारतीय राजनीति जन-सरोकार से दिनों-दिन अलग होती जा रही है। वर्तमान राजनीति में पूँजीवाद का दखल साफ-साफ देखा जा सकता है। लोकतंत्र के नाम पर एक खास किस्म के फांसीवाद का विकास होता जा रहा है। राजनीतिक सत्ता ऊपर से जनतांत्रिक भले ही दिखती हो, लेकिन भीतर से वह बेहद क्रूर और जनविरोधी हो चुकी है। भारतीय राजनीति में नेताओं का उद्देश्य चुनाव जीतना मात्र रह गया है। उन्हें जनता की समस्याओं से कोई सरोकार नहीं है। हिन्दी कहानियों में भारतीय राजनीति के चरित्र

---

[1] वही, पृष्ठ 131

को कई रचनाकारों ने दिखाया है। असगर वजाहत ने अपनी कहानी 'नया गणित' में नेताओं के चरित्र को इस प्रकार दिखाया है-"मंत्री जी पूरे चार साल सात महीने सोते रहे थे, फिर उनकी नींद हाईकमान की डांट से खुली तो आँखें मलते-मलते चुनाव क्षेत्र में पहुँच गए थे। अकेले नहीं आते थे क्योंकि वे जानते थे अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता, उनकी अमरीकी पत्नी साथ थी, दोनों बच्चे साथ थे, भोलू रसोईया सहित तीन नौकर थे, दो कुत्ते थे और मंत्री जी के अपने कार्यालय के लोग तो थे ही थे। इतनी तैयारियों से आने का मतलब ही था वे सिर्फ चुनाव जीतने आए थे।"[1] भारत में आम तौर पर चुनाव पाँच वर्ष के लिए होता है। इन पाँच वर्षों में नेताओं को जनता से कोई मतलब नहीं होता है। वे सिर्फ चुनाव के दिनों में वोट माँगने के लिए जनता के बीच जाते हैं।

भारतीय राजनीति में चुनाव जीतने के लिए धर्म को एक प्रमुख हथकंडे के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है। नेता अपने साम्प्रदायिक और बेतुके बयान से जनता में फूट पैदा करते हैं। आमतौर पर हिंदू-मुसलमान को आपस में लड़ाकर सामान्य जनता को एकजुट करने का प्रयास किया जाता है। धार्मिक ध्रुवीकरण के लिए जगह-जगह सांप्रदायिक दंगे भी कराए जाते हैं। धर्म के नाम पर वोट माँगे जाते हैं। भारतीय राजनीति में मुसलमानों को खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। देखा जाए तो मुसलमानों को राजनीति में भी उपेक्षित किया जाता रहा है। उनकी समस्याओं को हमेशा से नजरअंदाज किया जाता रहा है। कुछ पार्टियाँ उनका तुष्टीकरण करने का प्रयास करती है, तो कुछ सिरे से बहिष्कार करती हैं। वर्तमान में जगह-जगह 'मॉब लिंचिंग' में मुसलमानों की खुलेआम हत्या करायी जा रही है। सांप्रदायिक दंगों में भी मुसलमानों को सर्वाधिक नुकसान पहुँचाया जाता है। दंगों में पुलिस प्रशासन, सरकार तथा अन्य संगठन मुसलमानों के साथ भेदभाव का व्यवहार करते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह अपनी कहानी 'नया कबीरदास' में इस भेदभाव को कुछ इस प्रकार दिखाया है-"तभी उसने सुना कि कड़ाई एकतरफा हो रही है। एक वर्ग को प्रशासन ने पूरी छुट दी है और दूसरे वर्ग के साथ सख्ती की जा रही है। फिर यह कि बहुत सारे बेगुनाह पकड़ लिए गए हैं......इसमें पॉलिटिक्स काम कर रही है......लोग आपसी रंजिश निकाल रहे हैं।"[2] पुलिस प्रशासन के इस पक्षपातपूर्ण व्यवहार से मुसलमानों में असंतोष पैदा होता है। वे स्वयं को असुरक्षित महसूस करते हैं।

---

[1]असगर वजाहत, डेमोक्रेशिया, पृष्ठ 20

[2] अब्दुल बिस्मिल्लाह, ताकि सनद रहे, पृष्ठ 134

राजनीति की निर्ममता और अमानवीयता को असगर वजाहत ने अपनी कहानियों में बखूबी चित्रित किया है। 'डेमोक्रेशिया' और 'मैं हिंदू हूँ' नामक उनका कहानी-संग्रह वर्तमान भारतीय राजनीति के घिनौने चरित्र को पेश करता है। असगर वजाहत ने 'डेमोक्रेशिया' कहानी संग्रह में वर्तमान भारतीय राजनीति और राजनेताओं के अलोकतांत्रिक रवैये को चित्रित किया है। राजनीति में हिंसा और अपराध का बोलबाला है। नेता स्वार्थ सिद्धि के लिए चुनाव लड़ते हैं और जनता के प्रति और असंवेदनशील हैं। 'मुख्यमंत्री और डेमोक्रेशिया' कहानी में वे लिखते हैं-''मुख्यमंत्री के सामने प्लेट में चिकन की हड्डियों का ढेर लगा था। उसे देखकर सचिव बोला, ''सर हड्डियाँ फेंक दें तो उन लोगों तक पहुँच जाएगी। 'अरे फेकना क्या है, हम ही हड्डियाँ देकर आते हैं। चुनाव में एक वोट तो पक्का हो ही जाएगा। यही तो डेमोक्रेशिया है।''[1] मुख्यमंत्री जी हेलीकॉप्टर से बाढ़ पीड़ित क्षेत्र का मुआयना करते हैं। खाने का पैकेट जनता में बाँटते हैं और जिन लोगों ने उन्हें वोट नहीं दिया है, उनके पेट से गिन-गिन कर पूड़ियाँ वापस निकाल लेते हैं। सरकारी अफसर आपदा प्रबंधन की जिम्मेदारी एक-दूसरे पर थोपते हैं। असगर वजाहत ने इस कहानी संग्रह में भारतीय समाज में आम जनजीवन के बीच घटित समस्याओं और उस पर सरकार की नीतियों की नंगी तस्वीर पेश की है। बलात्कार, आतंकवाद, दंगा, बाढ़, सूखा, भूख, बेकारी, गरीबी, सरकारी तंत्र, नेताओं के दुर्व्यवस्था, संसद की अर्थहीन बहसों, समाचार पत्रों और टीवी चैनलों द्वारा चलाए जा रहे दुष्प्रचार आदि ऐसे कई मुद्दों पर इस कहानी संग्रह में लेखक ने हमारा ध्यान केंद्रित करने का प्रयास किया है। इसी प्रकार 'मैं हिंदू हूँ' नामक कहानी संग्रह में देश में फैले सांप्रदायिक माहौल और राजनीतिक पार्टियों की स्थिति को दिखाया गया है। 'गिरफ्त' कहानी में हमारे देश के नेताओं की भ्रष्टता का वर्णन किया गया है।

नासिरा शर्मा ने भी भारतीय राजनीति की दुर्दशा को अपनी कहानियों में चित्रित किया है। उन्होंने 'सबीना के चालीस चोर' नामक कहानी में सांप्रदायिक दंगों का जिक्र करती हैं। अक्सर मुसलमानों को भारत-विभाजन का जिम्मेदार ठहरा कर राजनेता अपना उल्लू सीधा करते हैं। मुसलमानों को देशद्रोही व पाकिस्तान परस्त कहा जाता है। देश में चुनाव के समय हिंदू-मुस्लिम फसाद कराए जाते हैं। नासिरा शर्मा धर्म के नाम पर किये जाने वाले राजनीति को दिशाहीन मानती हैं और तटस्थ राजनीति का समर्थन करती हैं। नासिरा शर्मा ने वर्तमान भारतीय राजनीति को पूँजीवाद से संचालित बताया

[1] असगर वजाहत, डेमोक्रेशिया, पृष्ठ 114

है। पूँजीवादी सत्ता आम जनता के दुख-दर्द के बारे में कैसे सोच सकती है? यदि वह जनता का भला करने लगेगी, तो उसकी तिजोरी कैसे भरेगी? राजनेता यदि पूँजीपतियों से गठजोड़ नहीं करेंगे तो वे अपनी कुर्सी कैसे बचा पाएँगे? नासिरा ने वर्तमान भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर निराशा व्यक्त करते हुए, इस प्रकार के कई प्रश्न इस कहानी में प्रस्तुत किए हैं।

2.2.4. साम्प्रदायिक स्थिति-

सांप्रदायिकता भारतीय समाज की एक ऐसी समस्या है, जो दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सांप्रदायिकता को राजनीतिक समर्थन प्राप्त नहीं है। सांप्रदायिक दंगों से आमजन का काफी नुकसान होता है। भारत-विभाजन के दौरान जो साम्प्रदायिक दंगे हुए उससे ऐसी स्थितियाँ पैदा हुई जिसके कारण सन् 47 के बाद भी सांप्रदायिक सौहार्द में लगातार गिरावट देखी जा सकती है। हिन्दी कहानियों में सांप्रदायिकता को एक गम्भीर समस्या के रूप में विभिन्न कहानीकारों द्वारा उठाया गया है। भीष्म साहनी सांप्रदायिक समस्या को केंद्र में रखकर सरदारनी, जहुर बख्श, झुटपुटा, पाली आदि कहानियाँ लिखते हैं। 'सरदारनी' नामक उनकी कहानी में दंगे को भड़काने के लिए हिन्दू मुहल्लों में यह अफवाह फैलाया जाता है कि मुसलमान मस्जिद में हथियार इकट्ठा कर रहे हैं और मुसलमानों के मुहल्ले में भी ऐसी ही अफवाह फैलाई जाती है कि हिंदू बर्छे और लाठियाँ इकट्ठा कर रहे हैं। इस अफवाह से मुहल्ले में सांप्रदायिक तनाव पैदा हो जाता है और सुबह होते-होते दंगा फैल जाता है। दंगे में करमदीन मास्टर को सरदारनी दंगाइयों से बचाकर बाहर सुरक्षित जगह ले जाती है। इसी प्रकार जहूर 'बख्श जरूर' कहानी में जहूर बख्श एक धर्मनिरपेक्ष और मानवतावादी लेखक है। दंगे के दौरान उसकी सारी किताबें जला दी जाती है। इस कहानी में लेखक ने यह दिखाया है कि दंगे के दौरान उत्तेजित भीड़ लोगो के काम को भूल जाती है और सिर्फ धर्म को याद रखती है। इसी तरह 'झूटमुटा' कहानी 1984 दिल्ली में हुए हिंदू-सिक्ख दंगे पर आधारित है। जबकि 'पाली' कहानी में विभाजन के दौरान घटित सांप्रदायिक हिंसा को दिखाया गया है। इस कहानी में मनोहर लाल का पुत्र पाली विभाजन के दौरान अपने माँ-बाप से बिछड़ जाता है जबकि उसकी पुत्री को रास्ते में ही दंगाई मार देते हैं। दोनों पति-पत्नी जब भारत पहुँचते हैं तो उनकी गोद सूनी होती है। अतः वे अपने बेटे की तलाश में पाकिस्तान जाते हैं। वहाँ एक नि:संतान दंपत्ति उसके बेटे को अपने बेटे के रूप में अपना

चुके हैं। वे पाली को कलमा पढ़ाकर व खतना करवाकर मुसलमान बना चुके होते है। जब वह अपने बेटे पाली को वापस हिंदुस्तान लेकर आते है। उसे नमाज पढ़ता देख फिर से उसका मुंडन और शुद्धीकरण करके हिंदू बनाया जाता है।

सांप्रदायिक तनाव पर चिंता व्यक्त करते हुए विष्णु प्रभाकर ने 'अधूरी कहानी' नामक कहानी लिखी है। इस कहानी में उन्होंने हिंदू और मुसलमानों के आपसी सौहार्द को याद करते हुए लिखा हैं-"हिंदुओं के त्योहारों पर मुसलमान उन्हें बधाई देते थे। मौसम की पैदावार का लेना देना चलता था। होली जलती तो जौ की बाले पहुँचाने का जिम्मा मुसलमानों पर था। ईद के दिन हिंदू अपनी गाय भैंसों का सारा दूध मुसलमानों में बाँट देते थे।"[1] वे इस कहानी में दिखाते हैं कि गाँव में हिन्दुओं और मुसलमानों का आपसी सौहार्द धीरे-धीरे खत्म हो गया और यह एक अधूरी कहानी बनकर रह गई। अज्ञेय ने 'शरणदाता' कहानी में भी सांप्रदायिक सद्भाव को बनाए रखने पर जोर दिया है। इस कहानी में रफीकुद्दीन कहता है-"मैं तो इसे मेजॉरिटी का फर्ज मानता हूँ कि वह माइनॉरिटी की हिफाजत करें और उन्हें घर छोड़ छाड़कर भागने न दे। हम पड़ोसी की हिफाजत न कर सके तो मुल्क की हिफाजत क्या खाक करेंगे।"[2] रफीकुद्दीन देविन्दरलाल को अपना घर छोड़कर जाने के लिए मना करता है और उन्हें यह आश्वासन देता है कि मैं आपकी पूरी सुरक्षा करूँगा।

सांप्रदायिक समस्या को लेकर स्वयं प्रकाश ने भी कई कहानियाँ लिखी हैं। उनकी 'पार्टीशन' नामक कहानी में विभाजन के दंश और सांप्रदायिकता को मुस्लिम समाज के परिप्रेक्ष्य में दिखाया गया है। इसके अलावा 'चौथा हादसा' नामक कहानी में सांप्रदायिक हिंसा व नफरत को प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में यह दिखाया गया है कि समाज में व्यक्ति के धर्म की पहचान बाहरी वेशभूषा के आधार पर तय की जाती है। कथावाचक का तबादला जैसलमेर हो जाता है और इस दौरान उसकी दाढ़ी बढ़ जाती है, जिस कारण वहाँ लोग उसे मुसलमान समझने लगते हैं। एक मुसलमान सज्जन उससे अपनी बेटी का विवाह करने का प्रस्ताव रखते हैं। यात्रा के दौरान बस में एक साहब उसे खान साहब कहकर संबोधित करते हैं और मुसलमान समझकर व्यंग्य करते हैं।

---

[1] विजयदेव झारी, हिन्दी कहानी में इस्लाम, पृष्ठ 170

[2] सं० गिरिराजशरण, साम्प्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ, पृष्ठ 11

हिन्दू-मुसलमानों के बीच तनाव की स्थिति को असगर वजाहत की रचनाओं में प्रमुखता से देखी जा सकती है। उपन्यासों के साथ-साथ उनकी कहानियों में भी साम्प्रदायिकता की समस्या को रेखांकित किया गया है। 'जख्म' नामक कहानी में सांप्रदायिक दंगों की वास्तविकता को विभिन्न पात्रों के आपसी संवाद के माध्यम से इस प्रकार दिखाया हैं-"मैं कहता हूँ यह फसाद क्यों होते हैं ?"

"भाई मेरे, फसाद होते नहीं, कराए जाते हैं।"....

"हाँ भाई, अब तो बात जगजाहिर है।"....

"जिन्हें उससे फायदा होता है ?"

"किन्हें उससे फायदा होता है ?"

"वो लोग जो मजहब के नाम पर वोट माँगते हैं। वो लोग जो मजहब के नाम पर नेतागिरी करते हैं।"[1]

असगर वजाहत की 'मैं हिंदू हूँ' नामक कहानी भी सांप्रदायिक दंगों पर केन्द्रित है। इस कहानी में 'सैफू' नामक बच्चा अपनी माँ के कहने पर कर्फ्यू में कुछ देर की छूट मिलने पर दूध लाने बाजार जाता है। बच्चे को घर आने में देर हो जाती है और तब तक कर्फ्यू फिर से लग जाती है। ऐसे में पुलिस वाले उसे पकड़कर मारने लगते हैं। बच्चे को साम्प्रदायिक वातावरण में धार्मिक भेदभाव का इतना ज्ञान रहता है कि पी० एस० सी वाले हिंदुओं को नहीं मारते। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगता है कि 'मैं हिंदू हूँ', तुमने हमें मारा कैसे ?' बच्चे के मन में मुसलमान होने का भय इतना गहरे तक व्याप्त है कि वह नींद में ही चिल्लाने लगता है, 'मैं हिंदू हूँ।' असगर वजाहत ने सांप्रदायिक तनाव, कर्फ्यू, दंगा व पुलिस प्रशासन के पक्षपातपूर्ण व्यवहार को भी इस कहानी में दिखाया है। इसी प्रकार 'मुश्किल काम' कहानी में दंगों के दौरान होने वाली हिंसा और दंगाइयों की मानसिकता को उजागर किया गया है। इस कहानी में दो दंगाई मदिरालय में बैठकर शराब पी रहे हैं और बड़ी बहादुरी से अपने द्वारा मारे गए लोगों को गिना रहे हैं। दोनों गुणा गणित कर रहे हैं कि उन लोगों ने कितने बुजुर्ग, कितने बच्चे, कितनी महिलाओं व पुरुषों को मारा है। इस कहानी में मनुष्य के पाशविक प्रवृत्ति को नरसंहार के माध्यम से दिखाया गया है।

---

[1] असगर वजाहत, मैं हिन्दू हूँ, पृष्ठ 11

मुस्लिम समाज में पिछड़े वर्ग की आंतरिक समस्याओं को अपनी रचनाओं में स्थान देने वाले प्रमुख रचनाकार के रूप में अब्दुल बिस्मिल्लाह को जाना जाता है। मुसलमानों की अन्य समस्याओं के साथ-साथ सांप्रदायिकता तथा उससे समाज में उत्पन्न भेदभाव को भी इनके द्वारा उठाया गया है। साम्प्रदायिक स्थितियों की जड़ की तलाश करते हुए 'दंगाई' कहानी में वे लिखते हैं-"मेरा विचार है कि अनेक राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों के फलस्वरूप एक ऐसा वर्ग इस देश में आविर्भूत हुआ है, जिसकी जड़ें अंततः सांप्रदायिकता के गढ़े तक पहुँच गई है और उसके फल-फूल से पल्लवित होने वाली संताने अवसर आने पर अपना चमत्कार दिखाने लगती हैं।"[1] इस कहानी में रामलीला के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द को दिखाया गया है। मुसलमान रामलीला में उत्साहपूर्वक भागीदारी निभाते हैं। सीता का पात्र करामत अली के लड़के ने किया और मुनीर के बेटे ने बानरी सेना व अन्य छिटपुट रोल निभाता है। रहमान अली की अम्मा पान का ठेला लगाए हैं, लोग बिना भेदभाव के उनसे पान खरीद कर खा रहे हैं। गाँव में एक-दूसरे के प्रति सौहार्द इतना प्रगाढ़ था कि हिंदू-मुसलमान में कोई भेदभाव नहीं था। फिर अचानक देखते-देखते सांप्रदायिकता की लहर गाँव में फैलने लगती है। साम्प्रदायिकता का चित्रण पंकज बिष्ट की रचनाओं में भी देखने को मिलता है। उनके द्वारा भी साम्प्रदायिकता को सामाजिक सौहार्द्र बिगाड़ने में एक प्रमुख कारक माना गया है। उन्होंने 'क्या कहना है जटायु' नामक अपनी कहानी में सांप्रदायिक दंगों की विभीषिका को दिखाया है। कहानी में सांप्रदायिक दंगों में कुछ हिन्दू लड़के एक मुसलमान लड़की 'नसरीन' के साथ बलात्कार करने की कोशिश करते हैं। वहीं एक हिन्दू लड़के द्वारा उस लड़की को बचाया जाता है। इस कहानी में नेताओं के सांप्रदायिक चरित्र और दंगों में उनकी भूमिका को दिखाया गया है। नेताओं के इस चरित्र को 'चित्रा मुद्गल' ने 'लपटें' नामक कहानी में भी दिखाया है। मुंबई के 'लोक सेना पार्टी' का नेता चंदा न देने के कारण रघुवीर यादव नामक युवक के पुत्र को आग के हवाले कर दिया जाता है।

हिन्दी साहित्य में नासिरा शर्मा को एक सशक्त रचनाकार रूप में देखा जाता है। उनकी रचनाओं में हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों के साथ ही देश की सामाजिक स्थिति को भी देखा जा सकता है। दंगों का दायरा कितना व्यापक हो सकता है इस बात को नासिरा के यहाँ देखा जा सकता है। आमतौर पर दंगों को हिन्दू-मुसलमान के सम्बन्ध में ही जोड़कर देखा जाता है लेकिन एक ही धर्म के भीतर अलग-अलग सम्प्रदायों के बीच भी दंगा हो

[1] सं० गिरिराजशरण, साम्प्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ, पृष्ठ 24

सकता है, इस बात को नासिरा के यहाँ देखा जा सकता है। उन्होंने शिया-सुन्नी सांप्रदायिक दंगे को 'आया वसंत सखी' नामक कहानी में दिखाया है। नासिरा ने इस कहानी में कर्फ्यू के वातावरण का चित्रण इस प्रकार किया है-"चारों तरफ सन्नाटा है। शहर के कुछ इलाकों में कर्फ्यू लगा हुआ है। भूख, गम और मौत की मार कहकहे लगाती हर घर के बंद दरवाजे खटखटाती घूम रही है। सायरा, कमसिन लड़की, जिसकी ख्वाब देखने की उम्र है, वह उदास चुपचाप माँ की पट्टी से लगी हुई बैठी है। सुल्ताना का बदन बुखार से तप रहा है, उसकी खुली आँखें ऊपर छत पर लगी हुई हैं। दोनों बेहद दुखी हैं।"[1] इसी प्रकार नासिरा ने 'अजनबी शहर' नामक कहानी में भी दंगों के दौरान भय के वातावरण को दिखाया है। इस कहानी में शहनवाज अपना घर और देश छोड़कर जाने को तैयार नहीं है। इसी प्रकार 'सरहद के उस पार' कहानी में विभाजन के दौरान देश में फैली हिंसा और नफरत को दिखाया गया है। इस कहानी में रेहान परेशान और चकित होता है कि उसे भारत छोड़कर पाकिस्तान जाने के लिए क्यों कहा जा रहा है ? उसे अपने ही देश में पराई दृष्टि से क्यों देखा जा रहा है ? हिंदू मुस्लमान एक-दूसरे के खून के प्यासे क्यों हो गए हैं ? नासिरा ने 'सतघरवा', 'नौतपा', 'सबीना के चालीस चोर', 'असली बात' आदि कहानियों में सांप्रदायिकता की समस्या को दिखाया है।

सांप्रदायिकता की समस्या भारतीय समाज में विष की भांति फैली हुई है। यह एक राष्ट्रीय समस्या है। आजादी के बाद इसे खत्म करने के लिए सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं ने कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई है लेकिन प्रगतिशील किस्म के विचारकों, साहित्यकारों द्वारा अपने लेखन में लगातार यह प्रयास किया है कि समाज में सांप्रदायिक सद्भाव एवं भाईचारा बना रहे। हिन्दी कहानीकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह, उपेंद्रनाथ अश्क, भीष्म साहनी, स्वयं प्रकाश, चित्रा मुद्गल, गोविंद मिश्र, असगर वजाहत आदि ऐसे ही रचनाकार हैं, जिनकी रचनाओं में सांप्रदायिक सद्भाव की स्थिति को बनाये रखने की लगातार कोशिश दिखाई देती है।

2.2.5. धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति-

हिन्दी कहानियों में अधिकांशतः मुस्लिम रचनाकारों ने ही मुसलमानों के धार्मिक नियम-कानून, रीति-रिवाजों व परंपराओं का चित्रण किया है। विवाह, जन्म, मृत्यु, पर्व आदि अवसरों पर मुस्लिम समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों व परंपराओं को नासिरा

[1] नासिरा शर्मा, सबीना के चालीस चोर, पृष्ठ 184

शर्मा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मेहरुन्निसा परवेज, असगर वजाहत आदि रचनाकारों की कहानियों में देखा जा सकता है। मृत्यु के अवसर पर मुसलमानों के बीच प्रचलित धार्मिक कर्मकांडो को बदिउज्जमाँ ने 'अंतिम इच्छा' नामक कहानी में इस प्रकार दिखाया है- "रिवाज के मुताबिक चौथे दिन 'कुल' हुआ। उसी बैठक में जहाँ बरसों पहले छोटे अब्बा का 'कुल' हुआ था कमाल भाई का 'कुल' भी हुआ था। अगरबत्तीयाँ जलाई गयीं। कुरान शरीफ की तिलावत हुई, फिर मिलाद हुआ। मरने वाले की रूह की शांति के लिए दुआएँ माँगी गई। फिर गरीबों को खाना खिलाया गया।"[1] मुसलमानों के यहाँ किसी की मृत्यु हो जाने पर चौथे दिन कुरान का पाठ कराया जाता है। इस अवसर पर मुहल्ले के लोग व रिश्तेदार आदि आते हैं और कुरान पढ़ते हैं। गरीबों को खाना खिलाया जाता है। पैसे व वस्त्र दान में दिए जाते हैं। मुसलमानों में ऐसी मान्यता है कि इससे मरने वालों की आत्मा को शांति मिलती है। मीलाद में मौलाना तकरीर करते हैं। उसमें इस्लाम धर्म की अच्छाईयों को बताया जाता है। मुस्लिम समाज में लड़कों का जन्म के बाद खतना किया जाता है। इस अवसर को एक उत्सव की तरह मनाया जाता है। नासिरा शर्मा ने 'गूंगी गवाही' कहानी में खतना के रस्म का जिक्र किया है। उन्होंने ईद, मुहर्रम, शब-ए-बारात आदि त्योहारों को भी अपनी कहानियों में दिखाया है। 'पुराना कानून' नामक कहानी में विवाह एवं तलाक संबंधी इस्लाम धर्म की मान्यताओं का वर्णन किया है। इस्लाम में तलाक के बाद पत्नी को पति के सामने जाना हराम माना जाता है। तलाक के बाद अगर पति दुबारा अपनी पत्नी को रखना चाहता है तो उसे हलाला की रस्म पूरी करनी पड़ती है। हलाला एक पुरानी और खराब किस्म की प्रथा है। नासिरा ने युवा पीढ़ी द्वारा पुराने रीति-रिवाजों, परंपराओं, लोक संस्कृति व सभ्यता को त्यागने की प्रवृत्ति को 'विरासत' कहानी में दिखाया है। युवा पीढ़ी में आधुनिकता में विश्वास करती है और अपने समाज की पुरानी मान्यताओं को छोड़ रही है।

भारत में मुसलमानों का एक बड़ा हिस्सा गाँवों में निवास करता है। गाँव में रहने वाले अधिकतर मुसलमान धर्म परिवर्तन कर इस्लाम ग्रहण किए हुए हैं। उन्हें धार्मिक नियम, कानून व मान्यताओं की ज्यादा जानकारी नहीं है। वे ग्रामीण संस्कृति में रचे बसे हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ऐसे ही एक व्यक्ति की कथा को 'तूफानी पहलवान' नामक कहानी में इस प्रकार दिखाया है-"तो मुसलमान हो तुम ?"

तूफानी पहलवान के दांत चमके। "जी हुजूर।"

---

[1] सं० नरेंद्र मोहन, विभाजन भारतीय भाषाआँ की कहानियाँ, पृष्ठ 252

"नमाज पढ़ते हो ?" "ईद बकरीद हुजूर।''

"रोजा ?" "औरतें रखती हैं हुजूर।''

"परदा भी करती हैं वे ?" "कहाँ हुजूर ? पर्दा करेंगी कतो काम कैसे चलेगा ? बड़वा लोगन के खेत में काम जो करती हैं।'' ''शादी ब्याह कैसे होता है ?"

"निकाह से होता है हुजूर। मौलवी साहब पढ़ाते हैं।''[1]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि गाँवों में धार्मिक नियमों में काफी शिथिलता है। ग्रामीण मुसलमानों के अधिकांश रीति-रिवाज व मान्यताएँ हिंदुओं से प्रभावित हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक पुस्तक में दिनकर ने हिन्दुओं और मुसलमानों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। बहुत सारे विद्वान इस बात से सहमत हैं कि मुसलमानों के विवाह, मृत्यु, जन्म-मरण आदि अवसरों पर होने वाले अधिकतर रीति-रिवाज हिंदुओं से प्रभावित हैं। बदीउज्जमाँ ने इस सांस्कृतिक समन्वय को अपनी कहानी 'अंतिम इच्छा' में दिखाया है। उन्होंने सांप्रदायिकता को राजनीति द्वारा प्रेरित माना है तथा हिंदुओं और मुसलमानों में सांस्कृतिक रूप से एक समान बताया है-''धर्म को छोड़कर हिंदुओं और मुसलमानों में कोई अंतर नहीं है। जो अंतर दिखाई देता है वह केवल बाहरी है। इससे अधिक अंतर तो खुद मुसलमानों के विभिन्न वर्गों और हिंदुओं के विभिन्न वर्गों में दिखाई दे जाएगा। क्या तुमने कभी गौर किया है कि आम मुसलमान की जिंदगी जन्म से लेकर मौत तक जिन रीति-रिवाजों के दायरे में घूमती है वे आम हिंदू से जरा भी अलग नहीं हैं ? जन्मोत्सव, छठी की रस्म, शादी ब्याह के गीत, यहाँ तक कि मरने के बाद बहुत से संस्कार बिल्कुल वैसे ही होते हैं जैसे कि हिंदूओं के।''[2] इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान को अब्दुल्ल बिस्मिल्लाह ने भी अपनी कहानियों में दिखाया है। 'फिर क्या हुआ' कहानी में खां साहब की बीवी माँग में सिंदूर लगाती है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में कुछ मुसलमानों में महिलाएँ सिंदूर लगाती हैं जबकि मुसलमानों में इस तरह के रिवाज का प्रचलन नहीं है लेकिन यह लोक का प्रभाव है।

दुनिया के लगभग सभी धर्मों में धार्मिक पाखंड और अंधविश्वास को देखा जा सकता है। यह पाखंड धार्मिक विधि-विधानों के नाम पर समाज में प्रचलित हैं। मुसलमानों में भी जादू-टोना, भूत-प्रेत, झाड़-फूँक, दुआ-ताबीज, रूह, जिन्ह, शैतान

---

[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह, शादी का जोकर, पृष्ठ 120

[2] सं० नरेंद्र मोहन, विभाजन भारतीय भाषाओँ की कहानियाँ, पृष्ठ 250-51

आदि पर विश्वास किया जाता है। जादुई शक्ति द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान ढूंढना और अलौकिक सत्ता से के प्रति विश्वास करना सामान्य बात है। मुस्लिम समाज में लोगों की प्रबल मान्यता है कि ‘मजार’ पर जाकर अपनी मनोकामना को पूरा करने के लिए दुआ माँगने पर वह पूरा होता है। मुस्लिम समाज में प्रचलित धार्मिक पाखंड, अंधविश्वासों तथा धर्म के व्यावसायीकरण को मेहरुन्निसा परवेज ने ‘खुरचन’ कहानी में इस प्रकार दिखाया है-“अब्बा काम करते-करते थक जाते थे। रोज ताबीज बनाते, झाड़-फूँक करते और बाबा साहब की खिदमत में हमेशा हाजिर रहते। जिस दिन संदल चढ़ता उस दिन रौनक और धूमधाम देखते ही बनती थी। सारी रात कव्वाली चलती रहती.... जिसकी भी मुराद पूरी होती वह चादरे वगैरह चढ़ाता। अम्मा उन चादरों को काट-काट कर अपने तीनों बच्चों के लिए कपड़ा सिला करती थी।... सारे शहर में अब्बा का ठस्का था। लोग आते हाथ का बोसा लेते, गिड़गिड़ाते और बाबा साहब से काम पूरा करवाने की दरख्वास्त करते। अब्बा मोर पंख से सबके सर को झाड़ते, धुनी देते और शिरनी लेते थे।”[1]

मुस्लिम समाज में ऐसी मान्यता है कि मजारों में दफ्न पीर-फकीर उनकी अर्जियों को खुदा तक पहुँचा सकते हैं। अतः वे मजारों के प्रति प्रबल आस्था रखते हैं। इसी प्रकार ‘ताबीज’ के प्रति भी मुसलमानों में यह आस्था है कि ताबीज पहनने से उनकी शारीरिक व मानसिक समस्याएँ दूर होती हैं। ताबीज में मुल्ले-मौलवी कुरान की आयतों को कागज पर लिखकर, काले कपड़े में लपेटकर पहनने के लिए देते हैं। ताबीज को मुल्ले मौलवियों ने एक धंधा बना लिया है। वे इसे बनाने के लिए पैसे लेते हैं। इस प्रकार के कई ऐसे कर्मकांड मुसलमानों में प्रचलित हैं जो धर्म के नाम पर आम जनता को ठगने के लिए बनाए गए हैं। लोग मुल्ले-मौलवीयों के पास अपनी समस्याओं को लेकर जाते हैं और वे उनसे मोटे पैसे लेते हैं। इसके अलावा बलि प्रथा भी मुसलमानों में प्रचलित है।

मुसलमानों में आत्मा-परमात्मा के अद्भुत संयोग की भी मान्यता है। ऐसा माना जाता है कि आत्माएँ तथा जिन्ह व शैतान किसी जीवित व्यक्ति के शरीर में कुछ देर के लिए समा जाती है। उस दौरान जीवित व्यक्ति को अलौकिक शक्ति प्राप्त होती है। अतः वह जो कुछ बोलेगा वह सत्य होगा। इसलिए उस अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करने तथा उससे वापस चले जाने के लिए लोग मिन्नते करते हैं। शानी इसी प्रकार के एक धार्मिक

[1] मेहरुन्निसा परवेज, टहनियों पर धूप, पृष्ठ 108

मान्यता का वर्णन करते हुए लिखते हैं-"आपने शायद किसी मुहर्रम की सवारी को चढ़ते हुए नहीं देखा। आदमी जैसा आदमी होता है वह, लेकिन देखते ही देखते यानी उत्तेजक धुन में बजने वाले बाजे, नारे-वारे, ऊदबत्ती- लोबान की खुशबू या नौहे के प्रभाव में आकर वह एकाएक काँपने लगता है यानी उस पर हाल आ जाता है और वह इमाम हुसैन की सवारी हो जाता है।"[1] अब्दुल बिस्मिल्लाह ने 'भूत' कहानी में मुसलमानों के प्रचलित भूत-प्रेत की मान्यता को दिखाया है। इस कहानी में खान साहब की पत्नी को भूतों पर गहरा विश्वास है। वों यह मानती हैं कि उनके घरों में भूत-प्रेत ने अपना डेरा डाले हुए हैं इसलिए उनके पति की तरक्की नहीं हो रही है। भूतों को भगाने के लिए वह तरह-तरह का उपाय करती हैं।

हिन्दी कहानियों में मुसलमानों में प्रचलित खान-पान और वेशभूषा का भी चित्रण देखने को मिलता है। मुसलमानों के यहाँ मांसाहार का अधिक प्रचलन है। मेहरुन्निसा परवेज ने 'पाँचवी कब्र' कहानी में रहमान के घर पर मछली बनाने व खाने का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। मुसलमानों के त्योहारों पर बनने वाले पकवान तथा धार्मिक कर्मकांडों का विस्तारपूर्वक चित्रण मुस्लिम रचनाकारों ने अपनी कहानियों में किया है। वेशभूषा का चित्रण करते हुए महिलाओं में साड़ी या सूट तथा पुरुषों में कुर्ता-पायजामा का प्रचलन अधिक हुआ है। गाँव की महिलाएँ पर्दा कम करती हैं। ग्रामीण मुसलमानों में धार्मिक विधि-विधानों में शिथिलता देखी जा सकती है। मुस्लिम समाज में धर्म और लोक का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है इसलिए मुस्लिम संस्कृति को भारतीय संस्कृति से पृथक करके नहीं देखा जा सकता है।

2.2.6. स्त्रियों की स्थिति-

मुस्लिम समाज में स्त्रियों की स्थिति को हिन्दी कहानीकारों ने काफी विस्तारपूर्वक दिखाया है। हिन्दी कहानियों में मुस्लिम स्त्रियों के कई रूप देखने को मिलते हैं। अधिकतर स्त्रियाँ घर की चारदीवारी में कैद, एक गुमनाम जीवन व्यतीत करती हुई दिखती हैं। यशपाल ने 'परदा' कहानी में पुरुषवादी सत्ता के झूठे अभिमान और उनकी स्त्रियों के नारकीय जीवन का चित्रण किया है। जूट के परदे के पीछे रहने वाली ये स्त्रियाँ एक अभिशप्त जीवन जीने को विवश है। इस कहानी में स्त्रियों की दुर्दशा को तो दिखाया गया है लेकिन उनकी समानता और स्वतंत्रता पर लेखक की कोई

---

[1] गुलशेर खां शानी, चर्चित कहानियाँ, पृष्ठ 82

प्रतिक्रिया नहीं दिखाई देती। चौधरी पीरबख्श के घर की स्त्रियाँ परिस्थिति को मार को सिर्फ सहती हैं, विरोध नहीं करती। हिन्दी की प्रारंभिक कहानियों में अधिकांशतः स्त्रियों के इसी स्वरूप का चित्रण देखने को मिलता है।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कहानियों में विषयगत और शिल्पगत परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों में स्त्रियों की स्थिति पर भी गंभीरतापूर्वक विचार किया जाने लगा। शानी ने मुस्लिम स्त्रियों की समस्याओं, उनके सुख-दुख, शारीरिक व मानसिक पीड़ा आदि को अपनी कहानियों में दिखाने का प्रयास किया है। उन्होंने पति-पत्नी संबंधों, यौन समस्याओं, विवाह व तलाक की समस्या व दहेज प्रथा आदि को भी अपनी कहानियों का विषय बनाया है। 'बीच के लोग' कहानी में 'शम्मी बेगम' एक अधेड़ महिला हैं जो स्त्रियों की यौन स्वतंत्रता की पक्षधरता करती हैं। वे अपने पति से अलग हो जाती हैं और 'नारमा हाफिज' नामक युवक से यौन संबंध बनाती हैं। इसी प्रकार 'शीशा' कहानी में 'नाजो' अपने बूढ़े व अपाहिज पति से यौन सुख न मिलने पर दूसरे युवक से संबंध बनाती है। 'मरे हुए चेहरे' कहानी में 'अनवरी बेगम' अपने पति के रहते हुए दूसरों से संबंध बनाती हैं और बाद में पति को छोड़कर दूसरे पुरुष से विवाह करने का निश्चय करती हैं। शानी ने विधवा स्त्री के जीवन की कठिनाइयों को 'चील' कहानी में अत्यंत मार्मिक ढंग से दिखाया है। कहानी की मुख्य पात्र 'टोंकी' अपने पति की मृत्यु के बाद छोटे-छोटे बच्चों का पेट पालने के लिए दिनभर जंगल में काम करती है और फिर भी अपने बच्चों का पेट पालने में असमर्थ रहती है। शानी ने स्त्री जीवन को केंद्र में रखकर और भी कई कहानियाँ लिखी हैं जिनमें सीढ़ियाँ, एक संधि और, नंगे, जली हुई रस्सी, एक काली लड़की, डाली नहीं फूलती आदि महत्त्वपूर्ण है।

हिन्दी कहानीकारों में मुस्लिम समाज की स्त्रियों को केंद्र में रखकर मेहरुन्निसा परवेज ने भी महत्त्वपूर्ण कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियों में बस्तर के आदिवासी समाज में संघर्षरत स्त्रियों को देखा जा सकता है। 'ओढ़ना' कहानी में बस्तर में प्रचलित एक कुप्रथा का वर्णन किया गया है, जिसमें घर की बड़ी बेटी को पारिवारिक खर्च चलाने के लिए वेश्या बना दिया जाता है। इस कहानी में 'लाडो' एक ऐसी ही लड़की है, जो इस कुप्रथा का शिकार होती है। लाडो वेश्यावृत्ति नहीं करना चाहती, अतः वह भैरव मास्टर के साथ भाग जाती है। विधवा स्त्रियों की दुर्दशा को 'दूसरी अर्थी' नामक कहानी में देखा जा सकता है। इस कहानी में एक निम्नवर्गीय स्त्री के पति की अकाल मृत्यु हो जाती है। पति के मरने के बाद मकान मालिक उसका सारा सामान उठाकर फेंक देता है। सामान

को दूसरी अर्थी की तरह उठाकर उसे घर से निकलना पड़ता है। विधवा स्त्रियों की त्रासदी को इस कहानी में बहुत मार्मिकता से दिखाया गया है। वही 'रिश्ते' नामक कहानी दहेज की समस्या पर आधारित है। दहेज प्रथा मुसलमानों के बीच तेजी से प्रचलित हुई है। गरीब माँ-बाप अपने बेटियों के विवाह के लिए चिंतित रहते हैं। दहेज की समस्या का चित्रण करते हुए मेहरून्निसा परवेज लिखती हैं-"सात लड़कियाँ सात मोअमें की तरह खड़ी थी। हमेशा वह देखता है कि अब्बा थककर आते और झोल खटिया पर लुढ़क जाते और अम्मा हर समय लड़कियों की शादी की जुगाड़ में रहती। ईद के बहाने जो कपड़े बन जाते उन्हें लड़कियों को सिर्फ ईद में थोड़ी देर पहनने देती फिर तहकर टांके लगाकर सबसे नीचे की पेटी में छिपाकर रख देती। घर में जो पुराने कपड़े निकलते उनके बदले वह नए बरतन लेकर दहेज के लिए सहेजकर रख देती।"[1] इसी प्रकार 'नया घर' कहानी में एक विधवा स्त्री की दुर्दशा को दिखाया गया है। वह विधवा स्त्री अपनी सूखा रोग से पीड़ित बच्ची का इलाज कराने और परिवार का खर्च चलाने के लिए संघर्षरत है।

मुस्लिम स्त्रियों की करुण कथा को नासिरा शर्मा ने वृहत स्तर पर दिखाया है। उनकी कहानियों का फलक इतना विस्तृत है कि वह पूरे एशिया महाद्वीप की स्त्रियों के जीवन संघर्ष को प्रस्तुत करती हैं। नासिरा शर्मा की कहानियों की विशेषता यह भी है कि उनकी स्त्री पात्र जीवन के संघर्ष को सिर्फ झेलती हुई या सहती हुई नहीं दिखाई देती हैं, बल्कि वे स्त्रियाँ विद्रोह भी करती हैं। वे अपनी स्वतंत्रता समानता तथा अधिकार के प्रति सचेत हैं। नासिरा ने पढ़ी-लिखी स्त्रियों के जीवन की समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने मुस्लिम समाज में प्रचलित कुरीतियों व स्त्री विरोधी मान्यताओं को भी अपनी कहानियों में दिखाया है। 'खुदा की वापसी' कहानी में फरजाना एक पढ़ी-लिखी लड़की है। उसके विवाह में मेहर का रकम इतना अधिक तय कर दिया जाता है कि पति-पत्नी सम्बन्धों में दूरी पैदा हो जाती है। उसके कुछ रिश्तेदार मेहर की रकम को स्त्री सुरक्षा की दृष्टि से अधिक रखना बेहतर मानते हैं, जबकि उसका पति इतने अधिक रकम को दे पाने में समर्थ नहीं होता। कामकाजी महिलाओं की समस्या को 'तक्षशिला' नामक कहानी में देखा जा सकता है। इस कहानी में 'निगार' एक पत्रकार है। वह एक फैक्ट्री में महिलाओं के साथ हो रहे यौन शोषण पर स्टोरी लिखती है। फैक्ट्री का मालिक शोषण के सारे सबूत को मिटा देता है और उस पर गलत रिपोर्टिंग का मुकदमा कर देता है। अखबार का

[1] मेहरुन्निसा परवेज, गलत पुरुष, पृष्ठ 43

मुख्य संपादक भी इस खबर पर अपना मुँह बंद कर लेता है। इस कहानी में दो तरह की समस्याएँ हैं- एक तो महिला पत्रकार के जोखिम भरे जीवन को दिखाया गया है, दूसरे फैक्ट्री में काम करने वाली अनपढ़ स्त्रियों के शोषण को। नासिरा ने दिखाया है कि वर्तमान में किस प्रकार स्त्री के शोषण के तंत्र बदल गए हैं। स्त्रियाँ पहले जमीदारों के द्वारा शोषित होती थी और अब पूँजीवादी दौर में फैक्ट्रियों में भी उनका शोषण जारी है। नासिरा स्त्रियों के स्वावलंबन पर जोर देती हैं। वर्तमान स्त्रियों के जीवन संघर्ष के बारे में वे लिखती हैं-"औरत खुले आसमान के नीचे अपनी पहचान बनाने में व्यस्त है। यह संघर्ष बहुत सुंदर है। जैसे इस तस्वीर का वातावरण रंग और आसमान। मगर उस संघर्षरत औरत के नीचे अभी सख्त जमीन नहीं है। जिस पर वह विश्वास के साथ खड़ी हो सके, जैसे इस इमारत के खंडहर के पास छत नहीं है। आज की औरत के पास न छत है न जमीन।"[1]

नासिरा ने मुस्लिम समाज में प्रचलित कुरीतियों पर भी प्रहार किया है। 'चार बहने शीश महल' कहानी में पुत्र की अभिलाषा के कारण शरीफ की माँ उसे दूसरा विवाह करने के लिए कहती है। मुस्लिम समाज में दूसरे विवाह को मान्यता प्रदान की गयी है और बहुत से लोग ऐसी परिस्थितियों में दूसरा विवाह करते भी हैं। कहानी में शरीफ अपनी माँ की दकियानूसी सोच को नकारता है। नासिरा ने दूसरे विवाह के सम्बन्ध में इस्लाम धर्म के कायदे-कानून को भी इस कहानी में स्पष्ट किया है, कि बिना किसी वाजिब कारण के तथा अपनी पत्नी की रजामंदी लिए पुरुष को दूसरा विवाह करने की इजाजत इस्लाम में नहीं है। नासिरा ने उच्चवर्गीय मुस्लिम समाज के स्त्रियों की दुर्दशा का भी चित्रण अपनी कहानियों में किया है। 'ताबूत' कहानी में नासिरा शर्मा दिखाती हैं कि सैयद मुसलमानों के यहाँ लड़कियों का विवाह करते समय लड़के की नौकरी या पढ़ाई पर ध्यान न देकर, उसके हड्डी और खानदान यानी रक्तशुद्धता पर बल दिया जाता है। रक्तशुद्धता के कारण बेमेल विवाह का प्रचलन सैयदों में अधिक होता है। सैयद मुसलमानों की स्त्रियों के जीवन की दुर्दशा पर व्यंग्यपूर्ण ढंग से वे लिखती हैं-"तब तक वे जियेंगी, नौहा पढ़ेंगी, जब तक रिकॉर्ड घिसकर टूट न जाए, वह अपना फर्ज निबाहती जाएँगी.... और फिर ठहरी सैदानी, स्कूल में पढ़ने जाए न घर से कदम निकाले। ऐसे करम करेंगी तो बाबा की नाक नहीं कट जाएगी ? उनका काम तो सिर्फ गुजरी हस्तियों को बार-बार जिंदा करके आँसू बहाना है यही आँसू उनकी पवित्रता की निशानी है। यही

[1] नासिरा शर्मा, सबीना के चालीस चोर, पृष्ठ 126

जीवन की उपलब्धि है।''[1] इसी प्रकार नासिरा ने 'खुशबू के रंग' कहानी में स्त्रियों की स्वतंत्रता, समानता व अधिकार की बात की है।

असगर वजाहत ने भी मुस्लिम समाज की स्त्रियों की स्थिति को अपनी कहानियों में दिखाया है। उनकी अधिकतर कहानियाँ सत्ता, राजनीति, सांप्रदायिक दंगे आदि पर केंद्रित है। दंगों में महिलाओं के साथ होने वाले दुर्व्यवहार, शोषण, बलात्कार व हत्या को उन्होंने अपनी कहानी 'मुश्किल काम' में दिखाया है।

इसी प्रकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ने भी अपनी कहानियों में निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज की स्त्रियों का चित्रण किया है। ये स्त्रियाँ अपने जीवन से संघर्ष करती हुई, समाज के बंधनों में जकड़ी हुई दिखाई देती हैं। 'कागज के कारतूस' कहानी में देश-दुनिया की राजनीति करने वाला व मुसलमानों का नेता कहलाने वाले वसीउल्ला खां को अपने घर की स्त्रियों की दुर्दशा नहीं दिखाई देती है। उसके राजनीति में सक्रिय होने के बाद बेटियों की पढ़ाई छूट जाती है। वें कागज के कारतूस बनाने लगती है और पूरे परिवार का खर्च वहन करती हैं। अब्दुल्ल बिस्मिल्लाह लिखते हैं-''नजमा और फातमा के हाथ चल रहे हैं। अविरल-अविराम गति से वह काग पीट रही हैं। काग नहीं, अपना वर्तमान पीट रही हैं। वर्तमान पीटकर शायद भविष्य बना रही हैं। अम्मा ने साफ कर दिया है कि अपने-अपने दहेज का इंतजाम अभी से करती रहो। और वे काट-कपटकर छोटा-मोटा सामान भी बनाती हैं।.......और इस प्रकार ये दो लड़कियाँ अपनी और अपने घर वालों की जिंदगी को भी कोई अर्थ देने के लिए खुद को बुरी तरह खर्च कर रही हैं।''[2] मुस्लिम समाज में तलाक की समस्या आम है। तीन तलाक और हलाला को केंद्र में रखकर अब्दुल बिस्मिल्लाह ने 'तलाक के बाद' नामक कहानी लिखी है। मुस्लिम समाज की ऐसी तमाम विसंगतियों, रीति-रिवाजों, परंपराओं का वर्णन हिन्दी कहानियों में देखा जा सकता है जिसके कारण मुस्लिम समाज की स्त्रियाँ पिछड़ेपन की शिकार हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी रचनाकारों ने मुस्लिम समाज को अधिक महत्व नहीं दिया, किंतु बाद के रचनाकारों ने एक बड़े फलक पर मुसलमानों के रहन-सहन, उनकी समस्याओ व चुनौतियों को चित्रित किया है। हिन्दी कथा साहित्य में मुस्लिम समाज की उपस्थिति निरंतर बढ़ती जा रही है। वर्तमान में विभिन्न रचनाकारों

---

[1] नासिरा शर्मा पत्थर गली, पृष्ठ 94

[2] अब्दुल बिस्मिल्लाह, ताकि सनद रहे, पृष्ठ 45

द्वारा मुस्लिम समाज को व्यापक रूप में हिन्दी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। मुसलमानों के भीतर फैली जातिगत असमानता तथा धार्मिक मतभेदों को साहित्यकारों ने बखूबी चित्रित किया है। मुस्लिम समाज का चित्रण राही मासूम रजा, असगर वजाहत तथा नासिरा शर्मा के यहाँ देखा जा सकता है। वहीं निम्नवर्ग की समस्याओं को गुलशेर खां शानी, अब्दुल बिस्मिल्लाह, भगवानदास मोरवाल ने अधिक विस्तार से प्रस्तुत किया है। मुस्लिम स्त्रियों की समस्याओं तथा अधिकारों पर नासिरा शर्मा तथा मेहरुन्निसा परवेज द्वारा अधिक मार्मिकता के साथ व्यक्त किया गया है। जमीदारी प्रथा के समाप्त होने के बाद उत्पन्न आर्थिक संकट को राही तथा असगर वजाहत ने अपनी रचनाओं में जगह दी है।

मुसलमानों के साथ समाज में किए जाने वाले भेदभावपूर्ण व्यवहार को इन सभी रचनाकारों ने चित्रित किया है। देश में बढ़ती सांप्रदायिकता भी इन रचनाकारों के लेखन में मुख्य चिंता के रूप में उभर कर सामने आती है। मुसलमानों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा आदि को भी सभी रचनाकारों ने बखूबी चित्रित किया है। धार्मिक मान्यताओं, अंधविश्वासों, रूढ़ियों आदि को भी हिन्दी साहित्य में विस्तार से जगह मिली है। विवाह और तलाक की समस्या को भी हिन्दी कथा साहित्य में प्रमुखता से उठाया गया है। मुस्लिम महिलाओं के पिछड़ेपन तथा उनके अधिकारों के प्रति भी लेखकों ने चिंता व्यक्त की है। मेहरुन्निसा परवेज ने यौन संबंधों पर खुलकर लिखा है। इन सभी रचनाकारों के साहित्य का अध्ययन करने पर हमें मुस्लिम समाज व संस्कृति को विस्तारपूर्वक समझने में मदद मिलती है।

तृतीय अध्याय

मंजूर एहतेशाम : जीवन और रचनाकर्म

तृतीय अध्याय

मंजूर एहतेशाम : जीवन और रचनाकर्म

"साहित्यिक कल्पना एक खास ढंग से किसी समाज की छानबीन करके उसके विभिन्न पहलुओं के बारे में नवीन जानकारी प्रदान कर सकती है, सुबोध परिकल्पनाएँ दे सकती है और उस समाज का रहस्य खोलने वाली व्यवस्थाओं या पद्धतियों की ओर संकेत कर सकती है।"[1] 'रिचर्ड हॉगर्ट' द्वारा साहित्यिक कल्पना के संदर्भ में की गयी उक्त टिप्पणी साहित्यकार के दायित्व और उसकी सामाजिक भूमिका की ओर संकेत करती है। संवेदनशील साहित्यकार ही अपने समय और समाज की गंभीर समस्याओं पर सुलझी हुई दृष्टि से विचार कर सकता है। साथ ही वह उन तमाम मुद्दों पर, जो किसी भी समाज के लिए विघटनकारी हो सकते हैं, उनकी ओर संकेत करते हुए भविष्य के प्रति सचेत करता है। साहित्य का बुनियादी दायित्व किसी भी समाज की विषमताओं का उन्मूलन होता है। इस दिशा में विभिन्न सामाजिक आंदोलन या परिवर्तन साहित्यकार को धरातल प्रदान करते हैं, उदाहरण के तौर पर चाहे वह यूरोप का रेनेसाँ काल हो या फिर भारत का पुनर्जागरण काल। हम देख सकते हैं कि दोनों ही परिस्थितियों ने अपने युग के साहित्य को विषयगत एवं संरचनागत रूपों में बहुत अधिक प्रभावित किया है।

भारतीय इतिहास में सन् 1857 की क्रांति एक अभूतपूर्व घटना रही है। इसका स्पष्ट प्रभाव पूरे भारतेंदु काल में देखा जा सकता है। विषयवस्तु, विचारधारा, भाषा, विधा आदि अनेक स्तरों पर जितना व्यापक परिवर्तन भारतेंदु युग में हुआ, उतना हिन्दी साहित्य के एक हजार वर्षों के इतिहास में कभी नहीं देखा गया। भारतेंदु काल में ही हिन्दी कथा-साहित्य का जन्म हुआ। समाज से साहित्य का सीधा सरोकार भी इसी युग की देन रही। इस संबंध को आगे के रचनाकारों ने और प्रगाढ़ बनाया। प्रेमचंद अपने कथा-साहित्य के माध्यम से इस दिशा में प्रयासरत रहे। उन्होंने अपनी साहित्यिक कल्पना के माध्यम से समाज के रहस्यों को खोलने के साथ ही उन व्यवस्थाओं और

---

[1] सं० गरिमा श्रीवास्तव, उपन्यास का समाजशास्त्र, पृ० 4

पद्धतियों की ओर भी संकेत किया, जिसकी जरूरत साहित्यिक कल्पना के माध्यम से 'रिचर्ड हागर्ट' महसूस करते हैं।

3.1. पहचान और अभिव्यक्ति-

भारत में स्वतंत्रता के साथ ही विभाजन के दंश ने सबको विचलित किया। सन् 1947 का विभाजन भारतीय इतिहास के लिए एक अविस्मरणीय दुर्घटना बनीं। इससे पहले भारतीय इतिहास में ऐसा कहीं नहीं दिखता, जहाँ धर्म को आधार बनाकर समाज का विभाजन हुआ हो। इस विनाशकारी विभाजन ने न सिर्फ देश को दो हिस्सों में बाँटा बल्कि पूरे सामाजिक ढांचे पर अपना नकारात्मक प्रभाव डाला। देश में एक तरफ लोकतंत्र की स्थापना हुई तो दूसरी तरफ एक विशेष किस्म की सांप्रदायिकता पूरे भारत में फैल गई। नेताओं की तानाशाही तथा भ्रष्ट शासन-प्रणाली के कारण 70 का दशक आते-आते लोगों का आजादी से मोहभंग होने लगा। सन् 1977 में इंदिरा गाँधी द्वारा आपातकाल का लगाया जाना तथा सन् 1984 के सिक्ख दंगे ने निरंकुश लोकतांत्रिक पद्धति को जन्म दिया। 80 के दशक में विभिन्न वाह्य तथा आंतरिक परिवर्तनों के कारण भारतीय समाज में व्यापक बदलाव आया। इस सन्दर्भ में राहुल मिश्र लिखते हैं-"राष्ट्र प्रेम, उदात्त राजनीतिक सिद्धांत, नैतिकता और समर्पण बीते समय की बातें हो गयी। सामाजिक ताने-बाने भी नष्ट-भ्रष्ट होने लगे और जाति धर्म के आधार पर हुए विभाजन से सबक लेने के बजाय सांप्रदायिक दंगे भी देश की एकता और अखंडता के लिए खतरा पैदा करने लगे। सरकारी आंकड़ों के अनुसार वर्ष 1969 ई० और 1970 ई० में विगत बीस वर्षों के अंतराल में सबसे अधिक दंगे हुए।"[1] स्वतंत्रता के पश्चात् पूरे भारतीय परिवेश में हो रहे इस व्यापक परिवर्तन के साथ-साथ भारतीय साहित्य में भी विभिन्न स्तरों पर इस परिवर्तन को महसूस किया जा सकता है।

सन् 1936 के पश्चात् हिन्दी कथा-साहित्य विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित हुआ। उपन्यास के क्षेत्र में ऐतिहासिक, आदर्शवाद,प्रगतिवाद, यथार्थवाद, मनोविश्लेषणवाद, आंचलिक, व्यक्तिवाद आदि कई स्तरों पर परिवर्तन हुए। वहीं कहानी के क्षेत्र में नई कहानी, सक्रिय कहानी,सहज कहानी, समानांतर कहानी, अकहानी आदि

---

[1] राहुल मिश्र, आठवें दशक के बाद हिन्दी कथा साहित्य, पृ० 45

रूप में इसे देखा जा सकता है। इस सन्दर्भ में सुवास कुमार लिखते हैं- “आजादी के आसपास की, और बाद में चलकर भी, कथाओं में एक खास किस्म की बौद्धिकता का समावेश हुआ। विभाजन का दर्द झेलता हुआ आजाद देश जिस जटिल और उलझे हुए परिवेश में खुद को पा रहा था उसमें शिक्षित मध्यवर्ग, औद्योगीकरण, शहरीकरण, गरीबी और बेकारी, टूटता-बिखरता गाँव, परिवार और समाज, स्वातंत्र्योत्तर आकांक्षाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ और स्वप्न भंग, आधुनिकतावादी फैशन, चतुर्दिक अवमूल्यन, सांप्रदायिकता आदि- जैसी अनेक अच्छी बुरी बातें और समस्याएँ थीं जिनकी अभिव्यक्ति हिन्दी कथाकृतियों में खूब की गयी। बदले और बदलते हुए परिवेश में नए भावबोध ने कथाकारों को नए शिल्प की खोज की दिशा में भी प्रेरित किया।”[1] ऐसी तमाम समस्याओं के साथ-साथ हाशिये के समाज पर भी साहित्यकारों की दृष्टि गई। यह वर्ग स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए जद्दोजहद कर रहा था। 80 का दशक आते-आते हिन्दी-साहित्य में दलित, स्त्री, अल्पसंख्यक और आदिवासी समाज से जुड़ी समस्याएँ साहित्य में प्रमुखता से उठायी जाने लगी। समाज में बढ़ती महँगाई, बेरोजगारी, जनसंख्या, अशिक्षा, गरीबी तथा सरकारी तंत्र की निरंकुशता ने समाज में असंतोष, असुरक्षा तथा अनेक विसंगतियों को जन्म दिया। राजनेताओं द्वारा इन सामाजिक समस्याओं को दूर करने की बजाय धर्म, जाति, वर्ग और क्षेत्र को आधार बनाकर जनता का ध्रुवीकरण करने पर अधिक जोर दिया गया। अपने फायदे के लिए अल्पसंख्यक बनाम बहुसंख्यक की राजनीति को अपनाया गया। विभिन्न धार्मिक संगठनों का निर्माण, नेताओं के आक्रामक बयान तथा दंगों ने मुस्लिम समाज के भीतर असुरक्षा की भावना को जन्म दिया।

स्वतंत्रता के पश्चात् सांप्रदायिकता तथा दंगों की निरंतरता ने लेखकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। हिन्दी साहित्यकारों द्वारा भी इस दिशा में विशेष रूचि दिखाई गयी। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास तथा कहानियों में कहीं-कहीं मुस्लिम समाज की इस पीड़ा का चित्रण किया है। लेकिन बाद के साहित्यकारों के यहाँ मुस्लिम समाज लगभग अनुपस्थित ही रहा है। ‘झूठा-सच’ (यशपाल), ‘कठपुतली’ (देवेंद्र सत्यार्थी), ‘लौटे हुए मुसाफिर’ (कमलेश्वर), ‘तमस’ (भीष्म साहनी) आदि रचनाओं द्वारा पाठकों के भीतर नया बोध पैदा किया। इन उपन्यासों में भारत विभाजन के दौरान हुए भीषण नरसंहार को बहुत

1. सुवास कुमार, गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम, पृ० 58

मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है, किंतु भारत के मुसलमानों की स्थिति या मनोदशा को लेकर कोई गंभीर प्रतिक्रिया दिखाई नहीं देती। एक लंबे अंतराल के बाद 70 के दशक में हिन्दी में दो मुस्लिम रचनाकार 'राही मासूम रजा' और "गुलशेर खां शानी" का आगमन होता है। इन दोनों रचनाकारों ने सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य में मुस्लिम समाज को सम्पूर्ण रूप में हिन्दी पाठकों के बीच रखा। इसके बाद बदीउज्जमाँ, नासिरा शर्मा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, असगर वजाहत, मेहरुन्निसा परवेज आदि ने हिन्दी लेखकों द्वारा लगभग उपेक्षित भारतीय मुसलमानों के रहन-सहन, स्थिति, स्वरूप, समस्याओं आदि को सशक्त तरीके से हिन्दी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया। इसी क्रम में मंजूर एहतेशाम ने भी अपनी खास शिल्प और संवेदना के साथ हिन्दी कथा साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज की है।

3 अप्रैल सन् 1948 में भोपाल में जन्मे मंज़ूर एहतेशाम का पारिवारिक तथा शैक्षणिक स्तर पर हिन्दी साहित्य से सीधे-सीधे कोई जुड़ाव नहीं रहा है। इनके पिता धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होंने इलाहबाद से मौलवी, आलिम, फाजिल की शिक्षा ग्रहण की थी और वे लकड़ी का कारोबार करते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके कारोबार को मंज़ूर और उनके भाइयों ने संभाला। मंज़ूर मूलतः विज्ञान के विद्यार्थी रहे हैं। भोपाल से हायर सेकेंडरी पास करने के पश्चात् वे इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करने के लिए सन् 1964 में "अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी" चले गये। किन्तु इंजीनियरिंग में मन न लगने के कारण एक साल बाद ही वापस भोपाल चले आये। वापस आकर उन्होंने भोपाल में ही इंजीनियरिंग के लिए फिर से एडमिशन लिया, किंतु अंतिम वर्ष की परीक्षा न देकर वे उसे भी अधूरा ही छोड़ देते हैं। वे बताते हैं कि विज्ञान और गणित विषय में उनकी कभी रूचि ही नहीं रही। मंज़ूर की पत्नी 'सरवर' काफी पढ़ी-लिखी हैं। उन्होंने एम०एस०सी० व बी०एड० किया है। पढ़ाई छोड़ने के बाद मंज़ूर ने कुछ दिन तक भोपाल में ही एक मेडिकल स्टोर पर करीब साढ़े चार वर्षों तक काम किया। इसी दौरान इनकी मुलाकात अपने एक मित्र के जरिए सत्येन कुमार से हुई, जो भोपाल के एक मेडिकल कॉलेज में पढ़ाते थे और साथ ही लेखन-कार्य भी करते थे। अपनी पहली ही मुलाकात में करीब डेढ़-दो घंटे हेमिंग्वे पर सत्येन कुमार से इनकी बातचीत हुई। हेमिंग्वे मंज़ूर और सत्येन दोनों के प्रिय लेखक हैं। सत्येन के जरिए ही मंज़ूर की मुलाकात "गुलशेर खां शानी" से हुई और इस तरह इनका उठना-बैठना दुष्यंत कुमार, इजलाल मजीद, धनंजय वर्मा आदि के साथ होने लगा। अपने साहित्यकार मित्र 'सत्येन कुमार' की प्रेरणा से मंज़ूर ने अपनी पहली

कहानी सन् 1973 में 'रमजान में मौत' लिखा। उनके लेखकीय जीवन की यह शुरुआत बहुत ही रोचक ढंग से हुई। इस सम्बन्ध में वे बताते हैं-"हम एक जगह जा रहे थे, ईद के दिन मिलने और रास्ते में कहीं एक जनाजा जा रहा था। पता चला वो साहब पहचान के थे। मैंने सत्येन से कहा- ऐसे-ऐसे थे, इस तरह के आदमी थे......तुम कहानी लिख सकते हो। लिखो। दो दिन बाद, बहुत तेज लिख कर वहाँ गया। सत्येन ने कहा- हो गया। हमने कहा- हाँ। वो तकनीक वकनीक जो बनायी थी वैसा कुछ नहीं। अपने हिसाब से मैंने लिखा। वो बहुत खुश हुआ।....."रमजान में मौत" नाम रखा कहानी का दुष्यंत कुमार ने। सत्येन ने कहा- भिजवा दें छपने के लिए। मैंने कहा- कौन छापेगा यार। 'सारिका' में वह कहानी छपी, नवलेखन अंक सन् तिहत्तर में, लम्बी कहानी वाले कॉलम में। उसको भेजने वाले सत्येन थे।"[1]

मंजूर में विद्यार्थी जीवन से ही लिखने के प्रति रुझान रहा है। वे इंग्लिश मिडियम स्कूल में पढ़ते थे। अंग्रेजी विषय में उनका नम्बर अधिक आता था। शुरूआती लेखन में उनकी प्रेरणा उनकी हिन्दी शिक्षिका 'धन्वन्तरी मिश्रा' बनीं। वह कक्षा में कुछ-कुछ लिखने को देती थीं और उसे क्लास में बच्चों को सुनवाती थीं। इसके बाद कालेज में उन्हें एक द्विभाषी पत्रिका का सम्पादन करने का मौका मिला। मंज़ूर को डायरी और चिट्ठी लिखने का शौक रहा है। आरम्भ में वे अपनी छोटी-छोटी बातें भी डायरी में लिखा करते थे। यहाँ तक कि दुकान से मंजन भी खरीदकर लाते तो उसे भी डायरी में लिख देते थे। कालेज छुटने के बाद भी उनका लिखना-पढ़ना बदस्तूर जारी रहा। उस दौरान कुछ अप्रकाशित चीजें लिखकर काफी-हॉउस में बैठकर दोस्तों को सुनाया करते थे। वे कहते हैं कि कभी सोचा नहीं था कि लेखक बनूँगा। लेखक बनना बहुत बड़ी बात लगती थी।

मंज़ूर एहतेशाम अपने लेखन का श्रेय अपने मित्रों को देते हैं। भोपाल के अपने साहित्यकार मित्र-मण्डली के बीच उनका साहित्यिक व्यक्तित्त्व धीरे-धीरे निखरता चला गया। मेडिकल स्टोर पर काम करते वक्त जो थोड़ा समय उन्हें बीच-बीच में मिला करता, उसमें वे कहानियाँ लिखा करते। चार-पाँच कहानियाँ उन्होंने वहीं लिखी। एक कहानी लिखते-लिखते उन्हें लगा कि वह कहानी नहीं उपन्यास होगा। उसी दौरान राजेन्द्र यादव भोपाल आये हुए थे। मंज़ूर की उनसे भेंट हुई। बातचीत के दौरान राजेन्द्र यादव ने कहा

---

[1] सं० विनोद तिवारी, पक्षधर (त्रैमासिक) पत्रिका- वर्ष : 04, अंक : 09, पृ० 27

कि इसे मुझे भेज देना। राजेन्द्र यादव ने उसे दो महीने के भीतर छाप दिया और इस तरह मंजूर का पहला उपन्यास 'कुछ दिन और' सन् 1976 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास पति-पत्नी सम्बन्धों पर आधारित है।

हिन्दी कथा साहित्य में मंज़ूर को ख्यातिप्राप्त लेखक के रूप में प्रतिष्ठा सन् 1986 में प्रकाशित उनके महत्वपूर्ण उपन्यास 'सूखा बरगद' के माध्यम से मिली। उनका 'सूखा बरगद' उपन्यास पाठको, साहित्यकारों तथा बुद्धिजीवियों के बीच काफी लोकप्रिय हुआ। बहुत कम समय में ही इस उपन्यास का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में किया गया। इस उपन्यास में आजादी के बाद से लेकर 80 के दशक तक के भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों तथा दंगों के बीच मुस्लिम समाज के भीतर उत्पन्न असुरक्षा तथा बदलती हुई मानसिकता को परत-दर-परत खोलने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त इस उपन्यास में उन तमाम पहलुओं पर गंभीरता से विचार किया गया है, जिनसे आज का मध्यवर्गीय मुसलमान जूझ रहा है। भाषा एवं सांस्कृतिक अस्मिता का प्रश्न, असुरक्षा की भावना, अंधविश्वास, शिक्षा एवं रोजगार की समस्या, राजनीतिक एवं सामाजिक उपेक्षा, भेदभाव, परंपरा और आधुनिकता, धर्म तथा विज्ञान के बीच होने वाले संघर्ष आदि समस्याओं को केंद्र बनाकर यह उपन्यास लिखा गया है।

मंजूर एहतेशाम के अब तक कुल छः उपन्यास और तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यासों में 'कुछ दिन और' (1976), 'सूखा बरगद' (1986), 'दास्तान-ए-लापता' (1995), 'पहर ढलते' (2004), 'बशारत मंजिल' (2006) तथा 'मदरसा' (2011) प्रकाशित हो चुके हैं। इसी प्रकार तीन कहानी-संग्रह 'रमजान में मौत' (1982), 'तसबीह' (1998) एवं 'तमाशा तथा अन्य कहानियाँ' (2001) प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका एक नाटक 'सत्येन कुमार' के सह-लेखन में 'एक था बादशाह' (1980) नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके अलावा एक आलोचनात्मक पुस्तक 'कि आती है उर्दू जुबां आते-आते' मंज़ूर एहतेशाम और इजलाल मजीद के संपादन में दो भागों में प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक समकालीन उर्दू साहित्य पर केन्द्रित है। फ़िलहाल वे एक उपन्यास लिख रहे हैं, जो पाकिस्तान में बसे उनके पुरखों पर आधारित है। इस उपन्यास में पूरे फ्रंटियर स्टेट यानी मानशेरा, हसन अब्दाल, एटमाबाद आदि का जिक्र है क्योंकि इनके पुरखे यहीं से

आकर भोपाल बसे थे। इनके परदादा के एक भाई ने 1857 की क्रांति में भी हिस्सा लिया था।

मंज़ूर के 'सूखा बरगद' उपन्यास का अनुवाद अंग्रेजी में 'A Dying Banyan' नाम से 'कुलदीप सिंह' ने किया है। इसके अलावा 'दास्ताने लापता' उपन्यास का अनुवाद अंग्रेजी में 'The Tale of the Missing Man' नाम से 'जॉसन ग्रुनेब्युम' (Jason Grunebaum) और 'अलरिके स्टार्क'(Ulrike Stark) ने किया है। इस उपन्यास की प्रशंसा करते हुए न्यूयार्क मैगज़ीन ने 10 जून 2007 के अपने अंक में इसे संसार का एक उत्कृष्ट उपन्यास बताते हुए कहा है कि ऐसा उपन्यास अंग्रेजी में उपलब्ध नहीं है। इस उपन्यास के अनुवादक 'जॉसन ग्रुनेब्युम' 'यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो' में हिन्दी के प्रवक्ता हैं। इस उपन्यास के सन्दर्भ में वे में लिखते हैं-"एक बीमार मुस्लिम व्यक्ति की यह कहानी, जिसकी बीमारी अनिर्दिष्ट है और प्रतीत होता है कि निदान योग्य नहीं है, हिंदी साहित्य के लिए एक उत्तर-आधुनिकतावादी चरण है, जहाँ सामाजिक यथार्थवाद लंबे समय से अपना दबदबा बनाये हुए है।"[1]

मंजूर के सभी उपन्यास एवं कहानियाँ अपने आप में विशिष्ट हैं। उनमे ख़ास किस्म की बौद्धिकता का समावेश होता है। उत्तर-आधुनिकता और भूमंडलीकरण का प्रभाव, भारतीय समाज में बदलते नैतिक व मानवीय मूल्य, सांस्कृतिक अस्मिता के प्रश्न तथा धर्म व राजनीति जैसे संवेदनशील पहलुओं पर भी वे अपनी बेबाक राय रखते हैं। हिन्दी में उनके पसंदीदा लेखकों में निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती, फणीश्वरनाथ रेणु, श्रीलाल शुक्ल, विनोद कुमार शुक्ल, उदय प्रकाश आदि हैं। आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में मंजूर को अलका सरावगी का उपन्यास 'कलिकथा वाया बाईपास', 'ब्रेक के बाद', गीतांजलि श्री का 'माई', 'हमारा शहर उस बरस', 'तिरोहित', दूधनाथ का 'आखिरी कलाम', मनोहरश्याम जोशी का 'कुरुकुरु स्वाहा' आदि उपन्यास विशेष रूप से पसंद हैं।

---

[1] "This story of a sick Muslim man, whose disease is both unspecified and seemingly undiagnos able is quite a postmodernist feat for Hindi literature, where social realism has been the dominant mode for quite some time." manjoorehtesham.revolvy.com

मंज़ूर को हिन्दी साहित्य की सेवा करते हुए कई महत्त्वपूर्ण पुरस्कार तथा सम्मान से नवाज़ा जा चुका है। उन्हें ‘सूखा बरगद’ उपन्यास पर ‘श्रीकांत वर्मा स्मृति सम्मान’ और ‘भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता’ का पुरस्कार, ‘दास्तान-ए-लापता’ उपन्यास पर ‘वीर सिंह देव पुरस्कार’, ‘तसबीह’ कथा-संग्रह पर ‘वागीश्वरी पुरस्कार’ तथा 1995 में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा समग्र लेखन पर ‘पहल सम्मान’ प्रदान किया गया है। इसके अतिरिक्त 2003 में भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय सम्मान ‘पद्मश्री’ से अलंकृत किया गया है। वर्तमान में ‘’निराला सृजन पीठ भोपाल’ के अध्यक्ष के रूप में अपनी सेवाएँ हिन्दी जगत को दे रहे हैं।

3.2. रचनाकार का क्रमिक वैचारिक विकास-

साहित्य में चिंतन तथा विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम गद्य विधा को बताया गया है। रामचंद्र तिवारी के अनुसार- “चिंतन, जटिल समस्याओं के बौद्धिक समाधान, तर्कों की श्रृंखला, विचारों के क्रम, नियमों की मर्यादा तथा सूक्ष्मता की सीमाओं में बँधकर मूर्त होता है। शब्द रूपों में संयम आ जाता है। वाक्य-रचना में अर्थ तत्वों की स्थिति-बोध के लिए सम्बन्ध तत्वों की परंपरा-विहित प्रणाली का अनुसरण किया जाता है। चिंतन की छंदमुक्त इस अभिव्यक्ति शैली को सामान्यतः गद्य कहा गया है।”[1] हिन्दी में गद्य विधाओं की शुरुआत 19वीं शताब्दी में हुई। इस दौर में भारत ब्रिटिश औपनिवेशिक ताकतों के गिरफ्त में था। विदेशी पूँजीवाद चौतरफा शोषण कर रहा था, किन्तु अंग्रेजों द्वारा लायी गयी नई शैक्षणिक एवं प्रशासनिक नीतियों ने सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सकारात्मक भूमिका निभाई। 1857 की क्रांति और औपनिवेशिक शोषण से समाज में राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई। बांग्ला नवजागरण के प्रभाव से हिन्दी साहित्य भी सामाजिक कुरीतियों के विरोध में खड़ा होने लगा। तत्कालीन समाज व्यवस्था पर चिंतन करने तथा उपनिवेशवाद के खिलाफ सामान्य जनता को जागरूक बनाने हेतु चिंतकों द्वारा एक सशक्त भाषा की आवश्यकता महसूस की गयी। जिसके परिणामस्वरूप हिंदी खड़ी बोली को विचार-विमर्श की भाषा के रूप में चुना गया। नई भाषा के साथ-साथ नये विधाओं के जन्म ने हिंदी साहित्य को और अधिक समृद्ध किया। भारतेंदु युग में हिन्दी साहित्य ने न सिर्फ गद्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया

[1] रामचंद्र तिवारी, हिन्दी का गद्य-साहित्य, पृ०3

बल्कि उसमें विविध विधाओं जैसे- कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, जीवनी, यात्रावृत्त आदि में लेखन की सशक्त परम्परा भी शुरु हुई। इस युग में हिन्दी साहित्य नें अपने नये स्वरूप के साथ-साथ नयी भाषा-शैली तथा वैचारिकी को भी अपनाया। इस युग में हिन्दी साहित्य पहली बार सामान्य जनता के सुख-दुख से जुड़ता है। विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा, हिन्दी भाषा का विकास, ज्ञान-विज्ञान तथा उद्योग धंधों का विकास, बाल-विवाह निषेध, अंधविश्वास, राष्ट्रीय चेतना तथा सामाजिक पतन के कारण, अंग्रेजी शासन का विरोध आदि इस युग के साहित्यिक चिंतन के प्रमुख बिन्दु रहे।

द्विवेदी युग साहित्यिक दृष्टि से सुधार तथा नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का युग माना जाता है। वैचारिक दृष्टि से इस युग के अधिकांश लेखकों पर गाँधी जी का प्रभाव देखा जा सकता है। सत्य, अहिंसा, त्याग, परोपकार, मानवीय मूल्यों की स्थापना, आदर्शवादी मूल्यों की तरफ झुकाव, राष्ट्रीय अस्मिता के प्रश्न, स्वाधीनता प्राप्ति की भावना इस युग के लेखन के प्रमुख वैचारिक आधार थे। छायावाद युग में कविता पर अंग्रेजी के रोमांटिसिज्म का प्रभाव रहा, जबकि कथा-साहित्य सामाजिक-यथार्थवाद के अधिक निकट दिखाई देता है। प्रेमचंद ने हिन्दी कथा-साहित्य को व्यापक स्तर पर समाज तथा मानवीय चरित्रों के निकट पहुँचाने का काम किया। साहित्य के उद्देश्य को रेखांकित करते हुए प्रेमचंद कहते हैं-"जिस साहित्य से हमारी सुरूचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य प्रेम न जाग्रत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करें, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं।"[1] प्रेमचंद अपने शुरूआती लेखन में गाँधीवाद से प्रभावित रहे हैं, लेकिन बाद में गाँधी के प्रति उनका मोहभंग साफ-साफ दिखाई देता है। सन् 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना ने हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। विभिन्न साहित्यकारों ने मार्क्सवादी चिंतन को अपनाया। उसकी एक लंबी परंपरा आज भी हिन्दी में मौजूद है। जैनेन्द्र ने कथा-साहित्य में मनोवैज्ञानिक चिंतन को आधार बनाकर हिन्दी में एक नई विचारधारा की शुरुआत की। इलाचंद्र जोशी ने मनोविश्लेषणवाद को अपनाया तो वहीं अज्ञेय के व्यक्तिवादी चिंतन ने रूढ़ियों को अस्वीकार करते हुए प्रखर बौद्धिकता को अपनाया। इन लेखकों पर फ्रायड, एडलर, युंग की विचारधाराओं का प्रभाव रहा है।

[1] सं० नंदकिशोर नवल, हिन्दी साहित्यशास्त्र, पृ० 24

हिन्दी के कई साहित्यकारों ने प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए सामाजिक यथार्थ को साहित्य के केंद्र में बनाए रखा। रेणु, नागार्जुन, मार्कंडेय, काशिकेय, शैलेश मटियानी जैसे आंचलिक लेखकों ने प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा को और अधिक मजबूत तथा विश्वसनीय बनाया। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी कथा-साहित्य में आधुनिकताबोध का व्यापक असर दिखाई देता है। कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, उषा प्रियंवदा, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती आदि ने आधुनिकता बोध को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी कथा-साहित्य में व्यापक विस्तार दिखाई देता है। विविध सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों के साथ-साथ साहित्य के विषयवस्तु में भी परिवर्तन हुआ। आधुनिक हिन्दी साहित्य के सम्बन्ध में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं-"वैसे तो साहित्य की रचना और उसके बोध की प्रक्रिया कभी भी अपने सामाजिक संदर्भ से अप्रभावित नहीं रही है, लेकिन आधुनिक युग में साहित्य पर सामाजिक संदर्भ और राजनीतिक परिवेश का जितना व्यापक और निर्णायक प्रभाव पड़ रहा है उतना पहले कभी नहीं था। आज के जमाने में साहित्य की दुनिया केवल सौंदर्य और प्रेम की एकांत साधना के सहारे नहीं चलती है। वह समाज के आर्थिक ढांचे, राजनीतिक परिवेश, सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक संस्थाओं से बहुत दूर तक प्रभावित होती है।"[1] पूँजीवाद के विकास ने समाज को विभिन्न स्तर पर प्रभावित किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण यंत्रीकरण, अर्थतंत्र के बढ़ते दबाव तथा अस्तित्ववादी चिंतन ने समाज में अकेलापन, निराशा, दुःख, कुण्ठा, व्यर्थताबोध तथा विसंगतियों को जन्म दिया। आधुनिकता बोध की पृष्ठभूमि पर लिखी रचनाओं में इन समस्याओं पर व्यापक विचार-विमर्श देखने को मिलता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी साहित्य में काफी परिपक्वता दिखाई देती है। विचारधारा के स्तर पर सातवें-आठवें दशक में हिन्दी साहित्य में दलित-विमर्श और स्त्री-विमर्श ने एक सशक्त वैचारिकी के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। बीसवीं सदी के अंतिम चरण में उत्तर-आधुनिकता के प्रभावों की चर्चा होने लगी। भूमंडलीकरण ने सबको एक बड़े बाजार में लाकर खड़ा कर दिया। ऐसे में धर्म, दर्शन, विचारधारा, जीवन-मूल्य, इतिहास, संस्कृति और परंपरा आदि मूल्यों का क्षरण हुआ। साहित्य के क्षेत्र में देरिदा के 'विखंडनवाद' को उत्तर-आधुनिक विमर्श का केद्रीय तत्व माना जाता है। देरिदा के अनुसार साहित्यकार एक पाठ का निर्माण करता है। इस पाठ का कोई निश्चित

[1] मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ० x-xi

अर्थ नहीं होता। पाठक अपने अनुसार कोई भी अर्थ ग्रहण कर सकता है। हिन्दी में मनोहरश्याम जोशी, कृष्ण बलदेव वैद्य, सुरेंद्र वर्मा, उदय प्रकाश आदि लेखकों को उत्तर-आधुनिकता से जोड़कर देखा जाता है।

हम देख सकते हैं कि जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन की गति तेज होती गई। वैसे-वैसे साहित्य भी परिवर्तित होता गया। जिस दौर में सामाजिक परिवर्तन की गति तीव्र रही, उस दौर के साहित्य में भी उतना ही अधिक परिवर्तन हुआ। हिन्दी साहित्य में विचारधारा का समावेश भारतेंदु युग से प्रारंभ होता है और काल तथा परिस्थिति के अनुसार समय-समय पर परिवर्तित होता रहा है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् पूरे विश्व के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक ढांचे में परिवर्तन से साहित्य भी प्रभावित हुआ। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् नए तरह की सामाजिक, राजनीतिक स्थिति उत्पन्न हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में प्रत्येक वर्ग, धर्म, जाति तथा समुदाय को समानता और स्वतंत्रता जैसे मूलभूत संवैधानिक अधिकार दिए गये। लोकतान्त्रिक चुनाव प्रक्रिया के कारण लोगों में धीरे-धीरे अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी। समाज के पिछड़े तथा दमित वर्ग को मुख्य धारा में लाने के लिए शिक्षण-संस्थानों तथा सरकारी नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान किया गया। परिणामस्वरूप समाज का पिछड़ा वर्ग अपनी पहचान बनाने के लिए तेजी से उभरकर सामने आया। साहित्य में भी इसका असर देखने को मिलता है। जिसके परिणामस्वरूप दलित, स्त्री, आदिवासी तथा अल्पसंख्यक वर्ग की समस्याओं को साहित्य के केंद्र में देखा जा सकता है।

हिन्दी साहित्य में विभाजन तथा सांप्रदायिकता को आधार बनाकर कई रचनाएँ लिखी गयी किंतु विभाजन तथा सांप्रदायिकता का दंश झेल रहे मुस्लिम समाज की तरफ किसी भी साहित्यकार का ध्यान नहीं गया। छठे-सातवें दशक में स्वयं मुस्लिम रचनाकारों में 'राही' और 'शानी' ने हिन्दी में मुस्लिम जीवन को अपनी रचना का केंद्र बनाया। आठवें-नवें दशक में अब्दुल बिस्मिल्लाह, असगर वजाहत, नासिरा शर्मा, मेहरुन्निसा परवेज और मंजूर एहतेशाम जैसे रचनाकार इस परम्परा से जुड़ते हुए, मुस्लिम समाज के आतंरिक गतिरोधों, उनकी स्थिति, पिछड़ेपन आदि पर विस्तारपूर्वक लिखना प्रारम्भ करते है। इस प्रकार की समस्याओं को केंद्र में रखते हुए मंजूर एहतेशाम ने सन् 1973 में अपनी पहली कहानी 'रमजान में मौत' लिखी। इस कहानी में पति-पत्नी के बदलते सम्बन्ध, पारिवारिक तथा नैतिक मूल्यों के ह्रास, सामाजिक विसंगति

तथा अंतर्विरोध के साथ ही असंवेदनशीलता जैसी समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। वहीं अपने पहले उपन्यास 'कुछ दिन और' में मंज़ूर ने पति-पत्नी संबंधों को आधार बनाया है। इसमें पारिवारिक विघटन की समस्या पर भी गहराई से विचार किया गया है। इस उपन्यास में एक शहरी मध्यवर्गीय हिंदू परिवार की कहानी है। उपन्यास का नायक 'राजू' एक असफल तथा निकम्मा व्यक्ति है। वह अपनी पत्नी और एक बेटे का भरण-पोषण करने में भी अक्षम है। दूसरे बच्चे का खर्च न उठाना पड़े इसके लिए वह अपनी पत्नी के गर्भ में पल रहे बच्चे को मारने के लिए दवा खिला देता है, जिससे उसके गर्भ में छाले पड़ जाते हैं। यही नहीं बल्कि वह अपनी पत्नी के चरित्र पर भी शक करता है। अपनी झूठी शान और ऐठ बनाए रखने के लिए अपनी पत्नी की इज्जत भी वह दांव पर लगा देता है। तमाम अत्याचारों को सहती हुई उसकी पत्नी अंत में उससे अलग रहने का निर्णय लेती है। मंज़ूर ने स्त्री उत्पीड़न की कथा को इस उपन्यास में गहरी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है।

मंजूर की पहली कहानी और पहला उपन्यास दोनों ही पारिवारिक संबन्धों पर आधारित है। जो उन्हें राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, नरेश मेहता, मोहन राकेश, श्रीलाल शुक्ल जैसे साहित्यकारों के निकट खड़ा करता है। वहीं अपने दूसरे उपन्यास 'सूखा बरगद' में वे समाज की समस्याओं पर प्रगतिशील दृष्टिकोण के साथ अपने विचार पाठक के सामने रखते हैं। इस उपन्यास में उनका वैचारिक धरातल काफी प्रभावशाली रूप धारण करता है। इसमें पारिवारिक मुद्दों से ऊपर उठकर समाज, देश तथा विश्वव्यापी समस्याओं को उनके चिंतन के केंद्र में देखा जा सकता है। समाज के संवेदनशील पहलुओं पर वे बड़ी गंभीरता से विचार करते हैं। सांप्रदायिक ताकतें किस प्रकार सामाजिक संबंधों पर असर डालती हैं और नफरत फैलाकर लोगों के बीच किस प्रकार दूरी बनाने का काम करती हैं, इसको मंज़ूर ने विस्तार से इस उपन्यास में दिखाया है।

वैचारिक रूप से मंज़ूर मार्क्सवाद से प्रभावित हैं। धर्म, साम्प्रदायिकता, शोषण, स्त्री-स्वतंत्रता, सामाजिक समानता आदि पर बात करते वक्त वे मार्क्स के विचारों से काफी सहमत दिखते हैं। इसके अलावा मार्क्सवादी विचारधारा का शिक्षित मुस्लिम समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को वे अपने उपन्यासों में विभिन्न पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। साथ ही इस प्रभाव से मुस्लिम जीवन-दृष्टि, शिक्षा, रहन-सहन एवं विभिन्न धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक सोच-समझ में आ रहे परिवर्तन पर भी मंज़ूर ने विचार किया है। पढ़े-लिखे मुसलमानों की सोच-समझ तथा उनके रहन-सहन के

साथ-साथ गरीब मुसलमानों के रहन-सहन, उनकी समस्याओं तथा उनकी जीवन-दृष्टि पर भी मंज़ूर ने विस्तारपूर्वक चर्चा की है। 'सूखा बरगद' उपन्यास के पात्र दो तरह के हैं, एक तो पढ़े-लिखे प्रगतिशील किस्म के, दूसरे कम पढ़े-लिखे तथा संकुचित विचार के हैं।'सूखा बरगद' उपन्यास के पात्र 'सुहेल' और 'रशीदा' आधुनिक भारतीय मुस्लिम युवाओं का प्रतिनिधित्त्व करते हैं। वे भारत की तत्कालीन व्यवस्था को बदलने का स्वप्न देखते हैं। हिंदू-मुस्लिम के आपसी मतभेद को मिटाकर सौहार्द कायम करना चाहते हैं। वे भारतीय राजनीति में भी सुधार चाहते हैं। आजादी के बाद मुसलमानों के साथ हो रहे पक्षपातपूर्ण व्यवहार से दुखी हैं और धर्म तथा साम्प्रदायिकता के नाम पर हो रहे भेदभाव को समाप्त कर एक स्वस्थ समाज की स्थापना करना चाहते हैं। वास्तव में ये सभी परिकल्पनाएँ स्वयं लेखक की वैचारिकी है, जिसे वह विभिन्न पात्रों के माध्यमों से व्यक्त करता है। 'सुहेल' धार्मिक भेदभाव को नहीं मानता लेकिन समाज में उसकी पहचान जब एक मुस्लिम युवक के रूप में की जाती है तब उसे दुःख होता है। वास्तव में हमारे भारतीय समाज की यह विडम्बना है कि समाज में एक-दूसरे की जाति को जानने में लोगों में काफी उत्सुकता होती है और जाति को जान लेने के बाद ही लोग बातचीत या मित्रता जैसे सम्बन्धों को आगे बढ़ाते हैं। 'सुहेल' इस तरह की सोच से काफी दुखी है। अपने पिता के मरने के बाद वह एक अजीब मानसिक द्वंद्व की स्थिति से गुजरने लगता है, क्योंकि उसका मार्गदर्शक और इस तरह की समस्याओं का समाधान करने वाला उनके पास अब कोई नहीं है। उसके पिता कहते हैं कि ये नफरत का खेल ज्यादा दिन तक नहीं चलने वाला है। नई पीढ़ी इन राजनेताओं के चाल को समझेगी और समाज से ये नफरत रूपी पौधे को जड़ से उखाड़ फेंकेगी। लेकिन ऐसा नहीं हो पाता है। समाज में नफरत की राजनीति दिनोदिन बढ़ती चली जा रही है। ऐसे में सुहेल को अपने पिता की बातें झूठी लगने लगती है। वह घोर निराशा, दुख व अकेलेपन से घिर जाता है। वह काफी बेचैन रहने लगता है। अंत में उसे महसूस होता है कि वह एक ऐसे बरगद के वृक्ष के नीचे बैठा है, जो पूरी तरह सूख चुका है, जिसमें सारी संभावनाएँ ख़त्म हो चुकी हैं।

मंजूर आधुनिकता के पैरोकार हैं। वे धर्मों के भीतर भी नवीनता को आवश्यक मानते हैं। उन्होंने अनेक चिंतकों-विचारकों द्वारा इस्लाम की व्याख्या नवीन परिस्थिति के अनुसार करने की जरूरत का समर्थन किया है। इस सम्बन्ध में अतहर फारुकी लिखते हैं-"शरीयत के कई ऐसे पहलू हैं, जो मुस्लिम पर्सनल ला का भाग हैं। नवीन व्याख्या इसलिए चाहते हैं कि वे आज के भारत में मुसलमानों के व्यावहारिक जीवन की माँगों

पर आधारित नहीं है।"[1] मंज़ूर भी इस्लाम की नयी व्याख्या करने की जरूरत महसूस करते हैं। उनका मानना है कि हजारों वर्ष पूर्व अरब में बनाये गए इस्लामिक कायदे-कानून को आज की परिस्थिति में लागू नहीं किया जा सकता। उसमें बदलते हुए समाज के अनुसार कुछ बुनियादी परिवर्तन जरूरी है। यही नहीं धर्म संबन्धी प्रत्येक मुद्दे पर वे वैज्ञानिक ढंग से सोचने पर जोर देते हैं, जैसे अगर इस्लाम में सूअर को हराम माना गया है, तो उसके कारणों को जानना चाहिए कि सूअर को गन्दगी खाने के कारण हराम बताया गया है, न कि उसे उसकी प्रजाति के आधार पर। अगर सूअर गन्दगी नहीं खाता तो वह हराम नहीं होता। किंतु धर्म के नाम पर उसका बहिष्कार कर दिया गया है। इसी प्रकार मंजूर कुर्बानी को लेकर भी प्रचलित मान्यता का विरोध करते हैं, जिसमें खुदा को प्रसन्न करने के लिए कुर्बानी की प्रथा को आज भी लोग अपनाए हुए हैं। हज की परम्परा पर भी मंज़ूर व्यंग्य करते हैं। आज जब ईश्वर की सत्ता पर ही प्रश्नचिन्ह लग चुका है, तब रोजा, नमाज, हज, कुर्बानी आदि बातें बेमानी सी लगती है। मंज़ूर की नज़र में धर्म को मानना ही एक 'लेक् आव् कॉमन सेंस' है। धर्म मनुष्य को मनुष्य के साथ जोड़ने का काम करता है, इंसानियत का पाठ पढ़ाता है, साथ ही मनुष्यता से बड़ा कोई भी धर्म नहीं होता।

'सूखा बरगद' उपन्यास के माध्यम से लेखक ने मुस्लिम समाज से जुड़े मुद्दों को उठाया है, जबकि अपने तीसरे उपन्यास 'दास्तान-ए-लापता' में वे अल्पसंख्यक की परिभाषा से अलग एक अकेले आदमी के जीवन-मूल्यों की कहानी लिखते हैं। यह कहानी समाज के उस वर्ग की कहानी है, जो इस बदलते दौर में 'जीवन की अंधी दौड़' का हिस्सा नहीं बन पाता। इस कारण उसके भीतर उत्पन्न अंतर्द्वंद्व तथा अंतर्विरोध उसे लापता की स्थिति में पहुँचा देती है। उपन्यास के नायक 'जमीर अहमद खान' की यही पीड़ा है। वह अपने जीवन में सच्चा प्यार पाने की आकांक्षा रखता है, लेकिन इस क्रूर संसार में वह स्वयं को असफल पाता है। इस उपन्यास में उत्तर-आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव से मानव जीवन में आई विडम्बनाओं को सूक्ष्मता से दिखाया गया है। जमीर अहमद खान जैसा चरित्र जो अपने परम्परा-बोध, स्मृतियों, जीवन-मूल्यों तथा राष्ट्रीय-चेतना के साथ जीवित है और जिन्हें आज की पीढ़ी प्रगति के लिए बाधक मानती है, ऐसे चरित्र के बारे में विजय बहादुर सिंह लिखते हैं-"पर ये भी कोई ऐसे-वैसे पुरुष नहीं हैं ये बार-बार सफ से अलग खड़े होकर कहेगें, 'मुझे नमाज पढ़ना नहीं आता' और भागकर उन लोगों के

[1] सं० राजेन्द्र यादव, हंस (मासिक पत्रिका), अगस्त 2003, पृ० 31-32

साथ खड़े होते रहेंगे जिनके पास अभी भी संवेदना है। मंजूर एहतेशाम का तीसरा उपन्यास 'दास्तान-ए-लापता' विरल संवेदना की विडंबनात्मक गाथा है। इसे उन्होंने स्मृति, यथार्थ, इतिहास, धर्म, राजनीति, साहित्य, फिल्म और कला के कई-कई हवालों के मार्फत कहते हुए जिस मार्मिक आख्यान की सृष्टि की है उसमें बुनियादी इंसानी दुर्बलताओं के बावजूद यथार्थ सन्निकता और स्वाभाविकता है।"[1]

शिल्प की दृष्टि से भी यह उपन्यास हिन्दी के अन्य उपन्यासों से भिन्न है। उपन्यासों में आमतौर पर प्रस्तावना शुरू में ही लिखी जाती हैं, किंतु इस उपन्यास में प्रस्तावना बीच-बीच में हस्तक्षेप करते हुए दो बार लिखी गयी है। इस प्रस्तावना में लेखक ने जमीर अहमद खान उर्फ 'लापता भोपाली' के चरित्र को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वैचारिक स्तर पर इस उपन्यास में जमीर अहमद खान के लापता चरित्र के साथ-साथ उन सभी सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर भी विचार किया गया है, जिनके कारण आज का सामान्य व्यक्ति काफी जटिल और संदेहास्पद स्थिति में पहुँच गया है।

अपने चौथे उपन्यास 'बशारत मंजिल' में लेखक इतिहास के उन पुराने दौर में पाठक को ले जाता है, जहाँ से स्वाधीनता संघर्ष की कहानी शुरू होकर विभाजन की स्थिति तक पहुँच जाती है। आज के हिन्दी उपन्यासों में आमतौर पर गाँधी जी के बारे में बहुत कम ही बातें होती है लेकिन इस उपन्यास में गाँधी के विचारों से लेकर उनकी सामाजिक, राजनीतिक हस्तक्षेप तथा तत्कालीन समाज में उनकी लोकप्रियता के बारे में लिखा गया है। इस उपन्यास में भारत के सन् 1857 से लेकर 1947 तक की राजनीतिक, सामाजिक पृष्ठभूमि के भीतर सांप्रदायिकता के पैदा होने तथा उसके विकसित होने की पूरी प्रक्रिया पर विचार किया गया है, जिसने विभाजन जैसी खतरनाक मानसिकता को जन्म दिया और जो स्वतंत्रता के बाद भी भारतीय राजनीति तथा समाज में एक राष्ट्रव्यापी समस्या के रूप में विद्यमान है। उपन्यास में भारतीय मुसलमानों का स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान, मुस्लिम लीग के स्थापना के पीछे की मानसिकता, मुसलमानों की तत्कालीन स्थिति, उनके जीवन, रहन-सहन, सोच-विचार आदि पर बात करते हुए सर सैयद अहमद खान, वलीउल्लाह तहरीक, मार्क्स आदि के विचारों पर भी इस उपन्यास में चर्चा की गयी है। उपन्यास के संबन्ध में कथावाचक

[1] विजयबहादुर सिंह, उपन्यास : समय और संवेदना, पृ० 104

कहता हैं- "एक बात साफ कर दूँ: नावेल का हर किरदार, उन्हें छोड़कर भी जो हिस्ट्री में है, और एक-एक घटना ओरिजनल है। उन्हें मैंने किसी दूसरी जगह से नहीं लिया। हिस्ट्री की मालूमात के लिए तो मैं टायनबी से लेकर, नेहरू, मौलाना आजाद से लेकर, वजदी उल्ल हुसैनी और मीरा बहन से लेकर चार्ली एंड्रयूज, जो भी मिल सकेगा, पढूँगा। इसी तरह मैंने और भी न जाने क्या-क्या पढ़ा और उसमें से अपने मतलब का जो लगा, वह निकाल लिया। छिपा थोड़ी रहा हूँ, साफ-साफ बता रहा हूँ और उसी हिसाब से इस नावेल को कोलाज कह रहा हूँ।"[1] इस उपन्यास में लेखक ने दिल्ली के एक सम्भ्रांत मुस्लिम परिवार के चार पीढ़ियों की कथा के माध्यम से बदलते पारिवारिक तथा मानवीय मूल्यों की पड़ताल की है। उपन्यास में लेखक की चिंता का विषय मनुष्य के भीतर से ख़त्म हो रही संवेदनाएँ भी है, जिसमें एक लड़की अपने पसन्द के युवक से विवाह करने हेतु अपने माता-पिता तथा अपनी बहन की हत्या बड़ी आसानी से कर देती है।

'कोलाज' चित्रकला की एक शैली है जिसमें फोटो, अखबार की कतरने तथा अन्य दूसरी सामग्री को कैनवस पर चिपकाया जाता है। इन चित्रों का स्वतंत्र तथा सामूहिक दोनों रूपों में अलग-अलग महत्त्व होता है। यह दर्शक को चौंकाता है क्योंकि वे असंगत छवियों के बीच संगति ढूंढने की चेष्टा करते हैं। अतियथार्थवादियों ने इसे 'अवचेतन की फंतासियों के विरेचन का माध्यम' बताया है। यह उपन्यास कोलाज शैली पर लिखा गया है। इसमें विभिन्न चरित्र और घटनाओं को कैनवस पर चिपकाया गया है। संजीदा अली की अग्रिम मृत्यु दिखाकर फंतासियों का विवेचन भी किया गया है। उपन्यास का अंत पाठक को चौंकाने वाला है। किंतु ऐतिहासिक स्तर पर इस उपन्यास को अधूरा कहा जा सकता है क्योंकि इस उपन्यास में गाँधी का तो जिक्र है लेकिन जिन्ना का जिक्र कहीं नहीं है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हुए विभिन्न आंदोलनों तथा सेनानियों को भी अनदेखा किया गया है।

मंजूर का अगला उपन्यास 'पहर ढलते' सिर्फ एक रात की घटना पर आधारित है। उपन्यास की शुरुआत नवाब हनीफ मियाँ के घर कव्वाली के आयोजन से होता है, जिसमें शहर के बड़े-बड़े रईस शिरकत फरमाते हैं। उन मेहमानों में अफसर, मंत्री, नवाब, उनकी

---

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृ० 85

बेगमें, कैप्टन, चार्टर्ड अकाउंटेंट, व्यापारी, नौकर और शोहदे सभी शामिल हैं। पूरी महफ़िल सियासत से भरी हुई है। सबने झूठ, पाखंड तथा नाटकीयता के आवरण में खुद को कैद कर रखा है। इमरजेंसी का माहौल है, सब अपने-अपने स्वार्थ के लिए एक-दूसरे से नकली मुस्कुराहट के साथ मिल-जुल रहे हैं। लेखक ने एक-एक करके सभी के नकली चेहरों को बेनकाब किया है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने तत्कालीन सामाजिक,राजनीतिक तथा न्याय-व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। बेमेल विवाह, अवैध सम्बन्ध,अय्याशी, राजनेताओं तथा अफसरों द्वारा क़ानून का दुरूपयोग तथा उच्चवर्गीय समाज के चरित्र को व्यंग्यात्मक ढंग से इस उपन्यास में दिखाया गया है।

मंजूर एहतेशाम का ‘मदरसा’ उपन्यास सन् 1987 के दौर को प्रस्तुत करता है। उस दौर में एक आम मनुष्य के जीवन में किस प्रकार के परिवर्तन हो रहे थे तथा समय के साथ न चल पाने वाले व्यक्ति की समस्या को इस उपन्यास में प्रमुखता से उठाया गया है। उपन्यास का नायक ‘साबिर नईम’ अपने अतीत की खोज में वर्तमान से कट जाता है। एक संवेदनशील मनुष्य का ‘मनुष्य’ बने रहना किस कदर चुनौतीपूर्ण है इस स्थिति को भी इस उपन्यास में दिखाया गया है। साबिर नईम छल, कपट,चालाकी, बेईमानी से परे जीवन जीने की इच्छा रखता है लेकिन समाज में रहते हुए उसे इन सब का सामना करना ही पड़ता है। वह परिवार, समाज, पत्नी, रिश्तेदार सभी से स्वयं को ठगा महसूस करता है। 40 साल की उम्र में जीवन के अनेक अच्छे-बुरे अनुभवों से गुजरने के बाद वह नये सिरे से जिंदगी शुरू करना चाहता है। साथ ही वह अपने टूटे-बिखरे परिवार को समेटने के लिए फिर से खुद को तैयार करता है। मंजूर इस उपन्यास के बारे में लिखते हैं- “एक जाती दुनिया और एक आती दुनिया के बीच एक वक्फा, एक अंतराल होता है।

यह उपन्यास उस जमाने का किस्सा है जब ‘मुम्बई’ बम्बई हुआ करती थी: इसमें घटनाओं की कालावधि अप्रैल, 1987 तक है, जब वह बहुत कुछ, जो उसके बाद हो चुका है, नहीं हुआ था, मगर जिसके होने की भूमिका बनना शुरू हो गई थी।

उपन्यास का विषय वह परिवर्तन नहीं है, यह उस जिंदगी के बारे में है जो सारे बदलाव के बाद, हर जमाने में, बाकी रह जाती है।”[1]

---

[1] मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृ० 7

भारतीय मुस्लिम समाज आज सबसे कमजोर और पिछ्ड़ा हुआ है। इसका एक बड़ा कारण धर्म के नाम पर हो रही राजनीति, तुष्टिकरण तथा इस वर्ग के साथ सरकार का उपेक्षापूर्ण रवैया है। हमारे देश में शासन की रुपरेखा भले ही बदल गयी लेकिन वास्तविकता नहीं बदली है। हमारा समाज जाति,धर्म,वर्ग,वर्ण,लिंग,भाषा आदि अनेक स्तरों पर आज भी वैसे ही बटा हुआ है जैसे कि पहले था। वे पाठकों से प्रश्न करते हैं कि अयोध्या में राम मंदिर के नाम पर हो रही राजनीति में एक आम मुसलमान किस हद तक दोषी है? शाहबानों केस जो बिलकुल साधारण और आसानी से समझने और फैसला योग्य केस था उसको आसमानी ताकतों के आदेश के साथ फेंटकर इतना जटिल और विवादास्पद बनाने की क्या जरूरत है?

मंजूर का विचार है कि धर्म मनुष्य की रक्षा तथा नैतिक विकास के लिए ही अस्तित्व में आया होगा। धर्म एक संविधान ही तो देता है जिनमें कुछ बुनियादी बातें- फंडामेंटल्स होते हैं और बाकी हिदायतें- डायरेक्टिव प्रिंसिपल्स। धर्म का उद्देश्य समाज में लॉ एंड आर्डर बरक़रार रखने की मंशा से होता है और वह वक्त-वक्त पर सुधार की माँग करता है। आज हम वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं। जिसे दुनिया सेक्युलर और नया कहती है लेकिन विडम्बना यह है कि आज धर्म सामने वाले पर हमला करने का हथियार बन गया है। जिन्हें धर्म के बारे में ठीक-ठीक जानकारी भी नहीं होती वह भी सजावट के लिए इसका इस्तेमाल करना जरुरी समझते हैं।

मंजूर आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के प्रबल समर्थक हैं। उनका मानना है कि शिक्षा बुनियादी तौर पर मनुष्य को स्वतंत्र होना सिखाती है। जो लोग प्राचीन काल को ‘स्वर्ण युग’ मानते हैं और वर्तमान में दोष निकलते हैं और आधुनिक शिक्षा को प्राचीन संस्कृति या धार्मिक पुस्तकों के साथ संगत बिठाने की कोशिश करते हैं उन्हें वे बीते ज़माने का जेहनी गुलाम मानते हैं। मंजूर सामाजिक व्यवस्था को सुधारने के लिए देश में एक अच्छे जर्नलिस्ट और ज्युडिशरी सिस्टम को आवश्यक मानते हैं। ‘सूखा बरगद’ उपन्यास में ‘अब्दुल वहीद’ कहता है-“किसी भी मुल्क को बनाने या बिगाड़ने में सबसे बड़ा हाथ वहाँ की ज्यूडिशरी और जर्नलिस्ट का होता है।.... इस मुल्क में अगर अच्छे जर्नलिस्ट ही हो तो आधे से ज्यादा मुश्किल हल हो जाए।”[1]

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृ० 95-96

मंजूर की कहानियों में भी उनके वैचारिक विकास को इसी क्रम में देखा जा सकता है। उपन्यास के भांति ही उनकी प्रारम्भिक कहानियों में भी पति-पत्नी संबन्धों तथा बदलते हुए पारिवारिक, सामाजिक मूल्यों को केंद्र-बिंदु बनाया गया है। रमजान में मौत, खेल, छोटी-छोटी चीजें, पुल पुख्ता, अँधेरे में, घेरा, उदास चाँदनी आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। इसके साथ ही जीवन की तमाम छोटी- छोटी घटनाओं, परिवर्तनों तथा समस्याओं को केंद्र में रखकर इन्होंने कहानियाँ लिखी हैं। जिनमें इनके विचार छोटे-छोटे रूपों में दिखाई देते हैं। इस प्रकार मंजूर अपने उपन्यास तथा कहानियों में विविध सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय समस्याओं, जीवन पद्धति तथा बदलते सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों पर अपने विचारों को रखने का प्रयास करते हैं।

3.3. रचनात्मक भावधारा-

भाव पक्ष को साहित्य का 'प्राण तत्व' माना गया है। जिस साहित्य में भाव पक्ष जितना प्रबल होगा, वह साहित्य उतना ही प्रभावात्मक और संप्रेषणीय होगा। साहित्य की सरसता का आधार भी भाव पक्ष को ही बताया गया है। भाव के महत्त्व को व्यक्त करते हुए संस्कृत के आदि आचार्य भरतमुनि ने लिखा है- 'विभावानुभाव व्यभिचारी भाव संयोगात् रस निष्पत्ति:'। इस सूत्र ने साहित्य में भाव के महत्त्व पर चिन्तन की परम्परा को जन्म दिया। वैसे पारिभाषिक रूप में चित्त की स्थायी और अस्थायी वृत्तियों के नाम को भाव' कहा गया है। कविता में भाव पक्ष की प्रबलता गद्य की अपेक्षा अधिक होती है। गद्य की सभी विधाओं में भाव पक्ष समान नहीं होता। गद्य विधा के कथा साहित्य में भावों का सर्वाधिक उद्वेलित रूप प्रकट होता है। संस्कृत के कवियों, नाटककारों के यहाँ भावों का जीवंत रूप देखने को मिलता है। कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' में शकुंतला की विदाई का दृश्य बहुत ही मार्मिक ढंग से खींचा है-

"उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूरी।

अवसृतपाण्डूपत्रा मुञ्चन्त्यश्रुणीव लताः।। (4/11)

(मृगीगण कुश के ग्रास को वियोग से दुःखी होकर गिरा रही है। शकुन्तला के आश्रम छोड़ने से वे इतनी शोकग्रस्त है कि उन्हें खाना नहीं सुहाता। जो मयूरी आनन्दोल्लास में

नाच रही थी उसने अपना नाचना छोड़ दिया। लताओं से पीले-पीले पत्ते झड़ रहे हैं, मानों ये आंसुओं को बरसा रही हैं।)"[1]

मनुष्य के दुख में प्रकृति के सम्मिलित होने का भाव साहित्य में ही संभव है। भावों की इस परंपरा को 'कवि की कल्पना का प्रेरक' बताया गया है। प्रत्येक कवियों, साहित्यकारों के यहाँ इसके विभिन्न रूप देखे जा सकते हैं। तुलसी जहाँ अपनी अभिव्यक्ति में अपने प्रिय राम के प्रति समर्पण भाव रखते हुए 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा' के आग्रह के साथ संसार के दुःख-दर्द की अभिव्यक्ति करते हैं, तो वहीं कबीर 'सुखिया सब संसार है, खाये और सोवे, दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे' कहकर अपनी संवेदना प्रकट करते हैं। संवेदनात्मक स्तर पर कबीर और तुलसी में फर्क होने के बावजूद साहित्य में दोनों का अपना-अपना महत्त्व है।

जैसे-जैसे समाज का विकास होता गया, वैसे-वैसे मानव जीवन में जटिलताएँ आती गई। पहले जहाँ साहित्य दुःख-सुख तक ही केन्द्रित रहा, अब वह मानव मन के सूक्ष्मतम स्तर तक प्रसारित होता चला गया है। अब साहित्य में मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा आदि मनोभावों का उल्लेख होने लगा है। वैसे तो संस्कृत काव्यशास्त्र में आचार्यों द्वारा रस, छन्द, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति जैसे तत्त्वों पर चिन्तन की पूरी परम्परा दिखाई देती है, लेकिन उसका विस्तार साहित्य के शिल्प पक्ष तक ही सीमित रहा है।

हिन्दी साहित्य में उपन्यास के आगमन से साहित्य का स्वरूप परिवर्तित हुआ। महाकाव्यों में जहाँ नायकों की कोटि धीर गम्भीर, धीर ललित, धीरोदात्त की रही, साथ ही नायक का सम्बन्ध उच्च कुल, राजा, देवता या सम्भ्रांत समाज से रहा, तो वहीं कथा के स्तर पर पौराणिक, दैविक या उच्च कुल की प्रेरणादायी कथा को ही साहित्य में स्थान दिया गया। साहित्य के नये दौर में नायक के रूप में 'आम-जन' स्थापित हुआ और कथा के स्तर पर सामाजिक घटनाओं को ही महत्त्व दिया गया। इस परिवर्तन से साहित्य की सम्पूर्ण भावधारा में भी परिवर्तन हुआ। अब साहित्य का सीधा सम्बन्ध आम जन के दुःख-सुख, उसकी जटिलताओं, समस्याओं पर केंद्रित हुआ। इसका उदाहरण 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' के नाटकों से दिखाई देता है, लेकिन सम्पूर्ण मानवीय संवेदना को व्यक्त करता सन् 1915 में 'चंद्रधर शर्मा गुलेरी' द्वारा लिखित कहानी 'उसने कहा था' में भाव पक्ष

---

[1] बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 60-61

काफी प्रबल रूप में दिखाई देता है। प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी यह कहानी उदात्त प्रेम की सार्थक अभिव्यक्ति है।

हिन्दी मे सर्वप्रथम प्रेमचंद ने कहानी तथा उपन्यास के भाव पक्ष को मानवीय अनुभूतियों की गहराई तक ले जाने का प्रयास किया है। साहित्य को कल्पना लोक से यथार्थ के धरातल पर खड़ा करने में उनकी रचनात्मक भावधारा की विशेष भूमिका रही है। उनकी संवेदनाएँ किसान, मजदूर, दलित, स्त्री तथा शोषित वर्ग के प्रति विशेष रूप से जुड़ती है। ईदगाह, कफन, पूस की रात, गोदान आदि में भाव पक्ष की प्रबल अभिव्यक्ति दिखाई देती है। 'हजारी प्रसाद द्विवेदी' साहित्य की संवेदनशीलता पर जोर देते हुए लिखते है-"मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षता से न बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को पर-दुख कातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने मे मुझे संकोच होता है।"[1] हिन्दी का आधुनिक साहित्य इन्ही मानदंडों को आधार बनाकर, प्रेमचंद की रचना-परम्परा में आगे बढ़ता दिखाई देता है।

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में भाव-पक्ष के साथ साथ बुद्धि-पक्ष की प्रबलता देखी जा सकती है। इस युग में विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित लेखकों ने मानव जीवन को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से व्याख्यायित किया है। विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् जीवन में आयी जटिलताओं और उससे उत्पन्न मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को विभिन्न साहित्यकारों द्वारा दिखाने का प्रयास किया गया है। साहित्य में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन के प्रभाव से मनुष्य में उत्पन्न भय, निराशा, ऊब, अजनबीयत, कुंठा, बेकारी आदि संवेदनाएँ साहित्य में प्रमुखता से दिखायी जाने लगी। इसके साथ उत्तर-आधुनिकता, भूमंडलीकरण, बाजारीकरण आदि के बढ़ते दबाव को लेकर भी लेखकों ने चिंता व्यक्त की है। हिन्दी साहित्य में इन समस्याओं के साथ ही विभाजन, दंगे, सांप्रदायिकता, गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, सरकारी तंत्र की निरंकुशता, भ्रष्ट शासन व्यवस्था, स्त्री, दलित, आदिवासी तथा अल्पसंख्यक समाज से जुड़ी समस्याएँ, पारिवारिक सम्बन्धो तथा मानवीय मूल्यों में आ रही गिरावट आदि अनेक स्तर पर हो रहे परिवर्तनों को पूरी गम्भीरता और संवेदना के साथ दिखाया गया है। समाज में हो

---

[1] सं० नन्दकिशोर नवल, हिन्दी साहित्यशास्त्र, पृ०-35

रहे इन परिवर्तनों को साहित्यकारों ने अभिव्यक्त किया है। उनके द्वारा भावनात्मक स्तर पर मनुष्य को अपने नैतिक व मानवीय मूल्यों के प्रति सतर्क करने और उनके प्रति अपनी सहानुभूति बनाये रखने का सर्जनात्मक प्रयास अपनी रचनाओं के माध्यम से किया गया है।

भाव-पक्ष और बुद्धि-पक्ष ही वे मूल तत्व हैं, जो साहित्य और शास्त्र में अन्तर स्पष्ट करते हैं। शास्त्रों में जहाँ बुद्धि-पक्ष की प्रबलता होती है, तो वहीं साहित्य में दोनों का सामंजस्य दिखाई देता है। शुक्ल जी चिंतामणि-1 में लिखते हैं-"इस पुस्तक में मेरी अंतर्यात्रा में पड़ने वाले कुछ प्रदेश हैं। यात्रा के लिए निकल रही है बुद्धि पर हृदय को साथ लेकर।"[1] बुद्धि और हृदय का यह सामंजस्य ही उनके निबन्धों को श्रेष्ठ बनाता है। यही नहीं दुनिया का हर महान साहित्यकार इस सामंजस्य को बनाये रखना जरुरी समझता है। कुछ ऐसा ही सामंजस्य 'मंजूर एहतेशाम' की रचनाओं में भी देखा जा सकता है। विभाजन के बाद भारतीय मुसलमानों की मनःस्थिति को बड़ी सूक्ष्मता के साथ उन्होंने अपनी रचनाओं में दिखाया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास का पात्र 'सुहेल' मुसलमानों के प्रति फैली नफरत, नेताओं द्वारा उग्र एवं आक्रामक भाषणबाजी, समाज, राजनीति तथा नौकरियों में धर्म के आधार पर मुसलमानों के साथ होने वाले भेदभाव, विश्वविद्यालयों की राजनीति, दंगे और साम्प्रदायिकता के माहौल से इतना खिन्न हो जाता है कि वह पढ़ाई छोड़ देता है। उसके मानसिक द्वन्द्व, कुण्ठा, निराशा तथा दुःख को मंज़ूर ने गहरी संवेदना के साथ व्यक्त किया है।

इसके साथ ही उत्तर-आधुनिकता के बढ़ते दबाव को मंजूर ने अपने उपन्यास 'दास्तान-ए-लापता' में 'जमीर अहमद खान' के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है। जमीर अहमद खान आज के बदलते दौर के साथ अपना सामंजस्य नहीं बना पाता। उसे छल-कपट और चालाकी नहीं आती इसलिए उसका कारोबार भी हाथ से निकल जाता है। वह अपनी माँ की मृत्यु तथा अपने साथ तथा आसपास घटित घटनाओं को भूलना चाहता है। उसकी पत्नी उससे नाराज होकर बच्चों के साथ मायके चली जाती है। वह अपने दुःख और उलझन के कारण खुद को रोगी महसूस करने लगता है और डॉक्टर को दिखाने के लिए जाता है। डॉक्टर कई जाँच करवाता है लेकिन कोई रोग निकलकर सामने नहीं आता। उसे डॉक्टर पर हँसी आती है क्योंकि वह जिस बीमारी से ग्रसित है

---

[1] रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि-1, (निवेदन से)

उसका डॉक्टरों के पास कोई इलाज नहीं है। मनुष्य के दुःख, उलझन, अकेलेपन, निराशा, भय, अजनबीयत की मेडिकल साइंस में भला क्या दवा हो सकती है ? ये सभी समस्याएँ तो उत्तर-आधुनिकता से उत्पन्न हैं। आज विकास और मुख्यधारा के नाम पर जीवन को इतना जटिल बना दिया गया है कि मानवीय तथा पारिवारिक सम्बन्धों को निभाना भी एक चुनौती बन गया है। पारिवारिक सम्बन्धों में आए परिवर्तन को मंजूर ने अपनी रचनाओं में दिखाने का प्रयास किया है। 'रमजान में मौत' कहानी में 'सुहेला' अपने बीमार पति 'असद मियाँ' की परवाह न करते हुए सज-संवर अपने बेटे को साथ लेकर ईद की खरीदारी करने निकल पड़ती है। असद का भाई भी उनकी बीमारी को गंभीरता से नहीं लेता। वह उनकी बीमारी को तमाशाबाजी और निरी एक्टिंग बताते हुए पीछा छुड़ाना चाहता है। असद मियाँ जिस 'फ़लक मंजिल' में रहते हैं, उसी मंजिल में उनकी माँ, बहन, भाई, पत्नी बच्चे सब रहते हैं। सब चाँद देखने और ईद की तैयारी करने में व्यस्त रहते हैं। इधर असद मियाँ अकेले कमरे में तड़फड़ाते हुए जीवन की आखिरी साँस ले रहे होते हैं और किसी को खबर तक नहीं होती। उनका छोटा बच्चा दौड़-दौड़ कर यह सूचना सब तक पहुँचाता है। मंज़ूर की यह कहानी पात्रों के माध्यम से पूरी दुनिया में हो रहे परिवर्तन को भी बयाँ करती है। यह वह दौर था जब भारत में भी परिवारों का विखंडन शुरू होने लगा था। बाजारीकरण के प्रभाव से मनुष्य को उपभोक्ता बनाये जाने की शुरुआत भी इसी दौर में दिखाई देती है। मंज़ूर अपने चिन्तन में इन सभी बदलावों को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करते है।

पारिवारिक सम्बन्धों में आयी गिरावट के साथ-साथ वैवाहिक सम्बन्धों में विच्छेद तथा पारिवारिक विघटन की स्थिति पर भी मंज़ूर ने अपने उपन्यासों तथा कहानियों में गहरी चिंता व्यक्त की है। हमारा समाज स्त्री के सम्मान, स्वतंत्रता और सुरक्षा को लेकर कभी भी संवेदनशील नहीं रहा है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों के शोषण की परम्परा भी काफी पुरानी है। यह परम्परा हमारे समाज में आज भी जारी है। अंतर सिर्फ इतना आ गया है कि आज की पढ़ी-लिखी आत्मनिर्भर स्त्रियाँ इस शोषण के विरोध में खड़ी होने लगी हैं। मंज़ूर के कई उपन्यासों में जैसे 'कुछ दिन और', 'दास्तान-ए-लापता', 'मदरसा' में स्त्रियाँ अपने पति के अत्याचार तथा कायरतापूर्ण रवैये से तंग आकर अलग रहने का निर्णय लेती हैं। 'कुछ दिन और' उपन्यास का नायक 'राजू' अपनी असफलता को छुपाने लिए अपनी पत्नी पर तरह-तरह से अत्याचार करता है। यही नहीं जब वह अपने दोस्तों से लिए कर्ज को नहीं चुका पाता, तो वे भी उसका शारीरिक

शोषण करने लगते हैं। एक बार जब उसकी पत्नी अपने गर्भ में पल रहे बच्चे के गर्भपात के लिए तैयार नहीं होती, इस पर राजू की जो प्रतिक्रिया होती है वह देखते ही बनती है- "हाँ-हाँ, राजू एकदम उठ खड़े हो गये थे। 'अगर शर्मो-हया वाली हो तो माननी पड़ेगी'....., राजू की आवाज तेज होती जा रही थी। 'पागल औरत !' और उनके मुँह से न जाने कहाँ-कहाँ की गलियाँ आ गयी थी। 'मेरा क्या है, ऐसे ही फिर ! कर बच्चा पैदा। नारायण के बारे में ऐसा कहती है, जो अभी तक कितने पैसे हमारे चक्कर में खर्च कर चुका है। अरे, उसका एहसान तो तू उसकी रखैल बनकर भी सिर से नहीं उतार सकती, कमीनी ! निकल जाओ, चलो ! उन्होंने मुझे धक्का देते हुए कहा था। 'इस घर से इसी वक्त निकल जाओ'।"[1] फिर वह अपने पति के बाहर जाने के बाद धीरे से उठकर अन्दर अपने बेटे के कमरे में चली जाती है। इस तरह का अपमान उसके जीवन की दिनचर्या में शामिल है, इसलिए अब वह आदी हो चुकी है। इस तरह की घटना से अब उसके अन्दर किसी तरह का भाव नहीं आता, वह अब सिर्फ रोती है। इस तरह मंज़ूर ने स्त्रियों के प्रति हो रहे अत्याचार तथा पीड़ा को मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। मंजूर शोषित तथा दमित स्त्रियों के प्रति गहरी सहानुभूति रखते हैं। मंजूर अपनी अभिव्यक्ति में समाज की जटिलताओं के साथ-साथ पारिवारिक शोषण को भी स्थान देते हैं। बाज़ार ने जरूरत को किस कदर बढ़ा दिया है कि जरूरत के आगे सम्बन्ध छोटे पड़ने लगे हैं। इस दौर तक भारतीय समाज के भीतर सम्बन्ध विच्छेद आरम्भ हो चुका था। हिन्दी साहित्य में विमर्श केन्द्रित लेखन की शुरुआत भी इस दौर में आरम्भ हो चुका था। जिसका शुरूआती रूप हमें देखने को मिलता है।

हिन्दी साहित्य में 70 के आसपास 'स्त्री विमर्श' का जो रूप हमें दिखाई देता है। उसका प्रभाव मंज़ूर पर भी साफ-साफ दिखता है। समाज में बराबरी का हक, शिक्षा का अधिकार, समानता, स्वतंत्रता जैसे मुद्दों पर मंजूर भी इस विमर्श के साथ खड़े दिखते हैं। मंजूर के यहाँ इसका प्रभाव पढ़े-लिखे तथा मध्यवर्गीय स्त्री पात्रों पर अधिक दिखता है, जबकि उनके निम्नवर्गीय स्त्री पात्र प्रायः जीवन से संघर्ष करते दिखाई देते हैं। भारतीय समाज में तेजी से आ रहे परिवर्तन के फलस्वरूप स्त्रियों में आये स्वाभिमान व आत्मनिर्भरता को वे अपने सभी उपन्यासों में दिखाते है। 'मदरसा' उपन्यास में एक सिक्ख परिवार की लड़की 'पिंकी' अपने परिवार के विरुद्ध जाकर अपने पसन्द के एक मुस्लिम युवक से विवाह करती है। विवाह के पश्चात् वह नौकरी करने लगती है और

---

[1] मंज़ूर एहतेशाम, कुछ दिन और, पृ०-88-89

अपने मेहनत के बल पर वह काफी तेजी से आगे निकलते हुए उच्च पद प्राप्त करने में सफल होती है। आगे चलकर अपने पति के उदासीन रवैये के कारण वह अलग रहने का निर्णय लेती है। इसी प्रकार माँ और बेटे के सम्बन्धों में आ रहे परिवर्तन को भी मंजूर ने 'मदरसा' उपन्यास के माध्यम से दिखाया है। बाजारीकरण के इस दौर में किस प्रकार एक माँ को अपने बेटे से अधिक जायदाद प्यारा हो जाता है। उसकी माँ जब उसे कारोबार शुरू करने के लिए अपने दूसरे पति यानी उसके सौतेले पिता, जिसे अब तक वह अपना सगा पिता जानता था, उसके जायदाद में हिस्सा देने से मना कर देती है, जिसका उसे काफी सदमा पहुँचता है। वह अपने असली पिता की तलाश में निकल पड़ता है, तब वह देखता है कि उसके पिता के जमीन पर रिश्तेदारों ने पहले से ही कब्जा कर रखा है। इसी उधेड़बुन में उसका परिवार बिखर जाता है। 40 की उम्र में ही उसे इस दुनिया का इतना अनुभव हो जाता है कि उसे दुनियादारी से नफरत होने लगती है। इसी तरह 'बशारत मंजिल' उपन्यास में विघटित पारिवारिक तथा नैतिक मूल्यों पर गहरी संवेदना व्यक्त की गई है।

मंजूर ने निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज का चित्रण करते हुए उनके दुख-सुख, समस्याओं तथा उनकी स्थितियों को संवेदनात्मक ढंग से दिखाया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में सईदा और उसके पाँच बच्चों को छोड़कर उसका पति भाग जाता है। सईदा अपने परिवार का खर्च चलाने के लिए लोगों के घर नौकरानी का काम करने लगती है। घर पर उसकी लड़कियाँ बीड़ी बनाती हैं, ताकि कुछ पैसा घर में आ सके। लेकिन महँगाई के दौर में उनके परिवार का गुजारा काफी मुश्किल से होता है। ऐसे में वह बेटियों की शिक्षा और शादी का इंतजाम नहीं कर पाती। इसी तरह 'फफू' के चरित्र के माध्यम से अकेले जीवन बिताने वाली स्त्री के संघर्ष को भी देखा जा सकता है। पति और बेटे के असामयिक निधन के बाद अपना खर्च चलाने के लिए वह मुहल्ले के बच्चों को धार्मिक शिक्षा देती है और मस्जिद के साफ-सफाई का काम करती है। बमुश्किल अपना गुजारा करने वाली फफू संकरी सी गली में एक टूटे-फूटे,लकड़ी के फर्रे से बने संकरे मकान में रहती है। अकेले में पति और बेटे को याद कर रोती है। जिसका प्रभाव उसके स्वभाव में साफ-साफ दिखाई देता है। वह बच्चों को पढ़ाते समय बहुत चिड़चिड़ाती है। उसी गली में रहने वाले सलाम दादा, इब्बू दादा, हब्बा बुआ की पारिवारिक स्थिति, गरीबी, रहन-सहन तथा समस्याओं को भी दिखाया गया है। इब्बू दादा की बेटी 'कल्लो' और पत्नी के बारे में मंजूर लिखते हैं-"कल्लो को घर के काम-काज में हाथ बटाने से इतनी भी फुरसत

नहीं थी कि वह फफू के घर पढ़ने भी आ पाए। गन्दे, फटे कपड़े पहने, कभी बर्तन साफ करती, कभी भैस के आगे पुले खोलती। कल्लो की माँ को टी० बी० थी और वह उस अँधेरी सीलन में बसी कोठरी में पड़ी-पड़ी खांसती रहती थी।"[1] इस प्रकार के अनेक प्रसंग मंजूर की रचनाओं में देखने को मिलते है।

'पहर ढलते' उपन्यास में उच्चवर्गीय मुस्लिम समाज के लोगों के चरित्र, रहन-सहन तथा महत्त्वाकांक्षाओं को दिखाया गया है। उपन्यास में नवाब साहब के घर रात में एक पार्टी रखी गयी है, जिसमें शहर के अमीर और ओहदेदार लोगों को बुलाया गया है, जिसमें मंत्री, कैप्टन, व्यापारी, अफसर तथा अन्य लोग भी शामिल हैं। मनोरंजन के लिए कव्वाली का आयोजन किया गया है। असल में उस पार्टी में सब अपने सियासी फायदे के लिए आये हुए हैं लेकिन सब कव्वाली सुनने का नाटक करते हैं। लेखक ने एक-एक करके सबके नकली चेहरे को बेनकाब किया है। उपन्यास में एक स्थान पर जब भरी महफिल में नवाब साहब की पत्नी को उसके आशिक के आने की सूचना नौकर कान में देता है, तो उसकी प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार होती है-"कौन शहाब ? शबनम ने अपनी आवाज इतनी ऊँची करते हुए कहा था कि आसपास मौजूद सब लोग सुन लें। हनीफ साहब से कहो ना, वह कहाँ हैं ? उसने अपने लहजे में बेजारी लादने की एक्टिंग करते हुए कहा था।...फिर अपनी बात अधूरी छोड़कर वह घर के पिछले दरवाजे पर आ गयी थी। शहाब इसी तरफ से आता था...।"[2] समाज के उच्च वर्ग के साथ-साथ मंज़ूर ने वेश्याओं के जीवन, समस्याओं, दुःख, मानसिक पीड़ा, सामाजिक अवहेलना, शोषण आदि के प्रति भी संवेदना प्रकट की है। वेश्याओं की जिंदगी के बारे में वे लिखते हैं-"हम और कुछ नहीं, सिर्फ कुछ लोगों के ख्वाबों की सच्चाई हैं। हम बहुत कीमती हैं : कीमत लेते हैं तो उसका हक भी अदा करते हैं। हमारे अपने जज्बात कुछ नहीं, हम कुछ नहीं।.......एक नगमा, एक लय, एक जानदार थिरकन; जिंदगी मौत की माती नहीं, मौत खुद जिंदगी में शामिल है।"[3] बाज़ारवाद और दिखावेपन के चरित्र को भी मंजूर ने अपनी रचनाओं में समस्या के रूप में दिखाया है। किस प्रकार समाज के उच्च वर्ग अपने ऐशो-आराम के लिए पैसा पानी की तरह बहा रहे हैं वहीं महँगाई के कारण गरीब परिवार छोटी-छोटी

---

[1] मंज़ूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृ०- 25-26

[2] मंज़ूर एहतेशाम, पहर ढलते, पृ०-17

[3] मंज़ूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृ०-114

इच्छाओं को पूरा करने में असमर्थ है। व्यक्ति के जीवन तथा उसके पारिवारिक संबंधों में आए बदलाव को मंजूर ने अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाया है। उनकी कहानियों की कथावस्तु अपने आस-पास घट रही घटनाओं से बिलकुल मिलती-जुलती प्रतीत होती हैं। कल्पना और नाटकीयता से दूर इनकी कहानियाँ पाठक के अन्तर्मन को सहज ही छु लेती हैं। उनकी कई कहानियों के शीर्षक भी भावनात्मक आधार पर रखे गये हैं जैसे- उदास चाँदनी, जश्न, राहत, छोटी-छोटी चीजें, रमजान में मौत, तमाशा, रिश्ता, लड़ाई, रिहाई, ठंडे बस्ते आदि। महँगाई के दौर में एक साधारण परिवार की चिंताओं को वे 'तसबीह' कहानी में दिखाते हैं।

इसी तरह 'छोटी-छोटी चीजें' कहानी में संजू और उसकी पत्नी दोनों दिन भर काम करने के बावजूद घर की छोटी- छोटी चीजों को खरीदने में सक्षम नहीं होते। संजू के रिश्तेदार, मित्र या पड़ोसी उसके घर में जिस भी सामान की कमी देखते उसे मदद स्वरूप दिलवा देते। अपने परिवार की खुशियों को पूरा न कर पाने के कारण वह अपने को उपेक्षित महसूस करने लगता है और अपनी खीझ को मिटाने के लिए पत्नी को मारता है। इसी प्रकार 'तमाशा' कहानी में गरीब मुस्लिम परिवार की पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली संघर्ष गाथा को प्रस्तुत किया गया है । अधेड़ उम्र की परित्यक्ता सकीना, जो अपनी चार बेटियों और एक बेटे को लेकर अपने जीवन में जैसा संघर्ष कर रही होती है, कुछ साल बाद उसकी बड़ी बेटी के जीवन में पति के असामयिक निधन के बाद वैसा ही संघर्ष शुरू होता है। जीवन के संघर्षों से लड़ती हुई सकीना अपनी बेटी के विवाह में 'सब तमाशा है' कह कर जीवन की वास्तविकता को व्यक्त करती है। जिसमें व्यक्ति नायक-नायिका या सहायक पात्र की भूमिका अदा करता है। 'पुल पुख्ता' कहानी में सरकार गरीब मुसलमानों की बस्ती खाली करने के लिए, बस्ती से लगे हुए टूटे पुल का निर्माण नहीं कराती और बरसात में पुल टूटने से सैकड़ों लोगों के जीवनभर की मेहनत पानी के साथ बह जाने के डर को दिखाया गया है। इसी तरह 'बावड़ी' कहानी में भी मंज़ूर ने सरकारी तन्त्र की निरंकुशता और लापरवाही को दिखाया है। भोपाल गैस त्रासदी का जिक्र भी उनकी रचनाओं में बार-बार आता है और उस त्रासदी में सरकार द्वारा लोगों की क्षतिपूर्ति के वादों के जमीनी हकीकत को भी बताया गया है।

हिन्दी साहित्य में मंजूर एहतेशाम एक सेतु का काम करते हैं। जिस सेतु के माध्यम से पाठक-वर्ग न सिर्फ मुस्लिम समाज कि सामान्य समस्याओं से रु-ब-रु होता है अपितु मुस्लिम समाज के मनोभाव को भी जान पाता है। मंजूर एक ऐसे रचनाकार हैं

जिनकी रचनाओं में मुस्लिम समाज का युवा वर्ग विशेष रूप से दिखाई देता है। धर्म, समाज, राष्ट्र आदि पर इस समाज के युवाओं कि सुलझी सोच मंजूर के युवा पात्रों की प्रमुख विशेषता है। मंजूर की रचनाओं में निम्नवर्गीय पात्र धर्म के प्रति अधिक श्रद्धा व निष्ठा का भाव रखते हैं, जबकि उच्चवर्ग के पात्रों में धर्म के प्रति निष्ठा भाव अपेक्षाकृत कम है। निम्न वर्ग धर्मभीरु है जबकि उच्च वर्ग धर्म को खोल की तरह आवश्यकतानुसार ओढ़ लेता है। इन दोनों से अलग एक तीसरे वर्ग को भी देखा जा सकता है, जो प्रगतिशील किस्म का है। वह धार्मिक पाखण्डो, रूढ़ियो, मान्यताओं तथा कर्मकाण्डो पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। धर्म जैसे संवेदनशील मुद्दों पर अपनी राय रखता है। मंज़ूर ने इन पात्रों के माध्यम से कहीं-कहीं धार्मिक कर्मकाण्डो पर व्यंग्य भी किया है, जैसे 'दास्तान-ए-लापता' उपन्यास में एक जगह 'दुल्हन चची' हज के समय 'संगे-असवद' को चूमने का मजाक उड़ाते हुए कहती हैं-"देखा एक बड़ा-सा काला पत्थर बोसा देनेवाले दीवानों के थूक से लथपथ, वहाँ जड़ा है। लोग उसे चूम रहे हैं, चाट रहे हैं, बस नहीं चल रहा, नहीं तो शायद चबा भी डालें। हमारे मुँह से यूँ एक बालिश्त दूर रह गया था और हम उसे चूमनें ही जा रहे थे कि उस थूक को देखकर ऐसी घिन आई कि हमने अपना मुँह अलग कर लिया।"[1] इसके अलावा कई ऐसे पहलू हैं, जिसको मंज़ूर ने अपनी रचनाओं में पूरी मानवीयता के साथ समेटा है। ऐतिहासिक घटनाओं का हवाला देते हुए वे धर्म, जाति, सम्प्रदाय, भाषा, क्षेत्र, वर्ण, लिंग, अमीर-गरीब, अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक आदि की सीमा से बाहर आने का आग्रह करते हैं तथा एक स्वस्थ समाज के निर्माण में अपनी भूमिका अदा करने का संदेश देते हैं।

[1] मंज़ूर एहतेशाम, दास्तान-ए-लापता, पृ०-43

चतुर्थ अध्याय

मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में अभिव्यक्त मुस्लिम समाज की स्थिति

चतुर्थ अध्याय

मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में अभिव्यक्त मुस्लिम समाज की स्थिति

अर्नेस्ट ए बेकर ने उपन्यास को जीवन तथा समाज की व्याख्या का सर्वोत्तम साधन बताया है। आधुनिक दौर में उपन्यास को सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास की कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जाता है। जिसमें मानवीय संवेदना, सामाजिक जागरूकता, समस्याओं के प्रति एक नया दृष्टिकोण, सत्य और कल्पना का अद्‌भुत मिश्रण देखने को मिलता है। मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यासों में इन सभी बिंदुओं को समाहित करते हुए भारतीय मुसलमानों की वर्तमान स्थिति को दिखाने का प्रयास किया है। उनके उपन्यासों में मुस्लिम समाज के विभिन्न रूपों, स्थितियों तथा समस्याओं को देखा जा सकता है। वर्तमान दौर में भारतीय मुसलमान किन-किन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व सांप्रदायिक चुनौतियों से जूझ रहा है ? इसके अलावा एक मध्यवर्गीय समाज भूमंडलीकरण, उत्तर-आधुनिकता, उदारीकरण आदि वैश्विक शक्तियों से किस रूप में प्रभावित हो रहा है? इन सभी समस्याओं को केंद्र में रखकर मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यासों को एक व्यापक परिदृश्य प्रदान किया है। उनका उपन्यास ‘दास्तान-ए-लापता’ में एक मध्यवर्गीय युवक स्व-अस्तित्व और मानवीयता की खोज करता हुआ स्वयं को अस्तित्वहीन और असमायोजित पाता है। यह उपन्यास अपने विषय-वस्तु व शिल्पगत विशेषता के कारण भारत ही नहीं वरन् विदेशों में भी चर्चित रहा है। इसी प्रकार उनके अन्य उपन्यासों को भी देखा जा सकता है। इस अध्याय में हम उनके उपन्यासों में अभिव्यक्त भारतीय मुसलमानों के विषय में विविध बिंदुओं के आधार पर शोधपरक अध्ययन व विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे-

4.1. सामाजिक स्वरूप-

किसी भी समाज की स्थिति को जानने के लिए यह आवश्यक होता है कि हम उसके विभिन्न संरचनागत व संगठनात्मक पहलुओं पर विचार करें, जिससे उस समाज का निर्माण हुआ है। हम यहाँ भारतीय मुसलमानों के संदर्भ में बात कर रहे हैं, अतः भारतीय समाज की रूपरेखा व उसकी सांगठनिक इकाइयों के बारे में जानना आवश्यक है। हम जानते हैं कि भारतीय समाज विभिन्न वर्गों, धर्मों और जातियों में बँटा हुआ

समाज है। यहाँ जाति व्यवस्था एक मजबूत सामाजिक ढाँचा है, जो समाज को विभिन्न समूहों में बाँटती है। इसी के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक स्वीकार्यता, प्रतिष्ठा आदि निर्धारित होती है। जाति व्यवस्था हिंदू समाज में जितने व्यापक रूप में प्रचलित है, उतने ही व्यापक रूप में मुसलमानों के यहाँ भी देखी जा सकती है। जिसकी विस्तारपूर्वक चर्चा हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। अतः हम यहाँ भारतीय मुसलमानों की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों के संदर्भ में मुसलमानों की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करेंगे-

4.1.1. सामाजिक असमानता-

वर्तमान परिवेश में तमाम औद्योगिक, वैज्ञानिक व तकनीकी विकास के बावजूद सामाजिक असमानता एक बड़ी समस्या के रूप में उपस्थित है। यह असमानता कई रूपों में देखी जा सकती है,जैसे- आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, लैंगिक, क्षेत्रीय व भाषाई आदि कई स्तरों पर देखी जा सकती है। भारतीय समाज में व्याप्त असमानता पर चिंता व्यक्त करते हुए 'ज्याँ द्रेज' व 'अमर्त्य सेन' लिखते हैं-"दुनिया के सभी देशों में अलग-अलग तरह की असमानताएँ व्याप्त हैं। लेकिन भारत में घातक विभाजनों और विषमताओं का ऐसा घालमेल है जो अपनी तरह का अकेला है। कम ही देश ऐसे होंगे जिन्हें भारी आर्थिक असमानता के साथ-साथ जाति, वर्ग और लिंग समेत कई तरह की घोर विषमताओं का सामना करना पड़ रहा होगा। भारत में जाति की विचित्र भूमिका है, जो इसे बाकी पूरी दुनिया से अलग करती है।"[1] भारतीय मुसलमानों में भी जाति, वर्ग व सम्प्रदाय के आधार पर घोर असमानता देखी जा सकती है। मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में भी विभिन्न वर्गों, जातियों, धर्मों का चित्रण देखने को मिलता है।

4.1.1.1. वर्गगत असमानता-

मंजूर ने अपने उपन्यासों में विभिन्न वर्गों के पात्रों का चित्रण किया है। उच्चवर्गीय मुसलमानों के जीवन-स्तर, रहन-सहन, सोच-विचार आदि को 'पहर ढलते' उपन्यास में बखूबी दिखाया गया है। इस उपन्यास में हनीफ मियाँ शहर के रईस हैं। उनके घर कव्वाली के आयोजन पर शहर के बड़े-बड़े जाने-माने लोग शिरकत करते हैं। जिनमें कैप्टन मुजीब, मंत्री जफर बेग, कलीम, बेगम साहिबा, अल्ताफ, नवाब साहब आदि

---

[1], ज्यां द्रेज, अमर्त्य सेन, भारत और उसके विरोधाभास, पृष्ठ 217

शामिल हैं। इस उपन्यास में पुराने नवाबों, राजाओं और जमीदारों में लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रति भारी असंतोष को दिखाया गया है। इस उपन्यास में उच्चवर्गीय समाज के रहन-सहन, वेशभूषा, दिखावा, झूठ, अवैध संबंधों को बखूबी चित्रित किया गया है। भारतीय समाज में उच्चवर्ग को विशेष सुविधा प्राप्त है। भारतीय समाज में व्याप्त उच्चवर्गीय वर्चस्व को मंजूर ने इस प्रकार दिखाया है-“नवाब साहब, बेगम साहिबा, रहमान मियाँ, कैप्टन मुजीब, जफर बेग, हनीफ मियाँ, सामने गाते हुए कव्वाल- उसे लगा जैसे यह सब एक फैंटेसी है। एक बेतुका ख्वाब जिसमें बेरख्त चीजें, बेमौका टूटती और जुड़ती रहती हैं। वैसे इन लोगों को करना भी क्या है ! लाख लैंड-सीलिंग एक्ट्स आ जाए, लाख तब्दीली के नारे, लेकिन इनके या इनकी औलादों के लिए कुछ कम नहीं पड़ने वाला। यही क्लास है जो हुकूमत करता आया है, लगता है यही आगे भी करेगा ! हिंदू, मुसलमान की नहीं, बात क्लास की थी। इन्हीं की औलादें पढ़ेंगी-लिखेंगी, इन्हीं को नौकरियाँ मिलेंगी, यही कानून बनायेंगे और यही फैसले करेंगे।”[1] मंजूर वर्ग आधारित असमानता को अपने अन्य उपन्यासों में भी दिखाते हैं। उनके अधिकांश पात्र मध्य वर्ग से संबंधित है। हम जानते हैं कि उत्तर-आधुनिकता और भूमंडलीकरण का सर्वाधिक दबाव मध्यवर्ग पर ही पड़ा है। वर्तमान में यह वर्ग सर्वाधिक संघर्षरत तथा अनिश्चितता की स्थिति में है। मंजूर के मध्यवर्गीय पात्रों में ‘कुछ दिन और’ उपन्यास में राजू, ‘दास्तान-ए-लापता’ उपन्यास में जमीर अहमद खान, ‘मदरसा’ उपन्यास में साबिर नईम, ‘सूखा बरगद’ उपन्यास में सुहेल, रशीदा, अब्दुल वहीद आदि पात्र प्रमुख रूप से देखे जा सकते हैं। ये सभी पात्र आधुनिक चुनौतियों का सामना करने के लिए संघर्ष करते दिखाई देते हैं। वे अपने स्व की तलाश में अपने परंपरागत मूल्यों से विलग नहीं हो पाते। वे छद्म भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं की आहुति नहीं देना चाहते। रोजमर्रा के भागदौड़ भरी जीवनशैली में वे स्वयं को समायोजित करने में भी असमर्थ होते हैं। ‘दास्तान-ए-लापता’ उपन्यास में जमीर अहमद खान का चरित्र ऐसे ही एक मध्यवर्गीय युवक का चरित्र है, जो अपनी असमर्थता के कारण खुद को बीमार महसूस करने लगता है। मंजूर ने मध्यवर्गीय समाज में पारिवारिक विखंडन की बढ़ती समस्या पर भी पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है।

इसके अलावा मंजूर ने निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज के जीवन-संघर्ष व कठिनाईयों को भी अपने उपन्यासों में दिखाने का प्रयास किया है। ‘सूखा बरगद’ उपन्यास में सईदा

---

[1] मंजूर एहतेशाम, पहर ढलते, पृष्ठ 101

आपा का चरित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पति उन्हें छोड़ कर चला गया है। पाँच बच्चों की जिम्मेदारी उनके सर पर होती है। धनाभाव के कारण वे अपनी बेटियों का विवाह नहीं कर पाती। परिवार का पालन-पोषण करने के लिए वे लोगो के घरों में मजदूरी करती है। इसी प्रकार 'फफू' के चरित्र को भी देखा जा सकता है, जो कि एक विधवा है। वे शहर की एक गंदी बस्ती में रहती हैं। रोजगार के लिए मस्जिद में झाड़ू लगाती है और बच्चों को कुरान पढ़ाती हैं। इसके अलावा हब्बा बुआ, इब्बू दादा, मुरशद, कल्लो आदि पात्रों के माध्यम से निम्नवर्गीय मुसलमानों के रहन-सहन का चित्रण किया गया है।

4.1.1.2. जातिगत असमानता-

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। पिछले अध्याय में भारतीय मुसलमानों में प्रचलित जाति-व्यवस्था और उनके संगठन व क्षेत्रीयता के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। हमने देखा कि भारतीय मुसलमानों को अशराफ, अजलाफ़ और अरजाल तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। इसके अलावा इन श्रेणियों के भीतर भी अनेक उपश्रेणियाँ पाई जाती हैं। जिनमें से अधिकतर का विभाजन पेशों के आधार पर हुआ है। मंजूर एहतेशाम भारतीय मुसलमानों में प्रचलित जाति-व्यवस्था को उतना अधिक महत्त्व नहीं देते। जबकि अन्य मुस्लिम रचनाकारों के यहाँ जातिगत असमानता पर अधिक जोर दिया गया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह, राही मासूम रजा, शानी, असगर वजाहत, नासिरा शर्मा आदि रचनाकारों ने मुस्लिम समाज के विभिन्न जातियों, उनके व्यवसाय, समस्या व उनमे व्याप्त ऊँच-नीच की भावना को विस्तार से दिखाया है। जबकि मंजूर एहतेशाम मुस्लिम समाज के अशराफ मुसलमानों तक ही स्वयं को केंद्रित रखते हैं। उनके सभी उपन्यासों के केंद्रीय पात्र जैसे- 'सूखा बरगद' में अब्दुल वहीद खां, सुहेल, रशीदा, 'दास्तान-ए-लापता' में जमीर अहमद खान, 'पहर ढलते' उपन्यास में नवाब साहब, जफर बेग, हनीफ मियाँ, कैप्टन मुजीब, बेगम साहिबा, शबनम, अल्ताफ, 'बशारत मंजिल' उपन्यास में मिर्जा जमाल बेग, संजीदा सोज, बंदा अली, अमतुल कबीर, जहाँआरा बेगम, 'मदरसा' उपन्यास में साबिर नईम, हमीदा, आमिर आदि सभी उच्चवर्ग से संबंधित है। कहीं-कहीं नाम मात्र के दूसरे वर्ग के मुसलमानों का जिक्र देखने को मिलता है।

4.1.1.3. धार्मिक असमानता-

मंजूर ने अपने उपन्यासों में धार्मिक विषमता पर गहरी चिंता व्यक्त की है। भारतीय समाज में हिंदू-मुसलमान के बीच सामाजिक स्तर पर एक दूरी बनी हुई है। जिसे कम करने का प्रयास मंजूर के सभी उपन्यासों में देखा जा सकता है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में सुहेल, गीता शर्मा नाम की एक हिंदू लड़की से प्रेम करता है, लेकिन विवाह नहीं कर पाता। सुहेल जब स्कूल कॉलेज या अन्य स्थानों पर लोगों से मिलता-जुलता है, तो उसकी पहचान एक मुस्लिम युवक के रूप में करायी जाती है, जिससे वह दुखी है। इसी प्रकार रशीदा विजय से प्रेम करती है, लेकिन समाज के भय से वैवाहिक संबंध स्थापित नहीं कर पाती। मंजूर ने हिंदू-मुस्लिम भेदभाव के साथ-साथ मुसलमान और सिक्खों के बीच के आपसी मतभेद को 'मदरसा' उपन्यास में दिखाया है। उपन्यास का नायक 'साबिर नईम' एक सिक्ख लड़की 'पिंकी' से विवाह करता है। पिंकी का भाई दर्शन सिंह बेदी साबिर का अच्छा मित्र है, बावजूद इसके अपनी बहन का विवाह एक मुस्लिम लड़के से होना उसे मंजूर नहीं है। उसपर सामाजिक दबाव इतना अधिक बढ़ जाता है कि वह साबिर को जान से मारने के लिए भी तैयार हो जाता है। मुसलमान और सिक्ख के आपसी संबंध के बारे में मंजूर लिखते हैं कि सिक्खों और मुसलमानों के बीच इतिहास ने न पाटी जा सकने वाली खाई खोदी हुई है, जिस कारण आज भी एक दूरी बनी हुई है। वहीं सूखा बरगद में 'अब्दुल वहीद' एक आशावादी पात्र हैं, जो समाज में फैले हिंदू-मुसलमान के आपसी भेदभाव और नफरत को क्षणिक मानते हैं। वह सुहेल को समझाते हैं कि यह नफरत का खेल अधिक दिनों तक नहीं चलने वाला है।

इस प्रकार भारत में मुसलमानों का चरित्र जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है उससे अपने ही देश में मुसलमानों को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। अक्सर मुसलमानों पर पाकिस्तान समर्थक होने का आरोप लगाया जाता है। मंजूर ने 'सूखा बरगद' उपन्यास में सुहेल और विजय के आपसी बातचीत व मतभेद के माध्यम से इस समस्या को दिखाया है। सुहेल भारत और पाकिस्तान युद्ध के दौरान हिंदुओं द्वारा मुसलमानों पर रेडियो पाकिस्तान छिप-छिपकर सुनने का आरोप लगाता है, इस पर सुहेल कहता है- "खुल्लम-खुल्ला वह सुनता है जिसे यकीन हो कि उसे शक की नजर से नहीं देखा जाएगा। मुसलमानों को इतनी इज्जत दी ही कहाँ गई है कि उसमें इतना सेल्फ कॉन्फिडेंस आ सके ! उसे तो ज्यादा से ज्यादा यह समझ लिया गया है कि पड़ा रहने दो !

जाना तो इसे पाकिस्तान ही है! जब तक हो सके बर्दाश्त कर लो!"[1] भारत में मुसलमानों से बात-बात पर देशभक्ति का सबूत माँगा जाता है। मंजूर ने 'मदरसा' उपन्यास में दिखाया है कि किस प्रकार भारत-पाकिस्तान मैच के दौरान पूरे देश में अजीब तनावपूर्ण स्थिति बना दी जाती है? भारत में धार्मिक जड़ता और कट्टरता इस हद तक हावी है कि व्यक्ति के साथ उसकी धार्मिक पहचान प्रमुख और उसके स्वयं के विचार और व्यवहार नगण्य हो जाते हैं। धार्मिक असमानता के संबंध में सच्चर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि-"भेदभाव भरे रुख से प्रताड़ित होने की भावना मुस्लिमों में खासतौर से युवकों में काफी ज्यादा है। मुस्लिम इलाके में नकाराजन सुविधाओं से लेकर राजनीति और प्रशासन में उनके प्रतिनिधित्व का न होना और पुलिस द्वारा उन पर किए गए अत्याचार मुस्लिमों के बड़े हिस्से में भेदभाव बरते जाने की धारणा घर कर गई है।.....इस भेदभाव की भावना ने पहचान और असुरक्षा के मुद्दों के साथ-साथ समुदाय में हीन भावना भर दी है।"[2] इसके अलावा मंजूर ने भाषाई विवाद, लिंगभेद, आर्थिक असमानता आदि को भी अपने उपन्यासों में दिखाया है। मंजूर ने वर्गगत असमानता और धार्मिक संघर्ष को समाज के लिए विशेष रूप से विनाशकारी माना है। उनका मानना है कि धार्मिक असमानता भी एक स्तर पर जाकर समाप्त हो जाती है और वह एक वर्ग के रूप में पहचानी जाने लगती है। इसलिए आपसी सद्भाव बेहद जरूरी है। वे लिखते हैं-"देश को एक मिली-जुली तहजीब की जरूरत है, एक मिली-जुली भाषा चाहिए, जिसे सब अपना समझ सके। उसके लिए सबको थोड़ी-थोड़ी कुर्बानी देनी होगी- बात हिंदू और मुसलमान की नहीं, वर्गों की है। अगर एक ही वर्ग में पाँच हिंदू, पाँच मुसलमान एक लाइन में खड़े कर दिए जाए तो देखकर उनका धर्म कौन बता सकता है।"[3] इस प्रकार मंजूर एहतेशाम अपने उपन्यासों में सामाजिक असमानता को समाप्त करके समतामूलक समाज की परिकल्पना करते हैं।

4.1.2. स्त्रियों की स्थिति-

मंजूर ने अपने उपन्यासों में मुस्लिम समाज के हर वर्ग के स्त्रियों की समस्या को विभिन्न पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में 'रशीदा' आधुनिक शिक्षा प्राप्त एक मध्यवर्गीय स्त्री है। वह आकाशवाणी रेडियो में नौकरी करती

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 81

[2] सच्चर कमेटी रिपोर्ट, पृष्ठ 14

[3] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 88

है। वह गंभीर, विचारशील और संकोची प्रवृत्ति की है। वह 'विजय' नामक एक हिंदू युवक से प्रेम करती है, लेकिन विवाह करने का साहस नहीं जुटा पाती। रशीदा की माँ एक पारंपरिक मुस्लिम महिला है, धार्मिक-शिक्षा पर विशेष बल देती है। इसके अलावा इस उपन्यास में निम्नवर्गीय स्त्री पात्रों के रूप में 'फफू' और 'सईदा' का चरित्र विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। इनके चरित्र के माध्यम से मंजूर ने विधवा और परित्यक्ता स्त्रियों के जीवन संघर्ष को दिखाया है। सईदा का पति उन्हें छोड़कर दूसरी स्त्री के साथ चला जाता है। ऐसे में सईदा पर पाँच बच्चों की जिम्मेदारी आ जाती है। उपन्यास में उनकी समस्याओं को इस प्रकार दिखाया गया है-"सईदा को घर का चूल्हा जलाए रखने के लिए जाने क्या-क्या करना पड़ता था। खानदान में अगर कहीं शादी है, तो बावर्ची खाने की जिम्मेदारी से लेकर, अगर किसी के घर काम करने वाली बैठ गई है, तो झाड़ू बर्तन तक, वह सब करती थी और खानदान वालों की उतरनें, अपनी लड़कियों को पहनने के लिए, जकात खैरात, बाकी खर्चा चलाने के लिए, वह लेने पर मजबूर थी।"[1] धनाभाव के कारण वह अपनी लड़कियों का विवाह करने में असमर्थ है। इसी प्रकार विधवा स्त्री के जीवन-संघर्ष को फफू के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। फफू मात्र 35 वर्ष की आयु में विधवा हो जाती है। अपना खर्च चलाने के लिए व मुहल्ले भर के बच्चों को दीनी तालीम दिया करती है और मस्जिद में साफ-सफाई का काम भी करती है। इन दोनों चरित्रों के माध्यम से लेखक ने महिलाओं के समक्ष उपस्थित रोजगार संबंधी समस्या को भी दिखाने का प्रयास किया है।

इसी प्रकार 'दास्तान-ए-लापता' उपन्यास में 'राहत' का चरित्र एक सीधी-साधी घरेलू महिला के रूप में सामने आता है। वह अपने पति के नकारेपन से परेशान होकर मायके चली जाती है और अंत में अलग होने का निश्चय करती है। इसके अलावा इस उपन्यास में 'दुल्हन चची' का चरित्र विशेष रूप से आकर्षित करता है। वे धार्मिक-पाखंड का विरोध करती हैं। वहीं वसीमा बेगम एक आधुनिक महिला के रूप में चित्रित हैं, जो यौन स्वतंत्रता में विश्वास रखती हैं। इसी तरह अन्य महिला पात्र भी इस उपन्यास में वर्णित है। ठीक इसी प्रकार 'बशारत मंजिल' उपन्यास में अमतुल कबीर एक पढ़ी-लिखी महिला हैं। उन्हें उर्दू और अरबी भाषा का अच्छा ज्ञान है।

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 28

मंजूर ने बेमेल विवाह की समस्या को 'पहर ढलते' उपन्यास में दिखाया है। इसमें शबनम का विवाह आर्थिक तंगी के कारण एक अधेड़ उम्र के युवक हनीफ मियाँ से हो जाता है। जो शबनम के पिता रहमान मियाँ का हम उम्र साथी व दोस्त है। इस विवाह से असंतुष्ट शबनम, शहाब नाम के एक युवक से शारीरिक संबंध बनाती है, जिस कारण परिवार में तनावपूर्ण वातावरण बना रहता है। इसके अलावा इस उपन्यास में उच्चवर्गीय समाज में महिलाओं के समलैंगिक संबंधों का भी जिक्र मिलता है।

गरीब मुस्लिम महिलाओं के समक्ष स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को 'सूखा बरगद' में कल्लो की माँ के संदर्भ में दिखाया गया है। कल्लो की माँ को टी०बी० है। वह अंधेरी सीलनभरी कोठरी में बैठकर खाँसती रहती है। निम्नवर्गीय मुस्लिम लड़कियों की शिक्षा संबंधी समस्या को इस प्रकार देखा जा सकता है-"कल्लो को घर के कामकाज में हाथ बँटाने से इतनी भी फुर्सत नहीं थी कि वह फफू के घर पढ़ने भी आ पाये। गंदे, फटे कपड़े पहने, कभी बर्तन साफ करती, कभी भैंस के आगे घास की पुले खोलती।"[1] गरीबी के कारण निम्नवर्गीय समाज में स्त्रियों की शिक्षा तो पूरी नहीं हो पाती, साथ ही विवाह की समस्या भी जटिल रूप से देखी जा सकती है। सईदा आपा अपनी बेटियों का विवाह धनाभाव के कारण नहीं कर पाती। आर्थिक तंगी के कारण उनकी बड़ी बेटी अनैतिक संबंध बनाती है। इसी प्रकार महिलाओं के समक्ष वेश्यावृत्ति की समस्या को 'बशारत मंजिल' उपन्यास में भी दिखाया गया है।

मंजूर ने समाज के विविध पक्षों का चित्रण करते हुए मुस्लिम महिलाओं का चित्रण किया है। उनकी स्त्री पात्र अशिक्षित भी है और पढ़ी-लिखी भी, धर्मभीरु भी है और कुछ अत्यंत आधुनिक भी। मंजूर आधुनिक शिक्षा के समर्थक हैं, इसलिए लड़कियों को शिक्षा के नाम पर दी जाने वाली दीनी तालीम का विरोध करते हैं। मुस्लिम लड़कियों व महिलाओं में शिक्षा के बढ़ते प्रचलन को उन्होंने एक सकारात्मक बदलाव के रूप में चित्रित किया है। मंजूर पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था, रूढ़िवादिता तथा सामाजिक बंधनों का विरोध करते हैं। वे चाहते हैं कि भारत की महिलाएँ इन सभी पारंपरिक बंधनों को तोड़ते हुए आधुनिक शिक्षा व्यवस्था से जुड़ें। भारत में मुसलमानों की एक बड़ी आबादी आर्थिक विपन्नता में जीवन बसर कर रही है, लेकिन मुसलमान आधुनिक शिक्षा व्यवस्था व संसाधनों से तेजी से जुड़ रहे हैं। अतः उनके समाज में स्त्रियों

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 26

की स्थिति में भी परिवर्तन आ रहा है। आज पहले की अपेक्षा अधिक संख्या में मुस्लिम लड़कियाँ शिक्षा और नौकरी के क्षेत्र में आगे आ रही हैं। मंजूर ने इन दोनों ही वर्गों के स्त्रियों के रहन-सहन, सोच-विचार, समस्याओं और चुनौतियों को अपने उपन्यास में दिखाया है।

4.1.3. पारिवारिक विघटन-

आधुनिक युग में तेजी से बदलते हुए सामाजिक मूल्यों, आदर्शों व आवश्यकताओं ने पारिवारिक संबंधों को भी प्रभावित किया है। बढ़ता हुआ आर्थिक दबाव, नवीन जीवन-शैली, आवश्यकता तथा बदलते जीवन-मूल्यों का प्रभाव बीसवीं शताब्दी के भारतीय समाज पर साफ तौर पर देखा जा सकता है। विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद परंपरागत संयुक्त परिवार के विघटन की प्रक्रिया को भारतीय समाज में एक नए बदलाव के रूप में रेखांकित किया जाता है। इस बदलाव को साहित्यकारों ने प्रमुखता से अपने उपन्यासों, कहानियों व कविताओं आदि के माध्यम से उठाया है। इस सम्बन्ध में नंददुलारे वाजपेयी ने 'आलोचना' पत्रिका के संपादकीय में लिखा है- "हमारे वर्तमान समाज का नया मध्य वर्ग अपने परिवार की मर्यादा और स्तर कायम रखने तथा रोजी-रोटी कमाने में ही सारी शक्ति लगा रहा है।......इस प्रकार से समाज से विच्छिन्न होकर अपनी इकाई अलग ही बनाते जा रहे है।"[1] आधुनिकता का सर्वाधिक दबाव मध्यवर्ग पर ही पड़ा है। इसलिए पारिवारिक विघटन की समस्या मध्यवर्ग में अधिक दिखाई देती है।

हिन्दी के अन्य रचनाकारों की भांति मंजूर एहतेशाम ने भी पारिवारिक विघटन को मध्यवर्गीय समाज की मुख्य समस्या के रूप में चित्रित किया है। उनका पहला उपन्यास 'कुछ दिन और' इसी समस्या पर केंद्रित है। इस उपन्यास में राजू और उसकी पत्नी के संबंध विच्छेद का प्रमुख कारण मध्यवर्ग पर बढ़ता आर्थिक दबाव, जीवन-शैली, परिवार की मर्यादा, मानवीय मूल्यों का ह्रास आदि है। मंजूर ने 'दास्तान-ए-लापता', 'बशारत मंजिल', 'पहर ढलते' और 'मदरसा' इन सभी उपन्यासों में पारिवारिक विघटन को दिखाया है। जिस प्रकार 'कुछ दिन और' उपन्यास में राजू की पत्नी उपन्यास के अंत में उससे तलाक ले लेती है, उसी प्रकार 'दास्तान-ए-लापता' उपन्यास में राहत अपने पति जमीर अहमद खान के नकारेपन और गैर जिम्मेदारियों से त्रस्त होकर अंत में जमीर से तलाक माँगती है। जमीर अहमद खान अपने पारिवारिक दायित्वों को ठीक से निर्वहन

[1] संपादक नंददुलारे वाजपेई, आलोचना पत्रिका, वर्ष 5 अंक 1 जनवरी 1957, पृष्ठ 2

करने में असमर्थ होता है। पत्नी एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाती है और उसी से दोनों बच्चियों का पालन-पोषण करती है। जमीर के शराब पीने, परस्त्रीगमन और काम न करने के कारण राहत को उससे अलग होने का निर्णय करना पड़ता है। इसी प्रकार हम 'मदरसा' उपन्यास को भी देख सकते हैं। इस उपन्यास में भी मरियम अपने पति साबिर से अलग हो जाती है।

मंजूर ने संयुक्त परिवार को टूटते हुए 'बशारत मंजिल' नामक उपन्यास में भी दिखाया है। 'बशारत मंजिल' एक बड़ा आलीशान पुश्तैनी मकान है, जो समय के साथ खंडहर में तब्दील हो चुका है। बदलते दौर के साथ पारिवारिक सम्बन्धों में आये बदलाव और मकान की दुर्दशा पर दुख व्यक्त करते हुए संजीदा सोज कहते हैं-"मैं उस बशारत मंजिल में पहुँच गया था जिसकी बुनियादों पर मौजूदा खंडहर खड़ा था। मैंने खद्दर को स्वागत करते और परिवार के अन्य सदस्यों से मेरा परिचय कराते देखा था।......यह वह अविभाजित बशारत मंजिल थी जिसका आधा हिस्सा बाद में किराए पर दिया जाना और फिर बेच दिया जाना था। झगड़ती बिब्बो बिल्लो और बीच-बचाव करती खद्दर .....कुल्हती अमीना बेगम.... कमसिन खद्दर, दुल्हन बनी और भक-भक जलती.... मैं आग पर लेटा था, मेरे चौतरफ आग की लपटें थी... घर में कोहराम मचा था।"[1] इस उपन्यास में व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के कारण बिगड़ते पारिवारिक संबंधों को दिखाया गया है। दो भाइयों के बीच बिगड़ते रिश्ते को बंदा अली और संजीदा सोज के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। पिता और पुत्री के बीच एक अजनबियत और दूरी को संजीदा सोज और बिब्बो-बिल्लो के चरित्र के रूप में देखा जा सकता है। इसी तरह माँ और बेटे के बीच बढ़ती दूरी और स्वार्थपरकता को 'मदरसा' उपन्यास में दिखाया गया है। इस उपन्यास में साबिर नईम की माँ उसे संपत्ति में हिस्सा नहीं देती और घर से बेदखल कर देती है। बेमेल विवाह के कारण पारिवारिक संबंधों में आ रही समस्या को 'पहर ढलते' उपन्यास में देखा जा सकता है। जिसमें शबनम अपने बूढ़े पति 'हनीफ मियाँ' का प्रतिकार करती है और 'शहाब' नाम के युवक से संबंध बनाती है। शबनम के द्वारा परपुरुष से बनाए गए संबंधों की वजह से पारिवारिक कलह उत्पन्न होता है।

मंजूर ने पारिवारिक विघटन के अन्य कई कारणों को अपने उपन्यासों में दिखाया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में सईदा आपा का पति अपनी पत्नी और पाँच बच्चों

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 243

को छोड़कर दूसरी लड़की के साथ रहने लगता है। जिस कारण सईदा का परिवार विखंडित हो जाता है। जबकि फफू के पति व पुत्र का देहांत हो जाने के कारण वो अकेली हो जाती हैं। वैचारिक मतभेद के कारण अब्दुल वहीद और उनके बड़े भाई के बीच अलगाव की स्थिति देखी जा सकती है। इसी प्रकार मंजूर ने अपने उपन्यासों में अनेक ऐसे संदर्भ प्रस्तुत करते हैं, जिसमें पारिवारिक विखंडन की समस्या देखी जा सकती है।

4.1.4. अंतर्जातीय विवाह की समस्या-

भारतीय समाज अनेक रूढ़िवादी बन्धनों से बँधा हुआ है। जिसमे जाति, कुल, गोत्र, वर्ग, वर्ण आदि विषमताएँ आज भी मजबूती से विद्यमान है। प्रत्येक वर्ग अपनी रक्तशुद्धता पर विशेष बल देता है। भारतीय समाज में अंतर्जातीय विवाह को समाज द्वारा खुले रूप में स्वीकार नहीं किया जाता। हालांकि शहरी समाज में विशेषकर उच्चवर्ग और कुछ मध्यमवर्गीय परिवारों में अंतर्जातीय विवाह के प्रचलन को देखा जा सकता है। बावजूद इसके भारत में आज भी अंतर्जातीय विवाह को एक समस्या के रूप में देखा जाता है। दो भिन्न धर्मो के बीच होने वाले विवाह की समस्या को मंजूर एहतेशाम ने रशीदा और विजय, सुहेल और गीता, साबिर नईम और पिंकी के माध्यम से 'सूखा बरगद' और 'मदरसा' उपन्यास में दिखाया है। रशीदा विजय से प्रेम करती है, लेकिन सामाजिक बंधनों को तोड़ने का साहस नहीं जुटा पाती। परिणामस्वरूप दोनों के बीच दूरी बढ़ने लगती है और वे अलग हो जाते हैं। 'रशीदा' एक मध्यवर्गीय पात्र है, जो अपने परिवार, समाज और धार्मिक बंधनों से पूर्णत: मुक्त नहीं हो पाती। वहीं 'सुहेल' गीता नाम की एक हिंदू लड़की से प्रेम करता है। गीता की शादी उसके परिवार वाले कहीं और कर देते हैं। गीता चुपचाप इस विवाह को स्वीकार कर लेती है। इससे सुहेल के जीवन में काफी बदलाव आता है। वह गीता से विवाह न होने की वजह खुद को मुसलमान होना मानता है और समाज में फैली धार्मिक-जड़ता, विभेद और नफरत को वह पहली बार महसूस करता है। इसी प्रकार 'मदरसा' उपन्यास में मंजूर एहतेशाम ने सिक्ख और मुसलमान के बीच वैवाहिक समस्या को दिखाया है। 'पिंकी' एक सिक्ख परिवार से ताल्लुक रखती है और परिवार के खिलाफ घर से भाग कर वह साबिर से विवाह करती है। पिंकी का भाई 'दर्शन सिंह बेदी' इस विवाह को अपना अपमान समझता है और प्रतिशोध में कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। मंजूर ने इस उपन्यास में अंतर्जातीय विवाह की समस्या पर विचार करते हुए, इसके पीछे राजनीति शक्तियों का हाथ बताते हैं। वे लिखते हैं-"दो अलग-अलग मजहब को मानने वाले, अपने-अपने धर्म के साथ, पति-

पत्नी क्यों नहीं हो सकते? क्योंकि बड़ी टुकड़ियों में बँटा इंसान शासन करने वालों का काम आसान कर देता है।......क्या कोई सितारवादक, किसी वायलिन बजाने वाले, या ऐसे व्यक्ति के साथ नहीं रह सकता, जिसकी संगीत में रुचि न हो।"[1] इस प्रकार मंजूर धर्म को मानव जीवन की एक रुचि और आस्था के रूप में देखते हैं। धर्म इंसानों को एक दूसरे से जोड़ता है, बाँटता नहीं है। ऐसे में भला धर्म प्रेम संबंधों या मानवता के विरुद्ध कैसे हो सकता है? इस प्रकार मंजूर ने अंतर्जातीय विवाह की समस्या को सुलझाने का प्रयास किया है। मंजूर धार्मिक विद्वेष और नफरत को मिटाकर एक सौहार्दपूर्ण समाज की परिकल्पना करते हैं।

4.1.5. मानवीय मूल्यों का ह्रास-

बीसवीं शताब्दी में जहाँ एक ओर भारतीय समाज में सूचना और प्रौद्योगिकी का तेजी से विकास हुआ, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक मूल्यों, नैतिकता व व्यक्तिगत संबंधों में उत्तरोत्तर पतन होता दिखाई देता है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में समाज में हो रहे इन परिवर्तनों को तत्कालीन रचनाकारों ने प्रमुखता से उठाया है। धर्म, समाज, संस्कृति, शिक्षा, जीवन-स्तर, आचार-व्यवहार, मानसिकता में आ रहे बदलाव ने व्यक्ति-स्वतंत्रता, स्वकेंद्रीयता, स्वार्थपरकता आदि को बढ़ावा दिया। समाज में हो रहे इस बदलाव ने व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा, पारिवारिक विघटन, अकेलापन, कुंठा, संत्रास आदि स्थितियों को जन्म दिया। परिणामस्वरूप दया, सहानुभूति, परोपकार, सहयोग, ईमानदारी जैसे मानवीय मूल्य तेजी से समाज से विमुख होते गए। इससे न केवल संयुक्त परिवार का ढाँचा टूटा बल्कि एकल परिवार भी विखंडित हुआ। समाज में हो रहे इन मानवीय मूल्यों के ह्रास को मंजूर एहतेशाम ने अपनी रचनाओं में बड़ी शिद्दत से उठाया है। 'दास्तान-ए-लापता' उपन्यास में जमीर अहमद खान समाज में हो रहे अन्याय, झूठ, बेईमानी, धोखेबाजी आदि से त्रस्त होकर स्वयं को मानसिक रूप से बीमार महसूस करने लगता है। वह अजीज के साथ होटल का व्यवसाय करता है और अचानक एक दिन अजीज उस होटल पर अपना एकाधिकार कर जमीर अहमद खान को धंधे से बाहर कर देता है। इसी तरह उसके साथ कबाड़ी का काम करने वाले 'शराफत कबाड़ी' के झूठ, बेईमानी और धोखेबाजी से जमीर अहमद खान दुखी होता है। यही नहीं उसके जीवन में आने वाली हर स्त्री, मित्र, सहयोगी, नेता और व्यापारी सब के सब झूठ, बेईमान और मतलबपरस्त

[1] मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृष्ठ 90

होते हैं। मंजूर ने होटल के व्यवसाय के माध्यम से बेईमानी के धंधे को तेजी से बढ़ते हुए और ईमानदार व्यक्ति के संघर्ष को दिखाया है। जमीर जब होटल के धंधे को गहराई से समझता गया, तो उसने देखा कि होटल के आड़ में 'अजीज' ऊँचे लोगों को लड़कियाँ सप्लाई करता है। स्मगलिंग, जुआ खेलाना, कमीशनखोरी यह सब होटल के माध्यम से किया जा रहा है। जमीर अहमद खान वर्तमान परिवेश में आई विसंगतियों और बेईमानियों से दुखी है। इस उपन्यास में मंजूर लिखते हैं-"अजीज वास्तव में जमीर अहमद खान के लिए एक व्यक्ति नहीं, एक समूचे दौर और जमाने की अविस्मरणीय यादों का सिलसिला था। यह उसकी उम्र की वह मुद्दत थी जिसमें एक ओर जहाँ उसकी अक्षमताओं पर तसदीक की आखिरी मुहर लगी, वहीं यह भी देखने को मिला कि सक्रिय रूप से भ्रष्टाचार क्या होता है। ईमानदारी से बेईमानी करना कितना बड़ा गुण है, और दुनिया जिनके चलाए चल रही है वह किस दिशा में, यह भूल जाइए वह लोग कैसे होते हैं ?"[1] इस उपन्यास में जमीर अहमद खान एक चरित्र ही नही बल्कि एक प्रतिरूप भी है, जो अपने 'हम' को वर्तमान परिवेश और परिस्थितियों के साथ-साथ 'मैं' में नहीं बदल पाता। वह अपने भीतर विद्यमान मानवीय कमजोरियों और अपनी विशेषताओं के साथ बदलते दौर में समायोजित करने में असमर्थ होता हैं।

मंजूर ने मानवीय मूल्यों के ह्रास को 'बशारत मंजिल' उपन्यास में यथार्थपरक ढंग से दिखाया है। इस उपन्यास में संजीदा सोज अपने बड़े भाई बंदा अली के झूठ, बेईमानी, निर्दयता व क्रूरता को सहन नहीं कर पाता। एक बार बन्दा अली और संजीदा सोज घोड़ागाड़ी से तफरीह के लिए कछारिया जाते हैं। वहाँ किसी छोटी-सी बात पर तैश खाकर बंदा अली एक ग्रामीण को इतना मारता है कि उसकी मृत्यु हो जाती है। बंदा अली का यह हिंसक व्यवहार देखकर संजीदा के मन में बड़े भाई के लिए नफरत पैदा होती है। इसी प्रकार बिब्बो और बिल्लो एक युवक से प्रेम करती हैं और उससे शादी न होने पर अपने माता-पिता और छोटी बहन की हत्या कर देती है। मानवीय संबंधों का काल्पनिक और अति यथार्थपरक चित्रण करते हुए मंजूर ने नष्ट होते पारिवारिक और मानवीय मूल्यों को इस उपन्यास में दिखाया है। इसी प्रकार 'मदरसा' उपन्यास में साबिर का मरियम और अम्मा के साथ आपसी संबंधों में आई जटिलता को मानवीय मूल्यों के पतन के रूप में देखा जा सकता है। साबिर के पुश्तैनी जायदाद पर उसके फूफा का जबरदस्ती कब्जा कर लेना, अम्मा द्वारा सौतेले पिता की संपत्ति में हिस्सा न देना,

---

[1] मंजूर एहतेशाम, दास्तान-ए-लापता, पृष्ठ 166

मरियम का साबिर से अलग हो जाना, यह सब बदलते दौर में आर्थिक दबाव के कारण मानवीय संबंधों के बिखरने की स्थिति को दर्शाता है। इसी प्रकार 'पहर ढलते' उपन्यास में बहुरूपिये की तरह वेश बदलते पात्रों के माध्यम से, बदलते सामाजिक मूल्यों को देखा जा सकता है। इसके अलावा कई ऐसे संदर्भ और उदाहरण मंजूर के उपन्यासों में देखे जा सकते हैं, जिसमें मानवीय मूल्यों के विघटन को दिखाया गया है। मंजूर समय के साथ हो रहे इस बदलाव और मध्य वर्ग की बदलती मानसिकता, कठिनाईयों व समस्याओं को अपने उपन्यासों का विषय-वस्तु बनाया है। पूँजीवाद और भूमंडलीकरण के कारण लोगों के जीवन में आ रहे इस बदलाव को वे सकारात्मक दृष्टि से नहीं देखते। उनका मानना है कि इससे मनुष्य के जीवन में जो जटिलता उत्पन्न हुई है, वह मानवीय संबंधों पर नकारात्मक प्रभाव डाल रही है। इससे पारिवारिक विघटन की समस्या तो बढ़ी ही है, साथ ही नैतिक मूल्यों का पतन भी तेजी से हो रहा है। तमाम भौतिक व आर्थिक संसाधनों के बावजूद मनुष्य के जीवन में नैसर्गिक हर्षोल्लास नहीं है।

4.1.6. शैक्षणिक स्थिति-

मुसलमानों के शैक्षणिक स्थिति के संबंध में सच्चर कमेटी ने एक लंबा-चौड़ा रिपोर्ट तैयार किया है। जिसमें मुसलमानों के शैक्षणिक समस्या और दर को विभिन्न स्तरों पर विचार करते हुए, अंतिम निष्कर्ष के रूप में कुछ इस प्रकार लिखा है-"स्कूली शिक्षा के संबंध में मुस्लिमों की परिस्थितियाँ एक गंभीर चिंता का विषय है।.......जब शिक्षा में उन्नति को ध्यान में रखते हुए शैक्षणिक उपलब्धि के वैकल्पिक संकेतों पर ध्यान दिया जाए तो मुस्लिमों और दलितों को छोड़कर अन्य सामाजिक धार्मिक श्रेणियों की स्थिति में काफी अंतर दिखता है। उदाहरण के लिए स्कूली शिक्षा के औसत वर्ष और मुस्लिमों की उपस्थिति दर अन्य सामाजिक धार्मिक श्रेणियों (कुछ मामलों में दलितों को छोड़कर) से काफी कम है। बल्कि कई संदर्भों में हम देखते हैं कि दलित मुसलमानों से आगे निकल गए हैं।"[1] इस प्रकार सच्चर कमेटी ने मुसलमानों के शैक्षणिक स्थिति का ब्यौरा पेश किया है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों तथा विभिन्न धार्मिक श्रेणियों की शिक्षा की स्थिति में असमानता पाई गई है। मुसलमान आधुनिक शिक्षा से कम जुड़ पाए हैं। इसके विभिन्न कारणों को भी सच्चर कमेटी ने खोजने का प्रयास किया है। इन सभी बातों पर विस्तारपूर्वक चर्चा पूर्व के अध्याय में किया जा चुका है।

[1] सच्चर कमेटी रिपोर्ट, पृष्ठ 76

हिन्दी में मुसलमानों की शैक्षणिक स्थिति को अन्य साहित्यकारों की अपेक्षा मंजूर ने अधिक चिंताजनक रूप में उठाया है। मंजूर समय के साथ मुसलमानों के शैक्षणिक प्रारूप में परिवर्तन के पक्षधर हैं। उनका मानना है कि परंपरागत व दीनी तालीम वर्तमान के अनुकूल नहीं है। समाज के उत्थान के लिए रोजगारपरक शिक्षा आवश्यक है। 'बशारत मंजिल' उपन्यास में मौलवी साहब कहते हैं-"आमतौर पर लोग अलीगढ़ में रहकर भी अरबी-फारसी ही पढ़ना चाहते हैं। मस्जिदें हैं, मदरसे हैं, मौलाना और मौलवी हैं,-भई पढ़ तो रहे हो सदियों से अरबी-फारसी ! दुनिया कभी किसी जबान की गुलाम नहीं रही क्योंकि जबान महज बात कहने का वसीला है और ज्यादा अहम वह है जो कहा जाना है।....साइंस जमाने का तकाजा और नए सोच का हासिल है। क्या करो, लोग नहीं समझते कि मुसलमान दरअसल कितने पिछड़े हुए हैं और उन्हें साइंस की तालीम की कितनी जरूरत है।"[1] मंजूर ने आधुनिक शिक्षा के संदर्भ में सर सैयद अहमद खान के विचारों को मुसलमानों के उत्थान के लिए आवश्यक माना है। मुस्लिम शिक्षा के क्षेत्र में सर सैयद के योगदान को वे बार-बार रेखांकित करते हैं।

मंजूर ने मुसलमानों के बीच शैक्षणिक समस्या के कारणों को भी दिखाने का प्रयास किया है। उन्होंने निम्नवर्गीय समाज में आर्थिक विपन्नता को मुख्य रूप से शिक्षा के लिए बाधक बताया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में कल्लो को घर के कामकाज से इतनी फुरसत ही नहीं मिलती कि वह पढ़ने जा सके। इसी तरह सईदा आपा भी आर्थिक तंगी के कारण अपनी बच्चियों को स्कूल नहीं भेज पाती। मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज में शिक्षा को लेकर थोड़ी चेतना जागृत हुई है। इसके उदाहरण के रूप में सूखा बरगद उपन्यास में 'अब्दुल वहीद' को देख सकते हैं। वे अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ाते हैं। साथ ही लड़कियों की शिक्षा को लेकर भी वे खासे चिंतित दिखाई देते हैं तथा धार्मिक शिक्षा को वर्तमान संदर्भ में अनुपयोगी बताते हैं। इसी प्रकार बशारत मंजिल उपन्यास में 'जहाँआरा बेगम' अपने बच्चों को पढ़ने के लिए अलीगढ़ भेजती हैं। मध्यवर्ग के समक्ष महँगी शिक्षा प्रणाली और संस्थानों की कमी एक मुख्य समस्या के रूप में देखी जा सकती है। इस समस्या को 'सूखा बरगद' उपन्यास में रशीदा कहती है-"हाईस्कूल के बाद, अब्बू हमें समझा रहे थे, किसी मध्यवर्गीय परिवार के लिए शिक्षा पाना संभव नहीं था। रियासत में तो कोई कॉलेज था नहीं, इसलिए आगे की शिक्षा के लिए बाहर जाना जरूरी था। शाही खानदान और जागीरदारों के लिए तो अपनी औलादों को अलीगढ़ या

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 52

किसी दूसरी जगह भेजना कोई समस्या नहीं थी, लेकिन एक सीमित आमदनी वाले परिवार के लिए ऐसा कर पाना संभव नहीं था।"[1] मंजूर ने मुसलमानों की शैक्षणिक स्थिति को विभिन्न संदर्भों में दिखाने का प्रयास किया है।

आमतौर पर मुसलमानों की शैक्षणिक स्थिति को लेकर समाज में यह आम धारणा देखि जाती है कि या तो मुसलमान अशिक्षित होता है या वह केवल दीनी तालीम तक सीमित होता है, जबकि मुसलमानों का एक हिस्सा तेजी से आधुनिक शिक्षा की ओर उन्मुख हुआ है। उनमें से बहुत सारे मुसलमान विभिन्न पदों पर भी देखे जा सकते हैं। आमतौर पर पढ़े-लिखे मुसलमानों को लेकर समाज में कोई सकारात्मक छवि नहीं बन पाई है। जबकि स्त्रियों की शिक्षा के प्रति भी मुसलमानों में जागरूकता बढ़ी है, लेकिन यह भी सत्य है कि अपेक्षाकृत यह जागरूकता बहुत कम है। फिर भी इस वर्ग की लड़कियाँ आत्मनिर्भर हो रही है, यह एक सकारात्मक बदलाव है। मंजूर चूँकि शहरी मध्यवर्ग को ही अपने उपन्यासों में अधिक चित्रित किए हैं, इसलिए उनके अधिकतर पात्र शिक्षित दिखाई पड़ते हैं। इसके अलावा मंजूर प्रत्येक उपन्यास में एक ऐसा पात्र जरूर गढ़ते हैं, जो वैचारिक रूप से प्रबुद्ध और चेतनासंपन्न होता है। यह पात्र मंजूर के वैचारिक दृष्टिकोण को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

4.2. आर्थिक स्वरूप-

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की आर्थिक नीतियों में कई तरह के बदलाव हुए। सन् 1950 में नेहरू की अध्यक्षता में 'योजना कमीशन' का गठन हुआ और इस कमीशन के तहत विज्ञान और औद्योगिक विकास की नई नीतियाँ बनाई गई। कृषि के क्षेत्र में विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में 'हरित-क्रांति' जैसे महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए। इस दौरान विदेशी पूँजी पर प्रतिबंध लगाया गया और छोटे उद्योगों को सरकार द्वारा संरक्षण दिया गया। लघु उद्योगों के प्रोत्साहन एवं विकास हेतु 'हथकरघा बोर्ड', 'रेशम बोर्ड', 'क्वायर बोर्ड' आदि का गठन किया गया। सरकार ने गरीबी उन्मूलन एवं स्वास्थ्य की बेहतर सुविधाओं के लिए भी कई योजनाएँ चलाई, किंतु खाद्य सुरक्षा, क्षेत्रीय असंतुलन, गरीबी और बेरोजगारी से संबंधित नीतियाँ पूरी तरह सफल नहीं हो पाई। सरकार द्वारा लागू की गई योजनाएँ भारत की अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने में अधिक प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो सकी। इस संबंध में मनोज सिन्हा लिखते हैं-

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 65-66

"सार्वजनिक क्षेत्र का महत्त्व बनाए रखने के लिए सरकार अपना कार्यक्षेत्र लगातार बढ़ाती थी और सरकारी गतिविधियों में लगातार पूँजी का निवेश करती थी। लेकिन इन नीतियों के इच्छित परिणाम सामने नहीं आ सके। इससे न तो तेज आर्थिक विकास दर प्राप्त की जा सकी और न ही पूरा रोजगार सुनिश्चित हो सका। इन नीतियों से गरीबी उन्मूलन और आर्थिक समस्याओं के संतोषजनक समाधान नहीं निकल सके। सार्वजनिक क्षेत्र अक्षम साबित होने लगा और सरकार को भारी घाटे का सामना करना पड़ा।"[1] इन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप 90 का दशक आते-आते भूमंडलीकरण के प्रभाव से भारत आर्थिक उदारीकरण की ओर बढ़ा। अभी तक 'विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम' के तहत विदेशी पूँजी-निवेश पर जो प्रतिबंध लगाया गया था, उसमें बदलाव लाया गया। आर्थिक उदारीकरण के परिणामस्वरूप नई आर्थिक नीतियाँ अपनाई गई, जिसमें उद्योग और व्यापार पर से किसी भी तरह के नियंत्रण, परमिट, लाइसेंस, कोटा या अन्य किसी भी सख्त नियम-कानून को हटाकर विश्व-बाजार के लिए भारत को स्वतंत्र कर दिया गया। परिणामस्वरूप विदेशी कंपनियाँ भारतीय बाजार पर कब्जा करती गई और भारत का जो अपना परंपरागत आर्थिक स्त्रोत या व्यापार था, वह घाटे में जाने लगा। इस नई आर्थिक नीति का एक और दुष्परिणाम यह हुआ की इस पहल से निजी क्षेत्रों को विकसित होने के लिए आधिक अवसर मिला। निजी क्षेत्रों का विकास अधिक होने से आर्थिक असमानता तथा छोटे व मझोले उद्योगों का विनाश हुआ, परिणामस्वरूप बेरोजगारी की दर भारत में तेजी से बढ़ने लगी।

4.2.1. स्वतंत्रता पश्चात् उभरता हुआ मध्यवर्ग और मुस्लिम समाज-

औद्योगिक विकास और नई आर्थिक नीतियों से मध्यवर्ग का तेजी से उभार हुआ। यह वर्ग तेजी से शहरों की ओर पलायन करने लगा। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, मकान, भौतिक सुख-साधनों की ओर यह वर्ग तेजी से आकर्षित हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात् विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रभाव से जो नया मध्यवर्ग निर्मित हुआ, उसे विद्वानों ने 'नव-मध्यवर्ग' की संज्ञा दी। इस वर्ग ने शिक्षा, राजनीति, प्रतिष्ठित व्यवसायों, वेतनभोगी पदों की ओर तेजी से अपना वर्चस्व जमाना शुरू किया। इस नव-मध्यवर्ग की विशेषता बताने के लिए मनोज सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'समकालीन भारत: एक परिचय' में धीरूभाई सेठ को उद्धृत करते हुए लिखा है-"जबकि नए मध्य वर्ग की रचना में कर्मकांड और

---

[1] संपादक मनोज सिन्हा,समकालीन भारत एक परिचय, पृष्ठ 83

संस्कृतिकरण अप्रासंगिक हो गए हैं। नए मध्यवर्ग की सदस्यता नई जीवनशैली में (आधुनिक उपभोक्तावादी शैली) के साथ-साथ कुछ खास तरह की आर्थिक परिसंपत्तियों के स्वामित्व और मध्यवर्ग के होने की आत्म चेतना पर निर्भर होती है।"[1] इस प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात् भारत का आर्थिक परिदृश्य जिस रूप में बदला, उससे भारतीय समाज में कई तरह के परिवर्तन हुए। समाज का पारिवारिक ढाँचा बदला और व्यक्तिगत संबंधों में भी बदलाव होने लगे। इन सभी बदलावों को मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। 'मदरसा' उपन्यास में उन्होंने मध्यवर्ग के बीच अर्थतंत्र के बढ़ते वर्चस्व को पारिवारिक संबंधों के बिखराव का एक प्रमुख कारण बताया है। उपन्यास का नायक 'साबिर नईम' परिवार में बढ़ते आर्थिक वर्चस्व का शिकार होता है। सर्वप्रथम उसकी माँ उसे अपनी संपत्ति से बेदखल कर देती है, फिर पत्नी के साथ उसका संबंध खराब होता है। उसके आर्थिक संकट को उपन्यास में इस प्रकार दिखाया गया है-"हाथ की तंगी के कारण दिन में वह बीस किलोमीटर की यात्रा, मोटरसाइकिल पर करके शहर के उस छोर पर पहुँचा था जहाँ मरियम ने बिटिया के साथ रहना चुना था।....मुझे खुद पैसों की जरूरत है, मरियम ने लापरवाही से कहा था।-किससे माँगू ?.....यह सही था, कि ज्यादा पैसा, मरियम द्वारा कई जगह इन्वेस्ट किया हुआ था: सही शेयर खरीदने-बेचने की समझ भी उसी को थी। मगर उसे अंदाजा था कि दो लाख, जिसकी उसे जरूरत थी, बैंक अकाउंट में था। बल्कि उससे ज्यादा था। जब उसने बैंक का हिसाब देखना चाहा था, तो मरियम ने बहाना कर दिया था।"[2] साबिर निराश भाव से वापस लौट जाता है। उसे अपने पैतृक संपत्ति पर भी अधिकार नहीं मिल पाता। इस प्रकार वह आर्थिक दबाव में अपनी सभी योजनाओं पर खुद को असफल पाता है। मंजूर ने इस उपन्यास में आर्थिक दबाव को न केवल पारिवारिक सम्बन्धों को खराब होने का कारण माना है, बल्कि व्यक्ति के मानसिक भावों में आए परिवर्तन को भी लक्षित किया है। मंजूर ने इस उपभोक्तावादी संस्कृति का मध्यवर्ग पर पड़ने वाले प्रभाव को 'कुछ दिन और' नामक उपन्यास में यथार्थ रूप में दिखाया है। उपन्यास में एक मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है, जिसमें राजू अपनी पत्नी और बेटे की जिम्मेदारियों को पूरा कर पाने में असमर्थ होता है। वह झूठे दिखावे और सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने का अथक प्रयास करता है। व्यवसाय में लगने वाले घाटे को वह सहन नहीं कर पाता। राजू का व्यवसाय जब घाटे में चला जाता है तो वह घर का सामान बेचने लगता

---

[1] वही, पृष्ठ 141

[2] मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृष्ठ 53

है। अपने मानसिक तनाव व अकर्मण्यता को छिपाने के लिए वह शराब पीने लगता है और पत्नी को प्रताड़ित करता है। उपन्यास के अंत में पति-पत्नी का संबंध-विच्छेद हो जाता है। इसी प्रकार उपन्यास में मध्यवर्गीय कुंठा, निराशा और संघर्ष को 'दास्तान-ए-लापता' उपन्यास में दिखाया है। इस उपन्यास का नायक 'जमीर अहमद खान' स्वयं को मानसिक रूप से बीमार समझने लगता है, क्योंकि वह परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने में खुद को असफल पाता है, जिस कारण उसकी पत्नी उसे छोड़कर मायके चली जाती है। वह डॉक्टर के पास जाता है और अपनी बीमारी का कारण व्यापार में लगने वाले घाटे और पत्नी के मायके चले जाने के बाद की स्थिति को बताता है। वह तेजी से बदलती जीवन-चर्या, उपभोक्तावादी संस्कृति, पूँजीवाद के बढ़ते वर्चस्व, मानवीय मूल्यों में आ रहे परिवर्तन आदि स्थितियों में स्वयं को समाहित नहीं कर पाता। इसलिए वह मानसिक दबाव की स्थिति से गुजरने लगता है। जो कि आज के मध्यवर्ग की सबसे बड़ी समस्या है। इस नव-मध्य वर्ग की मानसिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए मनोज सिन्हा लिखते हैं-"मानसिक तनाव, दबाव व मानसिक रोग जो मध्यवर्गीय परिवार के बच्चे झेलने पर मजबूर हैं। सामाजिक पद-प्रतिष्ठा की अंधी प्रतिस्पर्धा में कभी-कभी मध्यवर्गीय नौजवान पीढ़ी तनाव की शिकार हो जाती है कि या तो यह नशे की गिरफ्त में चली जाती है या फिर आत्महत्या तक कर लेती है। मनोचिकित्सक इसे मानसिक रोग मानते हैं, मगर यह मनोवैज्ञानिक रोग मध्यवर्ग के लिए आम बात हो चली है।"[1]

मंजूर ने आर्थिक दबाव के कारण उत्पन्न होने वाली सामाजिक व पारिवारिक समस्याओं की ओर पाठक का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में मध्यवर्गीय मुसलमानों को केंद्र बिंदु बनाया है। स्वतंत्रता के पश्चात् शहरी समाज में रहने वाले मध्यवर्ग के जीवन पर नई आर्थिक नीतियाँ अपना कैसा प्रभाव डाल रही हैं? उनके बीच किस तरह की नई चुनौतियाँ आ रही हैं? इन सबको रेखांकित करते हुए उन्होंने मुस्लिम समाज के एक ऐसे वर्ग को रेखांकित किया है, जिनकी तरफ हिन्दी साहित्यकारों का विशेष ध्यान नहीं गया था। यह सही है कि बदलते परिवेश का प्रभाव सभी धर्मों एवं जातियों के लोगों पर पड़ा है, लेकिन हिन्दी में मुस्लिम समाज को लेकर इस तरह का लेखन नहीं हुआ है। मंजूर ने अपने उपन्यासों के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि भूमंडलीकरण, उदारीकरण व पूँजीवाद के बढ़ते प्रभाव का असर मध्यवर्गीय मुसलमानों पर भी उतना ही हुआ है, जितना कि दूसरे वर्गों पर। जबकि

---

[1] संपादक मनोज सिन्हा, समकालीन भारत एक परिचय, पृष्ठ 183

आमतौर पर मुसलमानों के सन्दर्भ में बात करते समय उनकी अशिक्षा, गरीबी, पिछड़ापन, धार्मिक-भेदभाव आदि को ही उनकी मुख्य समस्या के रूप में रेखांकित किया जाता है। मंजूर ने अपने उपन्यासों में पढ़ी-लिखी रोजगारपरक मुस्लिम स्त्रियों को भी चित्रित किया है

4.2.2. आर्थिक असमानता-

आर्थिक असमानता भारत ही नहीं पूरे विश्व की समस्या है। इस्लाम की धार्मिक मान्यताओं के अंतर्गत आर्थिक समानता पर विशेष जोर दिया गया है। बावजूद इसके मुसलमानों में घोर आर्थिक असमानता देखी जा सकती है। आर्थिक दृष्टि से अगर भारत के मुसलमानों का अध्ययन किया जाए, तो अलग-अलग कई श्रेणियाँ मिल जाएँगी। किंतु आर्थिक स्थितियों पर बात करते समय समाज को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता है, जिनमें उच्चवर्ग, मध्यम वर्ग व निम्न वर्ग प्रमुख है। मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यासों में इन तीनों ही वर्गों का चित्रण किया है। 'पहर ढलते' उपन्यास में उन्होंने उच्च वर्ग के मुस्लिम पात्रों का चयन किया है। जिनमें मंत्री, नवाब, कमिश्नर और अधिकारी आदि शामिल हैं। इस वर्ग की अपनी जीवनशैली है। इनके आर्थिक स्रोत और सामाजिक प्रतिष्ठा भी सामान्य मुसलमानों से अलग है। इस उपन्यास में उच्चवर्गीय मुसलमानों के समूह को मध्यम वर्ग व निम्न वर्ग से अलग दिखाया गया है। मध्यवर्गीय मुसलमानों का चित्रण करते समय मंजूर ने विभिन्न पात्रों का सृजन किया है। उनके उपन्यास में अधिकतर पात्र व्यवसाय से जुड़े दिखाए गए हैं। किसी के पास फर्नीचर की दुकान है, तो कोई कबाड़ी का धंधा कर रहा है। बंदा अली का खानदानी दवाखाना है, जबकि संजीदा सोज शेरो-शायरी में रुचि रखते हैं और उसे ही अपने जीवन का जरिया बना लेते हैं। मंजूर ने अपने सभी मध्यवर्गीय पात्रों को संघर्ष करते हुए दिखाया है। यह पात्र जीवन की सामान्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संघर्षरत हैं। इन पर आर्थिक दबाव इतना अधिक है कि पारिवारिक सुख-साधन जुटाने में असमर्थ होते हैं। मंजूर ने इस वर्ग का चित्रण करते समय पारिवारिक विखंडन को भी दिखाया है। 'कुछ दिन और', 'दास्तान-ए-लापता' और 'मदरसा' उपन्यास में पारिवारिक विखंडन को विशेष रूप से देखा जा सकता है। इन तीनों ही उपन्यासों में नायक बदलते आर्थिक परिस्थितियों के साथ समायोजित नहीं कर पाते। छोटे-छोटे कारोबारियों को पूँजीवाद व भूमंडलीकरण के कारण होने वाले नुकसान को भी इन उपन्यासों में देखा जा सकता है।

मंजूर ने मध्यवर्गीय समाज के समक्ष आने वाली चुनौतियों को विभिन्न घटनाओं व पात्रों के माध्यम से यथार्थपरक ढंग से अभिव्यक्त किया है।

मंजूर के उपन्यासों में निम्नवर्गीय पात्रों को भी देखा जा सकता है। इन पात्रों के समक्ष आने वाली आर्थिक चुनौतियों व रोजगार की समस्या को भी चित्रित किया गया है। मुस्लिम समाज का निम्नवर्ग अधिकांशत: पारंपरिक पेशे से जुड़ा हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात् इन पेशों का धीरे-धीरे विनाश होता चला गया। परिणामस्वरुप यह वर्ग बेरोजगार होता गया और मजदूरी करने पर विवश हुआ। हस्तकला में निपुण शिल्पियों का मजदूर के रूप में बदल जाना या बेरोजगारी की स्थिति का सामना करना, भारत की घरेलू अर्थव्यवस्था को काफी प्रभावित किया है। भूमंडलीकरण और उदारीकरण ने हस्तशिल्पयों और कामगारों के परंपरागत उद्योगों को नष्ट करते हुए, भारतीय बाजार में विदेशी पूँजी के निवेश को बढ़ावा दिया और इसका सबसे अधिक नुकसान गरीब वर्ग के मुसलमानों को हुआ। मंजूर ने 'सूखा बरगद' उपन्यास में बीड़ी बनाने वाले गरीब मुसलमानों के जीवन स्तर को दिखाया है। यह मुसलमान शहरों की तंग गलियों वाले मुहल्ले में रहते हैं। जीविका के लिए लोगों के घरों में बर्तन मांजना, मुर्गी, बकरी व भैंस का पालन करते हैं। इस वर्ग की आर्थिक तंगी को 'सूखा बरगद' उपन्यास के एक प्रसंग के माध्यम से देखा जा सकता है-"सईदा आपा को घर का चूल्हा जलाए रखने के लिए जाने क्या-क्या करना पड़ता था। खानदान में अगर कहीं शादी है, तो बावर्चीखाने की जिम्मेदारी से लेकर, अगर किसी के घर काम वाली बैठ गई है, तो झाड़ू-बर्तन तक, वह सब करती थी और खानदानवालों की उतरने, अपनी लड़कियों को पहनने के लिए, जकात-खैरात, बाकी खर्चा चलाने के लिए, वह मजबूर थी।"[1] सईदा आपा अपने पाँच बच्चों को लेकर अकेले रहती हैं। उनकी बेटियाँ घर में बीड़ी बनाने का काम करती है, लेकिन उससे घर का खर्च नहीं चल पाता, अतः वे अनैतिक संबंध बनाती हैं। मंजूर ने निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज की स्थितियों का चित्रण करते हुए उनकी विवशता को भी रेखांकित किया है। सईदा आपा अपनी बेटियों का विवाह नहीं कर पाती, क्योंकि उनके पास पैसे नहीं है। वहीं दूसरी ओर इस उपन्यास में रशीदा, सुहेल और अब्दुल वहीद जैसे चरित्र भी हैं, जो मध्यवर्गीय पात्र हैं। अब्दुल वाहिद पेशे से वकील हैं और उनके दोनों बच्चे अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में पढ़ते हैं। इस प्रकार मंजूर ने अपने उपन्यासों में नेता, मंत्री, अफसर से लेकर नौकर तथा गरीब, मजदूर आदि का भी चित्रण किया है। अपने

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 28

पात्रों के माध्यम से लेखक ने विभिन्न वर्ग के मुसलमानों के बीच के अंतर को भी स्पष्ट किया है। आमतौर पर मुस्लिम समाज को लेकर यह बात कही जाती है कि उनमें समानता का भाव होता है, लेकिन लेखक ने समाज में फैले वर्ग-भेद को वास्तविकता के साथ अंकित किया है।

4.2.3. आर्थिक स्रोत-

भारत में रहने वाले मुसलमानों के आर्थिक स्रोत के बारे में पूर्व के अध्याय में चर्चा की गई है, जिसमें हमने देखा कि लगभग 80% भारतीय मुसलमान पिछड़े वर्ग से आते हैं, जिनका कोई न कोई अपना परंपरागत पेशा अवश्य रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् नई आर्थिक नीतियों, विज्ञान तथा औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप यह परंपरागत पेशे तेजी से विलुप्त होते गए। पारंपरिक व्यवसाय के विनाश से लोग रोजगार के अन्य अवसरों की तलाश करने लगे। इस बीच लोगों का शहरों की ओर पलायन बढ़ा और रोजगार के नए विकल्प अपनाए गए। मंजूर ने अपने उपन्यासों में लगभग सभी वर्गों के आर्थिक स्रोत का वर्णन किया है, जिसमें नेता, मंत्री, अफसर, व्यवसायी, मजदूर आदि सभी शामिल है। इसके अलावा समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, झूठ, बेईमानी व अनैतिक व्यापार से अर्जित आर्थिक स्रोतों को भी दिखाया गया है। मंजूर के उपन्यासों के अधिकांश पात्र छोटे व्यापारी हैं, जैसे 'बशारत मंजिल' उपन्यास में 'बंदा अली' के घर दवाओं का व्यापार होता है, वहीं 'दास्तान-ए-लापता' में जमीर अहमद खान शराफत अली के साथ मिलकर कबाड़ी का धंधा करता है। धंधे की आड़ में शराफत कई गैर-कानूनी काम भी करता है, जिसकी वजह से जमीर अहमद खान धंधे से अलग हो जाता है। जमीर अहमद के धंधे के बारे में बताते हुए मंजूर लिखते हैं-"दूर-दराज, राजे-रजवाड़ों से लेकर देश के महानगरों तक के कबाड़खाना और चोर बाजारों को छान-फटकार करके वह अपने मतलब की चीजें जमा करता था जिसमें ऐसे एंटीक्स भी होते थे जिनकी खरीद-फरोख्त कानूनन जुर्म बनती है। उन्हें वह मशीनी कालीनों थोक के बने फानूसों, गुलदानो, पेंटिंग्स और लैंप शेड्स के कानूनी धंधे की आड़ में कभी हिंदुस्तानियों तो कभी विदेशियों को मुँह माँगी कीमत पर बेच देता था। उसका असली धंधा तो यही था और इसी की कमाई से उसने दूसरी डीलरशिप्स ले रखी थी।"[1] इसी प्रकार अजीज उर्फ 'अच्छन' भी होटल में शानदार कमरे बनवाकर देह व्यापार करवाता है और दिखाने के

[1] मंजूर एहतेशाम, दास्तान-ए-लापता, पृष्ठ 21

लिए होटल का बिजनेस करता है, वहीं जमीर अहमद खान को अपने सभी व्यापार में नुकसान सहना पड़ा है, क्योंकि बेईमानी उसके चरित्र में नहीं है।

मंजूर ने नौकरी पेशा मुसलमानों के रोजगार का भी वर्णन किया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में अब्दुल वहीद वकालत के पेशे से जुड़े हुए हैं और रशीदा आकाशवाणी रेडियो में काम करती है। शैक्षणिक क्षेत्र से जुड़े हुए कुछ मेडिकल और इंजीनियरिंग के छात्रों और पेशेवर लोगों का भी जिक्र इनके उपन्यासों में देखा जा सकता है। 'बशारत मंजिल' उपन्यास में संजीदा सोज शेरो-शायरी को अपना पेशा चुनते हैं, वहीं 'मदरसा' उपन्यास में साबिर और मरियम को प्राइवेट नौकरी करते हुए दिखाया गया है। निम्नवर्गीय पात्रों का आर्थिक स्रोत परंपरागत पेशा या फिर मजदूरी करते हुए चित्रित किया गया है। परंपरागत पेशे में बीड़ी बनाने वाले मजदूरों को 'सूखा बरगद' उपन्यास में देखा जा सकता है। वहीं सईदा आपा लोगों के घरों का बर्तन माँजती है, तो फफू मस्जिद में झाड़ू लगाती हैं और मुहल्ले के बच्चों को उर्दू और अरबी का ट्यूशन पढ़ाती है। फफू की आर्थिक स्रोत को उपन्यास में इस प्रकार दिखाया गया है- "फफू की आमदनी का और तो कुछ सहारा था नहीं, यूँ ही मुहल्ले भर के बच्चों को पढ़ाती थी और जिससे जिस तरह हो पाता वह उनकी सहायता करता था।"[1] फफू के बड़े भाई बन्ने दादा कपड़ा मिल में नौकर थे। इसी प्रकार गाड़ी चलाने वाले, मिल तथा कारखानों में काम करने वाले लोगों का भी वर्णन उनके उपन्यासों में किया गया है। सच्चर कमेटी की रिपोर्ट ने भी यह माना है कि मोटर गाड़ी बनाने वाले मैकेनिक व अन्य तकनीकी मशीनों के कारीगरों में मुसलमान लड़के अधिक पाए जाते हैं। कारखाने में काम करने वाले मजदूरों में भी मुसलमानों की अच्छी खासी संख्या होती है। इस प्रकार मुसलमानों का एक बड़ा हिस्सा अपने आर्थिक स्रोत के लिए इन सब कामों से जुड़ा हुआ है। मंजूर ने छोटे व बड़े मुस्लिम नेताओं का भी जिक्र अपने उपन्यासों में किया है, जो धर्म के नाम पर जनता को एकजुट करते हैं और चुनाव जीतने के बाद अपने आर्थिक हितों को पूरा करते हैं।

4.3. राजनीतिक स्वरूप-

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 17

भारतीय समाज का राजनीतिक परिदृश्य बहुत ही उथल-पुथल रहा है। स्वतंत्रता पूर्व से लेकर पश्चात् तक भारतीय समाज पर राजनीति परस्थितियों का दूरगामी असर देखे जा सकते हैं। भारतीय घटक दल के रूप में पहला प्रतिनिधित्व 'कांग्रेस' की स्थापना के रूप में प्रकाश में आया तत्पश्चात् विभिन्न धार्मिक एवं समाज सुधार आंदोलनों के मार्फ़त भी इस दिशा में बड़ी पहल की गयी। कांग्रेस तथा विभिन्न धार्मिक संगठनों का भारतीय मुसलमानों पर प्रभाव तथा भारतीय राजनीति में मुसलमानों की भूमिका का अध्याय इस अध्याय में निम्न रूप में किया गया है-

4.3.1.कांग्रेस और भारतीय मुसलमान-

1883 में कांग्रेस पार्टी की स्थापना से लेकर वर्तमान भारतीय राजनीति तक, कांग्रेस पार्टी के साथ मुसलमानों का किसी न किसी रूप में जुड़ाव रहा है। इस लंबी अवधि के दौरान कई बार मुसलमानों के प्रति कांग्रेस पार्टी के रवैए को लेकर प्रश्न उठते रहे हैं। ये प्रश्न कांग्रेस पार्टी की स्थापना के कुछ वर्षों बाद ही कांग्रेस की नीतियों व कार्यक्रमों को लेकर अभिजात्य मुसलमानों के मन में उठ रहे थे। तिलक और गोखले द्वारा लगाए जाने वाले सांप्रदायिक नारों व भाषणों से उच्चवर्ग के मुसलमान पार्टी से अलग होने लगे। जबकि कुछ मुस्लिम नेताओं ने कांग्रेस को हिंदूओं की पार्टी कहे जाने पर आपत्ति जाहिर की। स्वतंत्रता से पूर्व बड़ी संख्या में मुसलमान कांग्रेस पार्टी के साथ मिलकर स्वाधीनता संघर्ष की लड़ाई में शामिल रहे। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष के रूप में बदरुद्दीन तय्यब जी, रहीमतुल्लाह, नवाब सैयद मुहम्मद बहादुर, सैयद हसन इमाम, हकीम अजमल खान, मुहम्मद अली जौहर, अबुल कलाम आजाद, मुख्तार अहमद अंसारी जैसे मुस्लिम नेताओं को कई बार अध्यक्ष पद पर बैठाया गया। कांग्रेस पार्टी के अंतिम मुस्लिम अध्यक्ष के रूप में अबुल कलाम आजाद (1940-46) को देखा जा सकता है। स्वतंत्रता के बाद से अब तक कांग्रेस ने एक भी मुस्लिम अध्यक्ष की नियुक्ति नहीं की है। स्वतंत्र भारत के पहले कैबिनेट में अबुल कलाम आजाद को शिक्षा मंत्री और रफी अहमद किदवई को संचार मंत्री बनाया गया था। उससे पूर्व स्वाधीनता आंदोलन के दौरान कांग्रेस पार्टी में मुस्लिम नेताओं और कार्यकर्ताओं की एक लंबी सूची देखी जा सकती है। स्वतंत्रता के बाद धीरे-धीरे पार्टी की मुख्य सूची से मुसलमान नेताओं के नाम में अपेक्षाकृत कमी देखी जा सकती है।

नेहरू ने भारतीय राजनीति में धर्मनिरपेक्षता पर विशेष रूप से बल दिया और सांप्रदायिकता को फासीवाद का एक रूप माना। नेहरू धर्म को राजनीति में प्रयोग करने के विरोधी थे। कांग्रेस के धर्मनिरपेक्ष रवैये के कारण मुसलमानों की एक बड़ी आबादी आजादी से पूर्व और उसके बाद भी उसका समर्थन करती रही। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान कुछ स्वार्थपरक नेताओं ने अवश्य 'मुस्लिम लीग' की स्थापना की थी। बावजूद इसके सामान्य जनता और उदारवादी मुस्लिम नेता कांग्रेस का समर्थन करते रहे। इस संबंध में मंजूर लिखते हैं-"विलियम शायद यह मानकर ही हिंदुस्तान आया था कि यहाँ हिंदू और मुसलमान पूरी तरह एक दूसरे से दूर हो चुके थे, कांग्रेसी यहाँ के हिंदुओं की प्रतिनिधि जमात थी और मुसलमान बिना किसी सही नेतृत्व के अकेले छुट गए थे.....मुहम्मद अली और शौकत अली जैसे गाँधी प्रेमी तब तक जरूर कांग्रेस से दूर जा चुके थे और हकीम अजमल खान का देहांत हो चुका था, लेकिन डॉक्टर अंसारी, खान अब्दुल गफ्फार खान और मौलाना आजाद उसी तरह कांग्रेस और गाँधी जी के साथ थे जैसे कभी खिलाफत आंदोलन के दौरान हुए थे।"[1] इस उपन्यास में मंजूर ने कांग्रेस के साथ मुसलमानों के संबंध को तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं और आंदोलनों के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। 'संजीदा सोज' एक गाँधीवादी पात्र है। 'बशारत मंजिल' उपन्यास में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान मुसलमानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका और मुस्लिम राजनेताओं और कार्यकर्ताओं के योगदान को दिखाया है।

स्वतंत्रता के बाद भी कांग्रेस पार्टी के साथ मुसलमानों का जुड़ाव देखा जा सकता है। हालांकि सांप्रदायिक मुद्दों पर कांग्रेस की भूमिका पर भी सवाल खड़े होते रहे हैं। कांग्रेस ने स्वतंत्रता के बाद लंबे समय तक शासन किया। नेहरू ने पंचवर्षीय योजनाओं के जरिए देश की आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रयास किया, किंतु नेहरू अपनी योजनाओं पर अपेक्षाकृत रूप से उतने सफल न हो सके, जितना की जनता द्वारा अपेक्षित था। परिणामस्वरूप कांग्रेस के प्रति मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हुई। इस सन्दर्भ में मंजूर एहतेशाम लिखते हैं-"स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के इतिहास में अभी तक साठ की दहाई सबसे महत्त्वपूर्ण इन अर्थों में रही है कि उसमें कुछ ऐसे मामलों के बीज पड़े जिसकी बढ़ती खेती रोज-ब-रोज आज तक हम चाहते-न-चाहते काटने पर मजबूर हैं और न जाने यह सिलसिला कब तक यूँ ही चलता रहेगा। देश की स्वतंत्रता एक सपना थी जिसे हासिल करने के बाद देशवासियों को कुछ कड़वी हकीकतों का सामना करते

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 184-185

अपने उस ख्वाब की ताबीर निकालनी थी जो दरअसल एक प्रकार का मोहभंग था।"[1] आजादी के प्रति जनता के मोहभंग के कई कारण थे। जिनमें सामाजिक व आर्थिक असमानता, दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली, भ्रष्टाचार, खराब प्रशासन व्यवस्था, गरीबी, शोषण, भूमि सुधार में कमी, पूँजीवाद का विकास, कांग्रेस पार्टी में बढ़ती अफसरशाही और पार्टी का कमजोर होता ढांचा आदि। इन सभी कारणों से पार्टी के प्रति जनता में व्यापक असंतोष उत्पन्न हुआ। नेहरू की तमाम कोशिशों के बावजूद उनके समाजवादी सिद्धांत भारतीय परिवेश में लागू नहीं हो पाए। उन्होंने भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित कर तो दिया, लेकिन आर० एस० एस०, जनसंघ, जमाते इस्लामी, मुस्लिम लीग, अकाली दल जैसे सांप्रदायिक संगठन इसी धर्मनिरपेक्ष समाज में सक्रिय रहे। साठ के दशक में इन दलों की सक्रियता और बढ़ी और दंगों की संख्या में वृद्धि होने लगी। सन् 1961 में जबलपुर में हुए दंगे ने पूरे देश में सांप्रदायिक माहौल पैदा कर दिया। साम्प्रदायिक शक्तियाँ समाज को इतने व्यापक रूप से प्रभावित कर चुकी थी कि जहाँ संसद में सन् 1962 में जनसंघ के कुल 14 सदस्य थे, वहीं 1967 में इनकी संख्या बढ़कर 35 हो गई। हालांकि इंदिरा गाँधी ने सांप्रदायिक शक्तियों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही की थी, लेकिन इमरजेंसी के दौरान स्थापित कांग्रेस की नीतियों ने जनता में अविश्वास को जन्म दिया, जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस पार्टी से लोगों का मोहभंग हुआ। मंजूर ने कांग्रेस पार्टी की इन सभी गतिविधियों को भारतीय राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण चरण बताया है।

भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिक शक्तियों के बढ़ते प्रभाव के बावजूद कांग्रेस पार्टी के प्रति मंजूर काफी आशावान दिखते हैं। 'सूखा बरगद' उपन्यास में अब्दुल वहीद अपने बच्चों से कहते हैं कि तुम लोग एक बेहतर जमाना देखोगे या आपसी नफरत का खेल ज्यादा दिनों तक नहीं चलने वाला है। वहीं पाकिस्तान से आए परवेज का भी यही मानना है कि भारत में रहने वाले मुसलमान दूसरे देशों के मुसलमानों की अपेक्षा कहीं बेहतर स्थिति में हैं। लेकिन दूसरी ओर सुहेल भारत में बढ़ रही सांप्रदायिकता को लेकर चिंतित है। उपन्यास के अंत में जमशेदपुर के दंगे का चित्रण किया गया है। जिसमें मुसलमानों को खुले रूप से मारते हुए दिखाया गया है, साथ ही एक धर्मनिरपेक्ष लेखक की हत्या भी दंगाइयों द्वारा कर दी जाती है। इंदिरा गाँधी के आपातकाल को मंजूर ने भारतीय इतिहास व राजनीति का अंधकारकाल माना है। 'पहर ढलते' उपन्यास में

---

[1] मंजूर एहतेशाम, दास्तान-ए-लापता, पृष्ठ 157

आपातकाल के दौरान मंत्रियों, अफसरों की गतिविधियों को दिखाया गया है। मंजूर ने भारतीय राजनीति में मुसलमानों की स्थिति व भूमिका को अपने उपन्यासों में गहनता के साथ विश्लेषित किया है। भारत में लंबे समय तक शासन करने वाली कांग्रेस पार्टी की कमजोरियों व उसके आंतरिक विघटन, सांप्रदायिक उभार, पूँजीवाद का समर्थन, शहरीकरण व औद्योगिक विकास आदि स्थितियों को राजनीतिक व सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए, उसमें मुसलमानों की भूमिका, बदलती स्थिति व चुनौतियों को भी मंजूर के उपन्यासों में देखा जा सकता है।

4.3.2. गाँधी और मुसलमान-

गाँधी जी जब भारतीय राजनीति में प्रवेश किए, उस समय कांग्रेस का विभाजन 'नरम दल' और 'गरम दल' के रूप में हो चुका था। गाँधी ने भारतीय राजनीति के साथ-साथ भारतीय समाज को बहुत करीब से जाना। सांप्रदायिक सौहार्द और एकजुटता के लिए गाँधी जी द्वारा अपने स्तर पर अनेक प्रयास किये गये। अपने इस मुहीम में उन्होंने पूरे देश का भ्रमण किया और लोगों को एकजुट करने का प्रयास किया। गाँधी जी की यह लगातार कोशिश रही कि स्वतंत्रता आंदोलन में आम जनता की भागीदारी को बढ़ाया जाए और इसके लिए उन्होंने कई जनसभाएँ की, जिसमें जनता द्वारा बड़ी संख्या में भागीदारी सुनिश्चित की गयी। जनता के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए उन्होंने 'चंपारण', 'खेड़ा' और 'अहमदाबाद' में आंदोलन किया। गाँधी चूँकि पूरे भारतीय समुदाय को स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल करना चाहते थे, इसलिए सामुदायिक स्तर पर भी जनता को एकजुट करना उनकी प्राथमिकता रही। 'मुस्लिम लीग' के माध्यम से मुसलमानों का उच्चवर्ग अपनी राजनीतिक चेतना को प्रतिपादित कर रहा था, लेकिन मुसलमानों का गरीब वर्ग अपनी समस्याओं से जूझ रहा था, उसमें भारी असंतोष व्याप्त थे। इस संदर्भ में रविंद्र कुमार लिखते हैं-"गाँधी को आगे चलकर एहसास हुआ कि मुस्लिम समुदाय के गरीब तबकों में भी ऐसे ही असंतोष व्याप्त थे, यद्यपि उनमें सही राजनीतिक चेतना के अभाव के कारण उनकी हताशा ने धार्मिक जुनून, यानी अखिल इसलामी आंदोलन का रूप ले लिया था। जो साक्ष्य हमें उपलब्ध हैं उससे मालूम होता है कि इस बिंदु पर आकर गाँधी इस नतीजे पर पहुँचे कि यद्यपि खास-खास सामाजिक समूहों तक सीमित आंदोलन के संदर्भ में वर्गगत राजनीति की राह पर चलने के परिणाम

लाभदायक हो सकते हैं।”[1] गाँधी का विचार था कि अगर हिंदू और मुसलमान एकजुट होकर अंग्रेजो के खिलाफ आंदोलन करते हैं, तो भारत जल्द स्वतंत्र हो जाएगा। गाँधी धर्म के प्रति आस्था भाव रखते थे लेकिन राजनीति में धर्म को शामिल करने के खिलाफ थे। मुसलमानों के धार्मिक हितों की रक्षा करते हुए गाँधी ने ‘खिलाफत आंदोलन’ में मुसलमानों का पक्ष लिया और राष्ट्रीय स्तर पर उसका नेतृत्व किया। गाँधी जी अपने आंदोलनों और सभाओं में धार्मिक एकता पर विशेष बल देते थे। खिलाफत आंदोलन का नेतृत्व करते हुए उन्होंने मुंबई में मुसलमानों को संबोधित करते हुए कहा था कि-“मेरा जीवन दो चीजों के लिए अर्पित है- हिंदुओं और मुसलमानों के बीच स्थायी एकता और सत्याग्रह के लिए।....मैंने मुसलमानों के इस मसले पर इन सभी भाइयों से चर्चा की है.....और मुझे लगता है कि यह सबसे बड़ा मसला है।.....क्योंकि इससे करोड़ों मुसलमानों की धार्मिक भावना का संबंध है।”[2]

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर गाँधी जी का व्यापक प्रभाव पड़ा। प्रत्येक वर्ग, समुदाय, भाषा व धर्म के लोग गाँधी को अपना आदर्श मानते थे, यही कारण था कि गाँधी को कई आंदोलनों में बेजोड़ सफलता मिलती रही। भारतीय समाज पर गाँधी का व्यापक प्रभाव रहा है। इस प्रभाव को हिन्दी-साहित्य में भी देखा जा सकता है। गाँधीजी से सर्वाधिक प्रभावित उपन्यासकारों में प्रेमचंद का नाम लिया जाता है। प्रेमचंद के अलावा जैनेंद्र, मैथिलीशरण गुप्त, विष्णु प्रभाकर, बलदेव उपाध्याय, अमृतलाल नागर, आनंद प्रकाश जैन आदि रचनाकारों को गाँधीवाद से प्रभावित माना जाता है। इन रचनाकारों ने गाँधी जी के विचारों, आदर्शों, स्वराज्य की कल्पना आदि को अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। लेकिन कुछ समय बाद ही विशेषकर 1950 के बाद रचनाकारों के बीच गाँधीवाद से मोहभंग दिखाई देता है और यह अंतराल लम्बे समय तक देखा जा सकता है। इक्कीसवीं सदी के हिन्दी-साहित्य में गाँधीवाद जब केवल नाम-मात्र का बचा रह गया है, ऐसे में 2004 में मंजूर एहतेशाम ने ‘बशारत मंजिल’ उपन्यास में गाँधी और भारतीय मुसलमानों के स्वाधीनता के दौरान के संघर्षों, विचारों और संबंधों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया है। उपन्यास में ‘संजीदा सोज’ एक गाँधीवादी पात्र है। वह गाँधी जी के ‘हिंद स्वराज’ की परिकल्पना को समाज में लागू करना चाहता है। मनुष्य में समानता व आपसी भाईचारा

---

[1] रविंद्र कुमार, आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 20
[2] रविंद्र कुमार, आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 43-44

को वह अपना आदर्श मानते हैं। 'खिलाफत आंदोलन' के दौरान गाँधी जी का मुसलमानों के धार्मिक भावना का सम्मान करना और आंदोलन का नेतृत्व करना मुसलमानों को काफी प्रभावित करता है। मंजूर लिखते हैं-"गाँधी जी ने खिलाफत तहरीक ऐसे सच्चे मजहबी जज्बे में डूबे मुसलमानों को कौमी धारा में शामिल करने के लिए अपनाई थी जो बाकी हिंदुस्तानियों से अलेहदा रहकर मुल्क की आजादी के बारे में अपनी तरह के सोच रहे थे। बदनसीबी से खिलाफत के खात्मे के बाद उनमें से कई लोग फिर उस कौमी धारा से अलग हो गए।"[1] मंजूर ने इस उपन्यास में गाँधी जी का मुसलमानों से घनिष्ठ संबंध दिखाया है। संजीदा को बेटी पैदा होती है, तो उसका नामकरण वह गाँधी जी से कराता है। गाँधी जी का दिल्ली के मुस्लिम नेताओं, स्वतंत्रता सेनानियों व कार्यकर्ताओं के साथ अत्यंत घनिष्ठ संबंध रहता है। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान भारतीय मुसलमानों के योगदान और गाँधी जी के प्रभाव को उपन्यास में इस प्रकार दिखाया है-"संजीदा सोज ने भावनात्मक राजनीतिक मुद्दों को अनदेखा कर सही अर्थ में हिन्दी-उर्दू, हिंदू-मुसलमान और इंसानों में समानता को अपना आदर्श और नीति बनाने का प्रयास किया था। वह गंगा-जमुनी तहजीब की सार्थकता और राष्ट्र के जीवन में उसका महत्त्व पाठकों के सामने रखते हुए, एक ऐसे राष्ट्रवाद की रूपरेखा प्रस्तुत करना चाहते थे जिसका आधार धार्मिक एकता से हटकर हो।"[2] मंजूर ने इस उपन्यास में दिखाया है कि उस दौरान दो तरह के मुसलमान नेता और कार्यकर्ता थे- एक वर्ग जो सवर्ण, अमीर, जागीरदार और नवाबजादों का था, वह 'मुस्लिम लीग' का समर्थक था। 'लीग' में शामिल होने वाले मुसलमानों की संख्या बहुत कम थी, जबकि दूसरा वर्ग निम्नवर्गीय मुसलमानों का था, जिसमें अधिकतर गरीब, मजदूर, उदारवादी मुसलमान शामिल थे, सभी कांग्रेस का समर्थन करते थे। साथ ही गाँधी जी को अपना आदर्श मानते थे। गाँधी जी सदैव सांप्रदायिकता के विरोधी रहे हैं। उनका मानना था कि आपस में मिलजुल कर भाईचारे को बढ़ावा देने से ही, हम अंग्रेजो के खिलाफ मजबूती से खड़े हो सकेंगे। मंजूर ने इस उपन्यास के माध्यम से हिंदू-मुस्लिम एकता को समाज में स्थापित करने के लिए, गाँधी के विचारों को अत्यंत आवश्यक माना है। मंजूर ने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में घटित घटनाओं और विभाजन की स्थिति पर विचार करते हुए, वर्तमान को यह संदेश देने का प्रयास किया है कि आपसी नफरत और धार्मिक एकीकरण की राजनीति भारत के लिए एक बार नुकसानदेह साबित हो चुकी है, मौजूदा दौर में गाँधी जी के विचारों को पुनः

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 130-131
[2] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 124

अपने विचारों, व्यवहारों में लाने की आवश्यकता है। गाँधी ने एक ऐसे स्वतंत्र भारत की परिकल्पना की थी, जिसमें सभी वर्ग, जाति, धर्म व भाषा के लोग मिल-जुलकर एक साथ रह सकें। हम जानते हैं कि देश के विभाजन ने गाँधी जी को सर्वाधिक दुखी किया। स्वतंत्रता के बाद भी गाँधी जी मुसलमानों के हितों की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहे। गाँधी जी का व्यवहार मुसलमानों के प्रति सदैव सहिष्णुतापूर्ण रहा है। साहित्य, समाज, राजनीति, शिक्षा आदि सभी में गाँधी का व्यापक असर रहा है, लेकिन बदलते दौर में सन् 1980 के बाद राजनीति में सांप्रदायिक तत्वों का उभार हुआ, जिनका असर समाज में भी देखा जा सकता है।

4.3.3. 'मुस्लिम लीग' का प्रभाव-

'मुस्लिम लीग' की स्थापना 1906 में आगा खां के नेतृत्व में हुआ। मुस्लिम लीग मुसलमानों के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा स्थापित पार्टी थी, जिसके अधिकांश नेता कांग्रेस की नीतियों से असहमत होकर अलग पार्टी के रूप में 'लीग' की स्थापना किए थे। मुस्लिम लीग ने अंग्रेजी सत्ता के समक्ष मुसलमानों के अलग प्रतिनिधित्व की माँग रखी थी, इसके साथ ही सरकारी सेवाओं में भी सार्थक भागीदारी, विश्वविद्यालयों की स्थापना, न्यायालयों तथा अन्य सरकारी संस्थाओं में मुसलमानों की भागीदारी को सुनिश्चित करना उसके प्रमुख माँग रहे हैं। जिसके परिणामस्वरूप सन् 1909 में 'मार्ले मिंटो सुधार' अधिनियम लागू किया गया। जिसमें मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में पृथक मतदाता मंडल के निर्वाचन की माँग को स्वीकार किया गया था। इस अधिनियम से व्यावहारिक स्तर पर केवल उच्चवर्गीय मुसलमानों को लाभ हुआ। 1914-15 में जिन्ना और गाँधी के प्रयास से हिन्दू-मुस्लिम एकता को भारतीय राजनीति का मुख्य स्वर बनाया गया। परिणामस्वरूप 1916 में लखनऊ में जिन्ना के प्रयास से मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच समझौता हुआ। किंतु यह समझौता अधिक समय तक न टिक सका और वे पुनः अलग हो गए। 1920 में 'खिलाफत आंदोलन' के दौरान गाँधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रव्यापी आंदोलन हुआ, जिसमें कांग्रेस और लीग ने मिलकर अंग्रेजी हुकूमत का विरोध किया। 1935 तक मुस्लिम लीग एक क्षेत्रीय पार्टी के रूप में कार्य करती रही। मुस्लिम लीग से ज्यादातर जमीदार, नवाब, धनाढ्य, उच्च शिक्षित मुसलमानों का ही जुड़ाव रहा। आम मुसलमानों

का मुस्लिम लीग से कोई सरोकार नहीं था और न ही मुस्लिम लीग गरीब, अशिक्षित व निम्नवर्गीय मुसलमानों की समस्याओं को प्रशासनिक स्तर पर उठाती थी।

मुस्लिम लीग और भारतीय मुसलमानों के सम्बन्ध को मंजूर एहतेशाम ने भी अपने उपन्यासों में दिखाया है। मंजूर ने मुस्लिम लीग को मौकापरस्त लोगों की पार्टी बताया है। 'बशारत मंजिल' उपन्यास में वे लिखते हैं-"लेकिन मुस्लिम लीग को मुसलमानों में भी नवाबजादो, अमीरजादो, जमीदारों और पढ़े-लिखो के अलावा, जिनकी तादाद बहुत ही कम है, कौन जानता है? यह उन लोगों की जमात है जिनके पास सब कुछ वैसे ही है और गरीब मुसलमानों के नाम पर वह हुकूमत से और आसानियाँ चाहते हैं। मगर उनका नामलेवा तो कोई नजर नहीं आता। न कांग्रेस में न मुस्लिम लीग में। सब अपने-अपने फायदे के लिए दुकानें खोले बैठे हैं।"[1] इस प्रकार मंजूर एहतेशाम गरीब मुसलमानों के संदर्भ में दोनों ही पार्टियों की निंदा करते हैं। मंजूर एहतेशाम धर्म के आधार पर राजनीति करने वालों की भी निंदा करते हैं। मुस्लिम नेताओं की संकुचित नजरिए और स्वार्थपरकता को वह विभाजन के लिए जिम्मेदार मानते हैं। मंजूर ने पाकिस्तान की माँग को भी मुस्लिम लीग के नेताओं का स्वार्थ बताया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में मंजूर ने यह स्पष्ट किया है कि अगर पाकिस्तान की बुनियाद धर्म की रक्षा तथा मुसलमानों के बेहतर भविष्य के लिए की गई होती, तो फिर बांग्लादेश का विभाजन क्यों होता? क्या मुसलमान भाषा के नाम पर आपस में लड़ते-मरते? वास्तव में यह राजनीतिक दलों की स्वार्थपरकता है। जिसके कारण पहले पाकिस्तान और फिर बांग्लादेश के रूप में मुल्क का विभाजन हुआ। 'सूखा बरगद' उपन्यास में पाकिस्तान से आया हुआ परवेज यह मानता है कि भारत में मुसलमानों के लिए ज्यादा आजादी है। 'लीग' द्वारा पाकिस्तान की माँग के पीछे मुसलमानों को जो सब्जबाग दिखाया गया था, वह विभाजन के बाद पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों के लिए बहुत बड़ा फरेब था। मुसलमानों के इस दर्द को कमलेश्वर ने 'लौटे हुए मुसाफिर' में बड़ी मार्मिकता से दिखाया है।

मंजूर ने 'मुस्लिम लीग' की अलगाववादी विचारधारा को कभी भी मुसलमानों के हित में नहीं बताया है। उनका मानना है कि धार्मिक कट्टरता या धर्म के आधार पर बनाया गया राजनीतिक समीकरण, किसी भी देश के भविष्य के लिए खतरनाक हो

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 69

सकता है। विभाजन के दौरान हुए हिंसा का जिम्मेदार नेता ही हैं। मंजूर 'मुस्लिम लीग' से ज्यादा कांग्रेस को मुसलमानों का हिमायती मानते हैं। उनका मानना है कि लीग का अवाम से उतना जुड़ाव नहीं था, जितना कि कांग्रेस का था। यही नहीं लीग मुसलमानों के धार्मिक मूल्यों को भी सिर्फ राजनीति के हथियार के रूप में प्रयोग करती थी। उसका धार्मिक भावनाओं से ज्यादा जुड़ाव नहीं था। इस संबंध में मंजूर लिखते हैं-"खिलाफत कमेटी.....मुस्लिम लीग से कहीं ज्यादा हिंदुस्तानी मुसलमानों की नुमाइंदगी करती थी। लीग को आम लोग उस तरह जानते ही नहीं थे, जिस तरह उन्होंने खिलाफत कमेटी को जाना। उसमे मुस्लिम लीग के कर्ता-धर्ता कम शामिल थे। और कमियाँ जो भी रही हो, मगर इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि उस कमेटी में नेशनलिस्ट मुसलमानों की मेजॉरिटी था जो आखिर तक कांग्रेस में रही और उसने लीग की अहलेहदगी पसंद पॉलिसियों की मुखालफत की।"[1] जिन्ना के नेतृत्व में 1937 में हुए चुनाव में 'मुस्लिम लीग' को मात्र 5% वोट प्राप्त हुए। जबकि कांग्रेस की लोकप्रियता मुस्लिम क्षेत्रों में बढ़ती है। इसके बाद नेहरू ने घोषणा किया कि अब भारत में केवल दो ही पक्ष होंगे कांग्रेस और अंग्रेज। नेहरू ने जिन्ना द्वारा लीग और कांग्रेस की मिली-जुली सरकार बनाने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। परिणामस्वरूप जिन्ना 1937 तक आते-आते पाकिस्तान बनाने की योजना बनाने लगे, जो 1947 में सामने आया। इस प्रकार मुस्लिम लीग के नेतृत्व में अलग देश पाकिस्तान का निर्माण हुआ। इससे असहमत करोड़ों मुसलमान भारत में रहना पसंद किए। कुछ जबरदस्ती या डरवश पाकिस्तान चले गए। इस प्रकार पूरे देश के मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करते हुए, 'मुस्लिम लीग' मुसलमानों के नाम पर एक अलग देश बनाने में सफल हुई।

4.3.4. वर्तमान राजनीतिक परिवेश-

स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति में कई परिवर्तन हुए। सरकार द्वारा जनता की अपेक्षाओं पर खरा न उतरने के कारण लोगों का आजादी से मोहभंग हुआ। एक तरफ शासन प्रणाली में निरंकुशता ने भ्रष्टाचार, महँगाई, बेरोजगारी, गरीबी, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं को अनदेखा किया, वहीं दूसरी ओर जाति, धर्म और वर्गभेद की समस्या समाज में निरंतर बनी रही। राजनीति में सांप्रदायिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा मिला। जिसके आड़ में जाति, धर्म व भाषाई विवाद को प्रमुखता देते हुए भारतीय

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 163

राजनीति का नया चेहरा गढ़ा गया। स्वतंत्रता के बाद भाषाई आधार पर राज्यों का गठन होना और जाति, धर्म के आधार पर सीटों का बँटवारा होना, देश की अखंडता और धर्मनिरपेक्षता के लिए समस्या बनती गयी। इन सब बिंदुओं पर कांग्रेस पार्टी की असमर्थता ने देश में व्यापक असंतोष को जन्म दिया। देश में बढ़ती सांप्रदायिक गतिविधियों ने अपनी पकड़ मजबूत की। इंदिरा गाँधी द्वारा लगाए गए आपातकाल से राजनीतिक-निरंकुशता व तानाशाही शासन प्रणाली का जन्म हुआ। जनता के अधिकारों को सीमित किया गया। जिसके विरुद्ध देश की विभिन्न क्षेत्रीय पार्टियों ने एकजुट होकर कांग्रेस का विरोध किया। आपातकाल के दौरान राजनीति में नए-नए युवा चेहरों ने अपनी सक्रियता दिखाई। राजनीति से भ्रष्टाचार मुक्त करने तथा जनता के अधिकारों के पक्ष में 'जयप्रकाश नारायण' ने इंदिरा गाँधी के खिलाफ बिहार से अपना आंदोलन शुरू किया। इस आंदोलन का प्रेरणास्त्रोत गुजरात के छात्र आंदोलन को माना जाता है। गुजरात में घरेलू व रोजमर्रा के सामानों की कीमतों में अचानक भारी वृद्धि होने से छात्र सड़क पर उतर आए, जिसके परिणामस्वरूप इंदिरा गाँधी ने गुजरात की विधानसभा को भंग कर राष्ट्रपति शासन लगा दिया था। जिसके विरुद्ध वहाँ के छात्रों द्वारा विरोध प्रकट किया गया। यह विरोध देशव्यापी बनता गया और इसमें जयप्रकाश नारायण की अहम भूमिका देखी गयी। जयप्रकाश नारायण ने अपने आंदोलन को देशव्यापी बनाया। कई विश्वविद्यालयों के राजनीतिक संगठन और छात्र इस आंदोलन में सक्रिय हुए। इस आंदोलन को मध्यवर्ग, व्यापारी वर्ग, बुद्धिजीवी और छात्रों का भरपूर समर्थन प्राप्त हुआ। इस आंदोलन से देश की राजनीति में बड़ा परिवर्तन हुआ। 1977 में हुए आम चुनाव में जनता पार्टी और उसकी सहयोगी पार्टियों ने आशातीत सफलता प्राप्त की। गठबंधन ने 542 सीटों में से 330 सीटों पर विजय प्राप्त की और मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री के रूप में चुना गया। इस पूरे बदलते राजनीतिक परिदृश्य को मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। इस सम्बन्ध में मंजूर लिखते हैं- "समझौता पसंदगी की सबसे बड़ी मिसाल सन् 1969 में राष्ट्रपति के चुनाव के बाद सन् 1977 में लोकनायक जयप्रकाश नारायण के आह्वान पर देखने को मिली जब महमूद और अयाज सब मिलकर इंदिरा गाँधी के विरुद्ध जनता पार्टी के बैनर तले जमा हो गए। होना तो कुछ सक्रिय चाहिए था, आपातकाल की ज्यादतियों के बाद, और इसी मंशा से शायद लोगों ने जनता पार्टी को इतना भारी जनादेश देकर जिताया था लेकिन देखते-ही-देखते जनता

पार्टी फिर से भारतीय जनता पार्टी और जनता दल में विभाजित हो गई और यह विभाजन की प्रक्रिया अब बिल्कुल नए कीर्तिमान स्थापित करती नजर आती है।"[1] मंजूर दल-बदल की राजनीति को सकारात्मक नजरिए से नहीं देखते। उन्होंने पार्टियों का विलय हो जाना और छोटी पार्टियों का समाप्त हो जाना, नेताओं का दल-बदल आदि को बिगड़ते हुए स्वार्थपरक राजनीति का परिणाम माना है। राजनीति में बढ़ती हुई स्वार्थपरता और महत्वाकांक्षाओं ने राजनीति के आदर्शों और सेवा-भाव को कम किया है। राम मनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण जैसे नेताओं ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को अपने-अपने स्तरों पर सुलझाने का प्रयास किया था। मंजूर इन दोनों नेताओं द्वारा देश के बिगड़ते हालात में किए गए प्रयासों को महत्त्वपूर्ण बताते हैं। इमरजेंसी की घटना को भी मंजूर ने अपने उपन्यासों में दिखाया है। इमरजेंसी के दौरान जनता के अधिकारों को सीमित कर, विपक्षी पार्टियों के खिलाफ चलाये गए गैर लोकतांत्रिक प्रक्रिया की बुद्धिजीवियों द्वारा निंदा की गई है। साथ ही सरकारी व्यवस्था, सांप्रदायिक गतिविधियों, भ्रष्टाचार, जमाखोरी, कालाबाजारी आदि में हुए रातों-रात परिवर्तन व सुधार की प्रशंसा भी की जाती है। विपिनचंद्र लिखते हैं-"लेकिन कुछ महीने के अंदर ही जनता का आपातकाल से मोहभंग होने लगा। 1976 के उत्तरार्ध में जन असंतोष अपने चरम पर पहुँचने लगा था। इसके कई कारण थे। जनता को मिली सहूलियतें ज्यादा समय तक नहीं टिक पायी। आपातकाल के पहले वर्ष में जो आर्थिक विकास हुआ वह बना नहीं रह पाया। कृषि उत्पादन गिरने लगा और 1976 के अंत तक कीमतें 10 प्रतिशत तक बढ़ी। भ्रष्ट लोग, कालाबाजारिये और तस्कर आपातकाल के आरंभिक झटको के खत्म होते ही तुरंत फिर सक्रिय हो चुके थे।"[2] इमरजेंसी के दौरान भारतीय नेताओं, मंत्रियों व अफसरों के ऊपर भी सरकार द्वारा नियंत्रण रखा जा रहा था। सभी समय के पाबंद हो गए थे। गैरकानूनी गतिविधियों में लिप्त नेताओं को पार्टी से बाहर भी किया जा रहा था। 'पहर ढलते' उपन्यास में जफर बेग एक कांग्रेसी नेता है, जो गैरकानूनी गतिविधियों का विरोध करते हैं। 'जफर बेग' के चरित्र के माध्यम से तत्कालीन नेताओं के संयम, ईमानदारी, समय की पाबंदी और नियम का पालन करते हुए दिखाया गया है। उपन्यास में हुसैन साहब का बेटा गैर सामाजिक गतिविधियों में लिप्त होने के कारण जेल में बंद हो जाता है, लेकिन उसके बचाव में जफर बेग भी कोई सिफारिश नहीं करते। मंजूर ने

---

[1] मंजूर एहतेशाम, दास्तान-ए-लापता, पृष्ठ 159

[2] विपिन चन्द्र, आजादी के बाद भारत, पृष्ठ 342

दिखाया है कि आपातकाल के दौरान सरकार के पक्ष में समर्थन न देने वाले पत्रकारों को भी जेल भेज दिया जाता है।

मंजूर ने अपने उपन्यासों में कांग्रेस पार्टी, उसकी नीतियों, कार्य प्रणालियों, सफलताओं और असफलताओं पर विस्तार से चर्चा की है। नेहरू के समाजवाद का सिद्धांत, लाल बहादुर शास्त्री की नीतियाँ, भारत-चीन युद्ध, भारत-पाकिस्तान युद्ध, आपातकाल, पंचवर्षीय योजनाएँ, जनता पार्टी का उभार, दल-बदल आदि राजनीतिक गतिविधियों को मंजूर ने अपने उपन्यासों में जगह-जगह चित्रित किया है। इन तमाम राजनीतिक परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक व पारिवारिक संबंधों में हो रहे बदलाव को भी मंजूर ने रेखांकित किया है। एक ओर जहाँ देश में अनेक सुधार व विकास के कार्य हो रहे थे, वहीं दूसरी ओर भारतीय राजनीति में बढ़ती सांप्रदायिक गतिविधियाँ, मंजूर की मुख्य चिंता है। सन् 1984 में हुए सिक्ख दंगे, उससे पहले आपातकाल जैसी घटना, जिसमें सरकार की निरंकुशता का पता चलता है। मंजूर ने 'सूखा बरगद' उपन्यास में तमाम विकासशील योजनाओं के बीच मुसलमानों के सामाजिक व राजनीतिक चुनौतियों व पिछड़ेपन की जड़ तलाश करने की कोशिश की है।

स्वतंत्रता के बाद पूरे देश में मुसलमानों के विरुद्ध एक नकारात्मक छवि लगातार गढ़ने का प्रयास किया जा रहा है। सुहेल इस नकारात्मक छवि से बाहर निकलने व एक समन्वित समाज की स्थापना हेतु संघर्ष करता है। किंतु देश के बिगड़ते हालात उसे सांप्रदायिक स्थिति में पहुँचाने में सफल हो जाते हैं। रजब अली जैसे नेताओं द्वारा धर्म के नाम पर मुसलमानों के शोषण को भी मंजूर ने दिखाया है। मुसलमानों के विकास के नाम पर नेताओं द्वारा मस्जिद व मदरसे बनवाए जाते हैं। भारत में बदलते राजनीतिक परिवेश में मुसलमानों की स्थिति को असगर वजाहत, राही मासूम रजा, नासिरा शर्मा, अब्दुल बिस्मिल्लाह आदि रचनाकारों ने भी अपने उपन्यासों में यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। मंजूर इन सभी उपन्यासकारों से अलग अपनी पहचान बनाते हैं। वे सिर्फ राजनीतिक घटनाओं व चुनौतियों का चित्रण नहीं करते हैं, बल्कि वे उसकी पूरी प्रक्रिया में जाते हैं तथा उन कारणों की तलाश करते हैं, जिसके कारण मुसलमान राजनीति में हाशिए पर पहुँच चुका है। मंजूर ने धर्म और राजनीति के गठजोड़ की पूरी प्रक्रिया की गहन पड़ताल की है। आर.एस.एस., जमात-ए-इस्लामी, विश्व हिंदू परिषद, बजरंग दल, भारतीय जनता पार्टी के उदय व कांग्रेस की सांप्रदायिक नीतियों के बीच धार्मिक

संगठनों का राजनीति में सक्रिय होना और मुसलमानों को लगातार लक्ष्य बनाना, भारतीय राजनीति की दिशाहीनता को व्यक्त करता है। मंजूर धर्म को राजनीति में प्रयोग किए जाने के विरुद्ध हैं। उनका मानना है कि धर्म एक व्यक्तिगत मामला है। इस प्रकार मंजूर ने स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति की बदलती छवि को प्रस्तुत किया है। मंजूर ने बदलते राजनीतिक परिदृश्य में मुसलमानों के असंतोष को प्रमुखता से दिखाया है। इसके अलावा सांप्रदायिक गतिविधियों और धार्मिक राजनीति के बढ़ते प्रभाव को लेकर चिंता भी व्यक्त की है।

4.4. साम्प्रदायिक स्वरूप-

सांप्रदायिकता वर्तमान भारतीय समाज की एक जटिल समस्या बन चुकी है। भारत में इसकी शुरुआत 18वीं शताब्दी में उपनिवेशवादी शासन व्यवस्था के साथ मानी जाती है। अधिकांश विद्वान इस बात से एकमत है कि सांप्रदायिकता एक आधुनिक परिघटना है, जो भारत में अंग्रेजी शासन व्यवस्था के आने के बाद जन्मी है। 1857 का स्वाधीनता संग्राम के पश्चात् भारत में सांप्रदायिक घटनाओं और विचारधारा को व्यापक रूप से प्रसारित किया गया। अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति को अपनाया, जिसके परिणामस्वरूप भारत में सामाजिक व राजनीतिक स्तर पर हिंदू-मुसलमान के बीच लगातार दूरी बढ़ती गई और यह हिंसा, नफरत व दंगे के रूप में आज अपने चरम अवस्था में विद्यमान है। मंजूर एहतेशाम ने भारत की सांप्रदायिक राजनीति पर गंभीरता से विचार करते हुए, एक सौहार्दपूर्ण वातावरण के निर्माण की परिकल्पना प्रस्तुत की है।

मंजूर के उपन्यासों में सांप्रदायिकता के विभिन्न पहलुओं को देखा जा सकता है। उन्होंने स्वतंत्रता पूर्व व पश्चात् के सांप्रदायिक स्थितियों को अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। स्वतंत्रतापूर्व सांप्रदायिक स्थिति पर 'बशारत मंजिल' उपन्यास में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। इस उपन्यास में गाँधी जी को केंद्र में रखकर हिंदू-मुस्लिम सौहार्द को दिखाया गया है। जिसमें संजीदा अली, जहाँआरा बेगम, बिरजू जैसे पात्र हिंदू-मुस्लिम एकता की मिसाल पेश करते हैं-"बिरजू मिर्जा जमाल बेग के घर काम करने वाली मेहतरानी चन्दो और मेहतर दया का बेटा था जिसका जन्म संजीदा के कुछ दिन बाद हुआ था। बेटे की पैदाइश के बाद चन्दो गंभीर रूप से बीमार पड़ गई थी

और उस बीच एक महीने जहाँआरा बेगम ने संजीदा के साथ-साथ बिरजू को भी दूध पिलाया था।"[1] उपन्यास में मिर्जा जमाल बेग और लाला शोहरत राय के बीच घनिष्ट मित्रता को दिखाया गया है। मिर्जा अपने पारिवारिक फैसले को सबसे पहले लाला शोहरत राय को सुनाते थे। इसी प्रकार उनके परिवार का नौकर जीवनलाल और उसका पुत्र प्रेमलाल देहलवी, मास्टर कैलाश नारायण, धनपत राय आदि के साथ मिर्जा के पारिवारिक मधुर संबंधों के माध्यम से मंजूर ने स्वतंत्रतापूर्व हिंदू-मुस्लिम सद्भाव को दिखाने का प्रयास किया है। उपन्यास में गाँधी जी के विचारों से प्रभावित मुस्लिम समुदाय का वर्णन किया गया है। गाँधी जी के आंदोलनों में भागीदारी व समर्थन करने वाले मुसलमानों की एक अच्छी-खासी तादाद उस दौर में थी, जिसे आमतौर पर इतिहास में उतनी प्रमुखता नहीं दी जाती, जितनी कि मुस्लिम लीग के समर्थक मुसलमानों को। इस ऐतिहासिक तथ्य को मंजूर ने 'बशारत मंजिल' उपन्यास के माध्यम से प्रमुखता से दिखाने का प्रयास किया है। इसके अलावा कांग्रेस पार्टी के साथ मुसलमानों के एक बड़े वर्ग का जुड़ाव व भारतीय स्वाधीनता संग्राम में उनकी भागीदारी को भी इस उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। मंजूर ने सन् 1857 के बाद लगातार भारत में बढ़ती सांप्रदायिक घटनाओं को 'सूखा बरगद' उपन्यास में भी दिखाया है। 1857 का विद्रोह हिंदू-मुस्लिम एकता का मिसाल पेश करता है। जिसमें गाय और सुअर की चर्बी से बने कारतूस को लेकर सिपाहियों द्वारा विद्रोह किया गया था। इस विद्रोह ने अंग्रेजी सत्ता की जड़ों को हिला दिया था। इस विद्रोह के संबंध में विपिन चंद्र लिखते हैं-"1857 के विद्रोह की शक्ति बहुत कुछ हिंदू-मुस्लिम एकता में निहित थी। सैनिक तथा जनता हो या नेता, हिंदुओं और मुसलमानों के बीच पूरा-पूरा सहयोग देखा गया।"[2] इस विद्रोह के बाद हिंदू और मुसलमानों की धार्मिक एकता को विभाजित करने में अंग्रेजों द्वारा कूटनीति अपनाई गयी। गोकशी और विभिन्न धार्मिक मुद्दों पर मतभेद की स्थिति उत्पन्न की जाने लगी। सांप्रदायिक दंगों को भड़काने के लिए मंदिरों व मस्जिदों में गाय व सूअर के मांस फेंके जाने लगे।

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में 'मुस्लिम लीग' और 'हिंदू महासभा' के गठन से राजनीतिक स्तर पर एक गहरे मतभेद और उग्र सांप्रदायिक स्थिति को जन्म दिया। लेकिन यह मतभेद सामाजिक स्तर पर इतने गहरे रूप में विद्यमान नहीं रहे,

---

[1] बशारत मंजिल, मंजूर एहतेशाम, पृष्ठ 32-33

[2] विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 141

विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में सांप्रदायिकता का प्रसार नहीं हो पाया था। इसलिए विभाजन के दौरान अधिकांश ग्रामीण हिंदुओं, मुसलमानों और सिक्खों को भारत-पाकिस्तान के विभाजन की सूचना अचंभित करने वाली लगी थी। इस स्थिति को विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। विभाजन पर लिखे उपन्यासों में विशेषकर 'पाकिस्तान मेल', 'आधा गाँव', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'झूठा सच' आदि में ग्रामीणों द्वारा यह आश्चर्य व्यक्त किया गया है कि वे अपने गाँव को छोड़कर क्यों जाए? मंजूर एहतेशाम राजनीतिक स्वार्थपरकता और धार्मिक कट्टरता का विरोध करते हैं। सामाजिक ताने-बाने को मजबूत बनाने तथा आपसी प्रेम व भाईचारे को बनाए रखने के लिए 'सूखा बरगद' उपन्यास में अब्दुल वहीद कहते हैं-"उस जमाने में बँटवारे से दस साल पहले से लेकर बँटवारे तक, जो इंसानी हकों की पायमाली, जुल्मों जबरदस्ती और दुश्मनी मजहब के नाम पर देखने में आई, उसे देखकर लगा, इंसानों के लिए इंसानों का बनाया कानून ही ज्यादा बेहतर हो सकता है।"[1]

मंजूर ने सांप्रदायिकता को प्रश्रय देने वाले नेताओं और कठमुल्लों के स्वार्थी चरित्र को भी अपने उपन्यासों में दिखाया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में रजब अली सांप्रदायिक राजनीति को प्रश्रय देकर अपने राजनीतिक हित को पूरा करता है। वह प्रत्येक घटना को हिंदू-मुस्लिम रंग देने में माहिर है और आम जनता को धर्म के नाम पर गुमराह करता है। इसी तरह असगर साहब भी हिंदू मुस्लिम सियासत को बढ़ावा देते हुए नजर आते हैं। विश्वविद्यालय से प्रोफेसर की मुअत्तिली को भी हिंदू-मुस्लिम रंग देकर सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया जाता है। इस तरह के कई उदहारण के माध्यम से साम्प्रदायिकता के उभार को मंजूर ने दिखाया है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय नेताओं ने सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने में विशेष भूमिका निभाई। साथ ही देश में लगातार बढ़ रहे सांप्रदायिक दंगों पर सरकारों द्वारा कोई ठोस प्रतिक्रिया नहीं अपनाई गई। इस संबंध में मंजूर एहतेशाम लिखते हैं- "देश में सांप्रदायिक उन्माद पल और पनप रहा है। यह आपको भी मालूम है, मैं भी जानता हूँ। नेता व्यंग्य करते हैं कि हमारा निशाना इक्कीसवीं सदी हो गया है। तो किसी अच्छे निशाने में हर्ज भी क्या है ? लोग बात करते हुए नाराज होते हैं कि मंजिल तो इक्कीसवीं सदी है और राह में रोड़ा बन रहे हैं मंदिर-मस्जिद, सूबा-गुरुद्वारा और पर्सनल लॉ।"[2]

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 69

[2] मंजूर एहतेशाम, दास्ताने लापता पृष्ठ 83

इक्कीसवीं सदी पूरी दुनिया में ज्ञान-विज्ञान से लैस, वैज्ञानिक चेतना से संपन्न युग के रूप में जाना जाता है। जिसमें भूमंडलीकरण, उत्तर-आधुनिकता और प्रौद्योगिकी के विकास के लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ा जा रहा है। ऐसे में भारत की राजनीति में धर्म और सांप्रदायिकता सबसे बड़ा और प्रमुख मुद्दा बनाया जा रहा है। गौ-हत्या, राम मंदिर, शमशान-कब्रिस्तान, मॉब लिंचिंग, तीन तलाक, लव जिहाद, पर्सनल लॉ, समान सिविल कोर्ट, हिंदुत्व खतरे में है, जैसे मुद्दों पर लोकसभा और विधानसभा के चुनाव लड़े जा रहे हैं। देश में लगातार सांप्रदायिक तनाव व दंगों को बढ़ावा दिया जा रहा है, ताकि जनता का ध्यान गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी, स्वास्थ्य, शिक्षा जैसी बुनियादी समस्याओं पर न जाए। मंजूर सांप्रदायिकता को भारतीय समाज के लिए अभिशाप मानते हैं। उनका मानना है कि इस आपसी नफरत और वैमनस्य का दुष्परिणाम विभाजन के रूप में यह देश झेल चुका है, जिसमें करोड़ों लोगों की जिंदगियाँ बर्बाद हुई। इसलिए इस नफरत को मिटाकर एक सौहार्द्रपूर्ण वातावरण का निर्माण करना होगा। मंजूर का भोपाल शहर से गहरा लगाव है। वे बार-बार भोपाल शहर का जिक्र अपने उपन्यासों में करते हैं। भोपाल शहर में हो रहे विभिन्न बदलाव के साथ-साथ सांप्रदायिकता के बढ़ते प्रसार पर भी गहरी चिंता व्यक्त करते हैं। भोपाल एक पुराना रियासत रहा है, जिसे आजादी के बाद मध्यप्रदेश की राजधानी घोषित किया गया। 'सूखा बरगद' उपन्यास में रशीदा कहती है- "और तभी शहर में एक ऐसी घटना हुई, जो जहाँ अपने तरह की पहली थी। एक मुस्लिम रियासत होने के बावजूद बँटवारे के समय भी यहाँ कभी भी हिंदू-मुस्लिम तनातनी या झगड़ा फसाद नहीं हुआ था। बुजुर्गों की जबान में कहा जाए तो यहाँ हिंदू मुसलमान भाई-भाई की तरह रहते थे।"[1] भोपाल शहर में सांप्रदायिकता का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार किया गया और इसके लिए कई दंगे भी प्रायोजित कराये गये। इसके अलावा जमशेदपुर दंगे का भी जिक्र मंजूर ने इस उपन्यास में किया है। 1964 में जमशेदपुर में भीषण दंगा हुआ था, जिसमें हजारों मुसलमानों की हत्या कर दी गई थी। इसके अलावा सन् 1984 के सिख दंगे को 'मदरसा' उपन्यास में दिखाया गया है। 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस के पश्चात् पूरे देश में व्यापक रूप से दंगा हुआ, जिसमें राजनीतिक पार्टियाँ भी महत्त्वपूर्ण भूमिका में रही। मंजूर ने इन सभी घटनाओं का वर्णन अपने उपन्यासों में किया है।

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 43

मंजूर ने सांप्रदायिकता की समस्या को वैश्विक स्तर पर भी समझने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि सांप्रदायिकता मूलतः धार्मिक समस्या नहीं है, बल्कि यह एक राजनीतिक वर्चस्व की लड़ाई है, जिसे धर्म के आवरण में प्रतिफलित किया जाता है। वे भारत-पाक विभाजन को भी एक राजनीतिक घटना मानते हैं, जिसमें धर्म के नाम पर राजनीतिक वर्चस्व को कायम रखने के लिए अंजाम दिया गया था। इसी प्रकार व पाकिस्तान और बांग्लादेश के विभाजन को भी भाषाई राजनीति और वर्चस्व की लड़ाई का परिणाम माना जाता है। मंजूर ने पाकिस्तान और बांग्लादेश के विभाजन के सन्दर्भ से यह भी स्पष्ट किया है कि सांप्रदायिकता की समस्या मूलतः धार्मिक समस्या नहीं है। यदि ऐसा होता तो पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान के लोग जो कि एक ही धर्म के मानने वाले हैं, वे आपस में क्यों लड़ते और देश का विभाजन क्यों होता है ? 'सूखा बरगद' उपन्यास में रशीदा कहती है-"मैं निर्जीव सी, चित्त पड़ी, देश में आम हो आए हिंदू-मुसलमान दंगों को याद करती रही और उन बेगिनती बंगाली मुसलमानों को जो पूरबी पाकिस्तान से, अपने ही मजहब के दूसरे 'भाइयों' की जुल्मों-ज्यादाती से बचने के लिए, हिंदुस्तान की सीमा में शरण लिए हुए थे।"[1]

'सूखा बरगद' उपन्यास में पाकिस्तान से आए परवेज का मानना है कि हिंदुस्तान के मुसलमान दूसरे देशों के मुकाबले कहीं बेहतर स्थिति में हैं। मंजूर ने देश में लगातार बढ़ रहे सांप्रदायिक तनाव की स्थिति को भारत के विकास में बाधक भी बताते हैं। भारत में सांप्रदायिकता के विकास में 'जनसंघ', 'हिन्दू महासभा', 'विश्व हिंदू परिषद', 'जमात-ए-इस्लामी' जैसे संगठनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इन संगठनों ने धर्म और संस्कृति के नाम पर जनता में अलगाववादी चेतना का विस्तार किया। दुर्भाग्य की बात यह रही कि स्वतंत्रता के पश्चात् भी इन संगठनों पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया गया। बल्कि राजनेताओं ने इसे प्रश्रय देकर अपने चुनावी समीकरण को और मजबूत किया। मंजूर सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और वैमनस्य को मित्रता के माध्यम से दूर करने का सुझाव देते हैं। 'मदरसा' उपन्यास में अलीगढ़ वाले मामू कहते हैं-"सियासत आपसी नफरतों के ईंधन पर पल रही थी, और हमारा यकीन था कि उसका तोड़ मुहब्बत के जरिए किया जा सकता था।"[2] मंजूर एक आशावादी रचनाकार हैं, इसलिए वे वर्तमान स्थिति पर चिंता तो व्यक्त करते हैं, लेकिन साथ ही भविष्य में एक स्वस्थ राष्ट्र व समाज की

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 108
[2] मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृष्ठ 192

परिकल्पना भी प्रस्तुत करते हैं। 'सूखा बरगद' उपन्यास में अब्दुल वहीद इस आपसी नफरत को ज्यादा दिनों तक नहीं चलने वाली समस्या बताते हैं। उनका मानना है कि सांप्रदायिक शक्तियों की जड़ों में इतनी ताकत नहीं है कि वह अधिक लंबे समय तक समाज में मौजूद रहे। मंजूर भारत में मुसलमानों के खिलाफ हो रही सांप्रदायिक राजनीति पर भी चिंता व्यक्त करते हैं। मुसलमानों को संदेह की दृष्टि से देखने, अल्पसंख्यक होने के नाते बहुसंख्यक वर्ग द्वारा उपेक्षित किए जाने पर भी वे चिंतित हैं।

मदरसा उपन्यास में साबिर नईम और पिंकी का विवाह सांप्रदायिक शक्तियों को चुनौती देता है। मंजूर ने इस उपन्यास में सिक्खों और मुसलमानों के बीच के सांप्रदायिक तनाव को इस घटना के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में सांप्रदायिकता की समस्या को व्यवहारिक स्तर पर समझाने का प्रयास किया है। साथ ही उन्होंने विभिन्न घटनाओं के माध्यम से सांप्रदायिकता की खोखली और तर्कहीन सिद्धांतों का वर्णन किया है। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं तथा सामाजिक ताने-बाने में धर्म की भूमिका गौण रूप में होती है और मौजूदा समय में जब ज्ञान-विज्ञान और तकनीक के विकास से तमाम पुरानी मान्यताएँ खंडित हो रही हैं। रोजगार की समस्या और भागदौड़ भरी जिंदगी में स्वयं को समायोजित करने में ही अपनी अपनी अधिकांश ऊर्जा नष्ट हो जा रही है। ऐसे में आपसी नफरत और हिंसा जीवन के सुख और शांति को और नष्ट करेंगी। इसके उदाहरण के रूप में 'मदरसा' उपन्यास के पूरे घटनाक्रम को देखा जा सकता है। मंजूर ने इस उपन्यास में पूँजीवाद के प्रबल दबाव को सांप्रदायिकता और आपसी संबंधों के संदर्भ में दिखाया है। इसके अलावा मंजूर ने कम पढ़े-लिखे लोगों के बीच सांप्रदायिकता के प्रसार और किस्से-कहानियों के माध्यम से गलत धारणा के प्रसार को भी दिखाया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में औरंगजेब और शिवाजी को लेकर बच्चों को सुनाई जा रही कहानियों में सांप्रदायिकता के रंग व विचार को प्रस्तुत किया गया है।

सांप्रदायिकता का धर्म से एक गहरा रिश्ता कायम किया गया है। धार्मिक शक्तियों का दुरुपयोग कर समाज में सांप्रदायिक चेतना का विस्तार किया जाता रहा है। अधिकांश संदर्भ में हम देखे तो धार्मिक वर्चस्व या उपेक्षा के भाव को आधार बनाकर सामाजिक रूप से जनता को एकजुट करने का प्रयास किया जाता है, जैसे सांप्रदायिक हिंदुओं ने ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मुगलों ने हिंदुओं पर बहुत अत्याचार किया। इसलिए अब हिंदुओं को एकजुट होकर उसका प्रतिशोध मुसलमानों से लेना चाहिए। इसी क्रम में बाबरी मस्जिद विध्वंस कराया

गया। सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने के लिए प्राचीन संस्कृतियों, मूल्यों, मान्यताओं को गौरवपूर्ण बताया जाता है और वर्तमान संस्कृति को विनाशकारी सिद्ध करने का पुरजोर प्रयास किया जाता है। मंजूर एहतेशाम ने इन सांप्रदायिक विचारों का तर्कपूर्ण ढंग से खंडन करते हुए, जड़ों की ओर लौटने वाले नारे को संकुचित व विकास विरोधी बताया है। साथ ही वे ऐसे लोगों को बौद्धिक रूप से कमजोर और पिछड़ा कहते हैं, जो अपने वर्तमान समस्याओं का समाधान अतीत में खोजते हैं। 'इस्लाम खतरे में है' या 'हिंदू खतरे में है' जैसे नारे राजनीतिक समीकरण को मजबूत करने के सिवा कुछ भी नहीं है। सांप्रदायिकता की उत्पत्ति और उसके चरित्र को व्यक्त करते हुए सुभाष चंद्र लिखते हैं- "सांप्रदायिकता हमेशा उच्च वर्ग के हितों की सेवा करने का औजार रही है। समाज के सामान्य लोगों के दुख-दर्दों से सांप्रदायिकता का कोई लेना-देना नहीं है। अपने ही संप्रदाय के बीच अशिक्षा, गरीबी, कुपोषण, अंधविश्वास, बेकारी, भ्रूण-हत्या, स्त्री विरोधी पुरातन मानसिकता, जातिगत ऊँच-नीच की अमानवीय प्रथा के प्रति कभी आवाज नहीं उठाई जाती क्योंकि सांप्रदायिक दृष्टि में यह समस्याएँ ही नहीं हैं। सांप्रदायिकता के लिए गरीबी समस्या नहीं है बल्कि गरीब समस्या है, उन्हें मैनेज करना इसका उद्देश्य है।"[1]

सांप्रदायिकता रूढ़ और पारंपरिक मान्यताओं को पोषित करती है। वर्तमान स्थितियों और समस्याओं पर विचार न करते हुए वह धर्म और संस्कृति की दुहाई देती है। मंजूर ने सांप्रदायिक समस्या का निदान करते हुए सर्वप्रथम धर्म और संस्कृति के सवाल को ही समझने का प्रयास किया है। मंजूर स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि धर्म मानव समाज को संचालित करने का एक माध्यम भर है, जिसके कुछ नियम या उपादान बताए गए हैं। बदलते दौर में हर पुरानी चीज में परिवर्तन होनी चाहिए। धार्मिक मान्यताएँ व संस्कृति भी रूढ़ न होकर परिवर्तनशील हो सकती है और तभी वह वर्तमान के साथ प्रासंगिक हो सकेगी। इस प्रकार मंजूर ने सांप्रदायिकता के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए एक समन्वित संस्कृति के निर्माण पर बल दिया है।

[1] सुभाष चंद्र, सांप्रदायिकता, पृष्ठ 8

4.5. धार्मिक स्वरूप-

इस्लाम धर्म एकेश्वरवाद और समानता की भावना पर आधारित है, किंतु व्यवहारिक स्तर पर इसमें विविध मत और संप्रदायों का समावेश देखा जा सकता है। इस संबंध में पूर्व के अध्याय में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। मंजूर एहतेशाम ने भी इस्लाम के विभिन्न सम्प्रदायों और उसके आपसी मतभेद को अपने उपन्यासों में दिखाने का प्रयास किया है। मुसलमानों के धार्मिक स्वरूप की चर्चा उनके उपन्यासों में इस प्रकार की गई है-

4.5.1. इस्लाम के विविध मत एवं संप्रदाय-

इस्लाम धर्म का सबसे बड़ा विभाजन शिया और सुन्नी के रूप में देखने को मिलता है। इन दोनों सम्प्रदायों के भीतर भी कई मतभेद देखे जा सकते हैं, जो विभिन्न संप्रदायों के नाम से जाने जाते हैं। मुसलमानों में सुन्नी मत को मानने वाले लगभग 80 प्रतिशत हैं, जबकि शिया मत के अनुयायी 20 प्रतिशत के करीब है। दोनों संप्रदायों के बीच धार्मिक मतभेद इतने गहरे रूप में है कि इन दोनों के मस्जिद और कब्रिस्तान भी अलग-अलग होते हैं। सुन्नी संप्रदाय में भी अलग-अलग कई धाराएँ देखी जा सकती हैं। जिनमें अहले हदीस या वहाबी पंथ का विकास भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में तेजी से हुआ है। यह पंथ बीसवीं सदी में मौलाना अशरफ अली थानवी द्वारा शुरू किया गया। इस पंथ में इस्लामिक कानून की अलग तरह से व्याख्या की गई है। देवबंदी, कुरान और हदीस को शरीयत का मूल स्रोत तो मानते हैं, किंतु अल्लाह के बाद वे 'नबी' को दूसरा स्थान प्रदान करते हैं। जबकि बरेलवी तथा अन्य पंथ के लोग हजरत मुहम्मद को खुदा के बाद दूसरे स्थान पर बताते हैं। वहाबी पंथ मूलतः धार्मिक सुधार की दृष्टि से शुरू किया गया था, किंतु कालान्तर में धार्मिक कट्टरता को अधिक बढ़ावा देने लगा। इसलिए मंजूर एहतेशाम ने इसकी तुलना आर्य समाजियों से की है। जो कि धार्मिक-सामाजिक सुधारवादी आंदोलन के रूप में विकसित हुए, किंतु कालांतर में उनके बीच धार्मिक कट्टरता बढ़ती चली गई। मंजूर इस्लाम के विभिन्न मतों और संप्रदायों की स्थिति और उसके मतभेद को सामाजिक समरसता में बाधक बताते हैं। भारत में शिया-सुन्नी के भेद के बाद दूसरा सबसे बड़ा धार्मिक मतभेद या झगड़ा देवबंदी और बरेलवी संप्रदाय के बीच देखा जाता है। इन दोनों संप्रदायों का विकास भारत के दो प्रमुख शहर बरेली और देवबंद में बीसवीं शताब्दी के आसपास हुआ है। इन दोनों संप्रदायों के आपसी संबंध को मंजूर ने इस प्रकार

दिखाया है-“एक वहाबी (जिसे अहले हदीस भी कहा जा सकता है और वलीउल्लाही भी) और दूसरा रजाखानी या बरेलवी।

एक, इस्लाम के दो अलग-अलग ऑब्जेक्ट-ड्राइंग्स, जो अपने सिवा किसी को, असलियत तो छोड़े, उसका धुँधला सा अक्स भी, मानने को तैयार नहीं थे।”[1]

इन दोनों संप्रदायों के अलावा धार्मिक प्रचार आंदोलनों का भी असर भारतीय समाज पर देखा जा सकता है। वैश्विक स्तर पर सुन्नी मुसलमानों द्वारा धार्मिक आंदोलन के लिए ‘तबलीगी जमात’ नामक संगठन बनाया गया है। यह संगठन भारत में भी प्रभावी रूप से काम करती है। भारत में इसकी शुरुआत 1927 में मुहम्मद इलियास अल-कांधालवी ने किया था। ‘तबलीगी जमात’ की शुरुआत ‘देवबंदी’ आंदोलन की एक शाखा के रूप में हुआ। जिसमें इस्लाम के भीतर उत्पन्न पथभ्रष्टता या अवमूल्यन को समाप्त कर कुरान की पुनःव्याख्या व परिभाषित करके धार्मिक प्रचार-प्रसार को बढ़ावा दिया गया। इस आंदोलन का विरोध ‘जमात-ए-इस्लामी’ तथा अन्य दूसरे संगठनों ने किया, क्योंकि यह आंदोलन केवल धार्मिक कर्मकांड को बढ़ावा देती है। लोगों को सामाजिक और पारिवारिक जीवन व दायित्व से दूर रहकर दिन-रात धर्म प्रचार करना, इस आंदोलन की नकारात्मकता को सिद्ध करता है। मंजूर ने इस आंदोलन का उल्लेख करते हुए लिखा है-“प्रमुख रूप से दो सोच के मुसलमान थे- तबलीगी जमात समर्थक और उसके विरोधी, जिनका संबंध आमतौर पर जमात-ए-इस्लामी से मिलता था। वैसे कॉलेज और शिक्षा के क्षेत्र में असल योगदान बोहरा समुदाय का था।”[2] तबलीगी जमात की तरह ‘जमात-ए-इस्लामी’ भी एक पुनरुद्धारवादी आंदोलन है। जिसकी शुरुआत 1941 में सैयद अहमद ने लाहौर में की थी। यह आंदोलन धार्मिक कायदे-कानून के हिसाब से जीवन यापन पर बल देती है। धार्मिक पाखंड और फिरके को समाप्त कर, ईश्वर की अखंडता पर जोर देती है। स्वतंत्रता के पश्चात यह आंदोलन कई वर्गों में विभक्त हो गया और फिर राजनीति में भी सक्रिय हुआ।

भारत में सूफी विचारधारा का प्रभाव व्यापक रूप में देखा जा सकता है। सूफी-संतों का भारत में आगमन 12वीं शताब्दी के आसपास हुआ था। इन्हें इस्लाम धर्म का प्रचारक भी बताया जाता है। सूफीवाद इस्लाम की उदारवादी व्याख्या करता है। यह

---

[1] मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृष्ठ 149

[2] मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृष्ठ 115

पंथ अपना संबंध हजरत मुहम्मद से जोड़ता है। सूफी मत की प्रमुख विशेषता यह है कि यह सांस्कृतिक समन्वय की बात करता है। इस पंथ में प्रेम तत्व को प्रमुखता दी गई है। लेकिन बाद के दिनों में इसमें भी धार्मिक कट्टरता का समावेश होने लगा। अकबर द्वारा चलाए गए 'दीन-ए-इलाही' में भी सूफी दर्शन को आधार बनाया गया था। इसके बारे में मंजूर लिखते हैं-"अकबर ने धर्मनिरपेक्ष नजरिये से तसव्वुफ़ की कई बातों को अपने दीन ए इलाही में शामिल किया था, मगर ऐसा करते हुए लगभग सभी कठमुल्लों और किसी हद तक सूफी विचारधारा के लोगों को भी नाखुश कर दिया था।"[1] मंजूर ने धार्मिक एवं सांस्कृतिक समन्वय पर विशेष जोर दिया है। वे उन सभी धार्मिक कट्टरवादी मतों और आंदोलनों की निंदा करते हैं, जो बदलते दौर के साथ धार्मिक कायदे-कानून के परिवर्तन के पक्ष में नहीं है। मुसलमानों के आपसी मतभेद और पिछड़ेपन में वे धार्मिक जड़ता और कट्टरता को एक प्रमुख कारण मानते हैं। धर्म के नाम पर हो रही राजनीति भी, इसी कट्टरपंथियों के कारण संभव हो सकी है। मुल्ले-मौलवियों ने धर्म पर एकाधिकार स्थापित कर समाज में कट्टरता को बढ़ाया है। मंजूर का मानना है कि ऐसे ही लोगों के कारण सूफी धर्म और दीन-ए-इलाही जैसे धर्मों का प्रचार-प्रसार भारत में न हो सका। आपसी सौहार्द के लिए धार्मिक और सांस्कृतिक समन्वय का प्रयास अत्यंत आवश्यक है। ऐसे में सूफी विचारधारा और दीन-ए-इलाही जैसे धर्म का विकास होना चाहिए था।

मंजूर ने इस्लाम के विभिन्न मतों, संप्रदायों की चर्चा करते हुए बोहरा समुदाय की विशेषताओं को भी रेखांकित किया है। 'मदरसा' उपन्यास में उन्होंने इस बात का वर्णन किया है कि शिक्षा और स्कूल-कॉलेज के निर्माण में बोहरा समुदाय की विशेष भूमिका रही है। भोपाल की स्थिति पर चर्चा करते हुए वे इस बात को विशेष रूप से रेखांकित करते हैं कि भोपाल में स्कूल-कॉलेज की स्थापना में एक बड़ी भूमिका बोहरा समुदाय की रही है। बोहरा समुदाय आर्थिक रुप से हमेशा से संपन्न रहा है। अधिकांश बोहरा समुदाय के लोग व्यापार से जुड़े हुए हैं। इसके अलावा मंजूर ने सैयद और पठान वर्ग की धार्मिक मान्यताओं का भी चित्रण किया है, जो सुन्नी समुदाय का एक प्रमुख अभिजात्य वर्ग है।

[1] मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृष्ठ 257

4.5.2. धार्मिक रूढ़िवाद का खंडन-

मंजूर ने धार्मिक रूढ़िवाद का पुरजोर विरोध अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में इस्लाम धर्म की परंपराओं, मान्यताओं का तार्किक रूप से खंडन किया गया है। इस उपन्यास में अब्दुल वहीद इस्लाम में प्रचलित धार्मिक जड़ता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए, सूअर के मांस न खाने संबंधी मान्यता की पड़ताल की है। वह सुहेल को बताते हैं कि सूअर का मांस खाने के पीछे कोई धार्मिक रूढ़ि या मान्यता नही है, बल्कि उसके खान-पान के कारण उसे अपवित्र माना गया है। यदि सूअर अन्य जानवरों की तरह शाकाहार का सेवन करता है, तो उसे खाने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। यही नहीं वे स्वयं सूअर का मांस खाने की बात स्वीकार करते हैं और सुहेल के प्रश्नों का तर्कपूर्ण उत्तर देते हैं। मुसलमानों में बकरीद मनाने की प्रथा के पीछे जुड़ी कहानी को भी इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें फफू बताती हैं कि हजरत इब्राहिम अपने पुत्र हजरत इस्माइल को खुदा की राह में कुर्बान करते हैं। यह कहानी एक रूढ़ धार्मिक प्रथा के रूप में इस्लाम में प्रचलित हुई और बकरीद के अवसर पर जानवरों की बलि दी जाने लगी। मंजूर एहतेशाम हजरत इब्राहिम और इस्माइल की इस कहानी में निहित ईश्वरीय प्रेम और त्याग की भावना को प्रबल बताते हैं। जिसका एक प्रतीकात्मक अर्थ है। किंतु इस्लाम में यह कहानी एक रूढ़ि के रूप में प्रचलित हो गई है और उसकी मूल भावना गौण हो गयी। इसी प्रकार फफू फोटो खिंचवाने को इस्लाम के अनुसार गुनाह बताती हैं। आमतौर पर मस्जिद में इमाम पुरुषों को ही नियुक्त किया जाता है। वो बच्चों को बताती हैं कि औरतों का मस्जिद में जाना मना है। औरते इमाम नहीं हो सकती। सुहेल इस मसले पर तर्क करते हुए प्रश्न पूछता है कि क्यों नहीं हो सकती? तो फफू के पास इसका कोई उत्तर नहीं होता है। फफू द्वारा दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा को रशीदा और सुहेल अपने तार्किक चिंतन के आधार पर खंडित करते हैं। मंजूर एहतेशाम ने फफू, सुहेल, रशीदा और अब्दुल वहीद के आपसी बातचीत के जरिए, इस्लाम धर्म की रूढ़िवादी परंपराओं और मान्यताओं पर तर्कपूर्ण चिन्तन प्रस्तुत किया है।

मंजूर ने धार्मिक जड़ता और अंधविश्वास का एक बड़ा कारण मुल्ले-मौलवियों को माना है। इस्लाम के विभिन्न फिरके और धार्मिक झगड़े, इन्हीं लोगों द्वारा फैलाए जाते हैं। वे धर्म को बौद्धिक पिछड़ेपन का कारण बताते हुए लिखते हैं-"इन आसमानी मजहबों के साथ, बड़ा मसला यही है कि इमानवालों से पहला तकाजा अक्ल पर ताला डालने का

काम करते हैं, जो कुछ लोगों के लिए जितना आसान हो सकता है, दूसरों के लिए उतना ही मुश्किल भी। दुनिया का कारोबार एक बड़ी मिस्ट्री है जिसकी हिफाजत का जिम्मा इन सेमेटिक रिलीजन्स के पुरोधाओं ने अपने जिम्मे ले रखा है।"[1] मंजूर ने धार्मिक पुरोधाओं को सामाजिक पिछड़ेपन का प्रमुख कारण माना है। यही नहीं वे धर्म और राजनीति के समीकरण को मजबूत बनाने में भी इन धार्मिक पुरोधाओं को ही जिम्मेदार मानते हैं। 'सूखा बरगद' उपन्यास में अब्दुल वहीद नमाज और रोजा रखने से कहीं जरूरी एक बेहतर इंसान बनने की बात कहता है। मुसलमान होने का सबसे बड़ा तकाजा यही है कि आप अपने भीतर ईमान लाए, जबकि व्यावहारिक स्तर पर लोग रोजा-नमाज तो खूब करते हैं, लेकिन अपने ईमान पर कायम नहीं रहते। अब्दुल वहीद ऐसे लोगों को धार्मिक नहीं मानते। वे कहते हैं-"मजहब इनके लिए एक खास रब की इबादत करना, या एक खास तरह से जिंदा रहना ही नहीं, सबसे पहले तो एक धंधा है। बिल्कुल ऐसा ही समझ लो जैसे जूते बेचना।"[2] मंजूर एहतेशाम ने मुसलमानों की प्रमुख तीर्थ यात्रा 'हज' के औचित्य पर भी प्रश्नचिन्ह लगाया है। हज के लिए मुसलमान सऊदी अरब में मक्का की यात्रा करते हैं। इस दौरान कई तरह के कर्मकांडो का प्रावधान किया गया है। जिसमें संगे-अस्वद (एक काला पत्थर) को चूमना, शैतान को पत्थर मारना आदि शामिल है। मंजूर ने दास्तान-ए-लापता उपन्यास में हज की परंपराओं और कर्मकांडो के प्रति लोगों में प्रचलित अंधविश्वास को दिखाया है। दुल्हन चची हज करके वापस आती हैं, तो जमीर अहमद खान की अम्मा को वहाँ की स्थिति बताती हैं कि कैसे हज के दौरान लोग एक दूसरे को कुचल कर आगे बढ़ जाने की होड़ में लगे रहते हैं। शैतान को पत्थर मारने की परंपरा को वह बिल्कुल निरर्थक बताती हैं।

इस प्रकार मंजूर ने अपने उपन्यासों में विविध घटनाओं और पात्रों के माध्यम से धार्मिक रूढ़ियों का खंडन किया है। वह धर्म को उसके मूल रूप में स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है, उनका मानना है कि समय के बदलाव के साथ हर वस्तु में परिवर्तन होना चाहिए, तभी उसकी जीवंतता मौजूद रहेगी, अन्यथा वह जड़ हो जाएगी। मंजूर ने अपने संपूर्ण लेखन में धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या पर जोर दिया है साथ ही धर्म के नाम पर प्रचलित रूढ़ियों का विरोध भी किया है।

---

[1] मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृष्ठ 185

[2] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 60

4.5.3. धार्मिक सुधारवादी आंदोलन-

19वीं शताब्दी में समाज सुधार आंदोलन भारत में विशेष सक्रिय रहे हैं। जिस प्रकार हिंदू समाज में तमाम धार्मिक को कुप्रथाओं और रूढ़ियों के खिलाफ सामाजिक आंदोलन चलाए गए, उसी प्रकार मुस्लिम समाज में भी सुधारवादी आंदोलनों की विशेष सक्रियता इस दौर में देखी जा सकती है। यह आंदोलन दो तरह के थे- एक जिनमें धार्मिक सुधार पर विशेष बल था तथा दूसरा सामाजिक उत्थान से अधिक जुड़ा हुआ था। इन धार्मिक सुधारवादी आंदोलनों में वहाबी आंदोलन (1828), देवबंद आंदोलन (1867), अहमदिया आंदोलन (1889), सर सैयद अहमद खान द्वारा चलाया गया पुनरुत्थानवादी आंदोलन आदि प्रमुख है।

वहाबी आंदोलन को मुस्लिम समाज का पहला सुधारवादी आंदोलन माना जाता है। इस आंदोलन के संस्थापक सैयद अहमद बरेलवी थे, जो उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के रहने वाले थे। सैयद अहमद बरेलवी, शाह वलीउल्लाह से बहुत प्रभावित थे। शाह वलीउल्लाह दिल्ली के एक संत थे, जिनका जन्म 1703 ई० में हुआ था। शाह वलीउल्लाह ने अपने चिंतन में तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक तंत्र की विवेक सम्मत आलोचना करते हुए, मूल्य का श्रम सिद्धांत, इतिहास की समझ और उसकी प्रगतिशील गति जैसे सिद्धांतों की प्रस्तावना रखी थी। उनका यह चिंतन मार्क्स, रूसो और एडम स्मिथ से बहुत पहले का है, जिसे भारत में कोई महत्त्व नहीं दिया गया। अमरेश मिश्रा ने 3 मार्च 2018 को ‘हेरिटेज टाइम्स’ नामक पत्रिका में एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने शाह वलीउल्लाह के चिंतन को इन यूरोपीय विचारको से पूर्व का बताया है।

मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यास ‘बशारत’ मंजिल में शाह वलीउल्लाह की चिंतन पद्धति का वर्णन करते हुए लिखा है-“वलीउल्लाही तहरीक में कई खूबियाँ थी। उनके हिसाब से दुनिया में इस्लाम क्रांति के जरिए लाया जाना चाहिए था और उसे दो चीजों के जरिए लाया जा सकता था: (1) कुरान में दी गई शिक्षा का पालन करके, (2) दुनिया में आर्थिक संतुलन और इंसान-इंसान के बीच बराबरी कायम करके।.......सहकारिता और बराबरी की बात शाह वलीउल्लाह फ्रांस की क्रांति और कार्ल मार्क्स से बहुत पहले सोच रहे थे। सोच ही नहीं विस्तार से परिभाषित भी कर चुके

थे।"[1] शाह् वलीउल्लाह् समाज में बराबरी स्थापित करने के लिए आर्थिक समानता को प्रमुख मानते थे। उनका मानना था कि आर्थिक स्थिति का प्रभाव व्यक्ति के मानसिक स्थिति से भी जुड़ा हुआ होता है। वे कुरान में दिए गए आर्थिक मसले को समाज में लागू करने के हिमायती थे। उनका मानना था कि जकात, सदका और खैरात करने से पूँजी का वितरण समान रूप से हो सकेगा। वे सूदखोरी, जमाखोरी करके मुनाफा कमाना और बिना मेहनत के धन हासिल न करने संबंधी इस्लाम के मतों को पुनः परिभाषित करते हुए समाज में लागू करने पर बल देते हैं। उनका मानना था कि जिस समाज में आर्थिक संतुलन नहीं होगा, वहाँ न्याय भी नहीं हो सकता। इसी प्रकार उन्होंने इस्लाम की बुनियादी मान्यताओं को समाज में लागू करने की वकालत की। उनके मत से विभिन्न धर्मों और संप्रदायों के लोग प्रभावित हुए, शाह् वलीउल्लाह् ने अपने विचारधारा से सामंतवाद के खिलाफ आंदोलन शुरू किया। जिसमें विभिन्न धर्मों के लोग उनके सहयोगी बने। 1803 में उनके पुत्र शाह अब्दुल अजीज ने उपनिवेशवाद के विरोध में इस आंदोलन को और तेज किया। वलीउल्लाह् आंदोलन के प्रभाव के संबंध में अमरेश मिश्रा लिखते हैं- "1857 के शुरुआती दौर में सैयद अहमद शहीद का आंदोलन, 1806 में वेल्लोर विद्रोह, 1831 का कोल आंदोलन, महाराष्ट्र का रामोशी विद्रोह, कर्नाटक, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान, बिहार, बंगाल (फरायजी आंदोलन), असम, मणिपुर में किसान विद्रोह, केरल में मोपला विद्रोह, 1856 में संथालों का आंदोलन, ये सभी या शाह वलीउल्लाह् के आदर्शों से प्रेरित थे या शाह् वलीउल्लाह् के अनुयायियों के नेतृत्व में हुए।"[2] शाह् वलीउल्लाह् के विचारों को आत्मसात करते हुए सैयद अहमद बरेलवी ने 1828 में 'वहाबी आंदोलन' चलाया। यह आंदोलन 1828 से 1888 तक चला। इस आंदोलन की शुरुआत बिहार के पटना शहर में हुई और इसका विस्तार उत्तर पूर्वी और मध्य भारत में हुआ। इस आंदोलन के माध्यम से उपनिवेशवाद के खिलाफ सशक्त विद्रोह किया गया। बिहार और बंगाल के किसान, कारीगर और दुकानदारों ने इसका समर्थन किया। अंग्रेजों की दमनकारी नीति के कारण यह आंदोलन समाप्त हो गया। इस आंदोलन में सामाजिक सुधार के साथ-साथ धार्मिक मामलों पर भी विचार प्रस्तुत किया गया। वहाबी आंदोलन इस्लाम धर्म को उसके पुराने रूप में स्वीकार करने पर बल देता है। वह धार्मिक मामलों में किसी भी प्रकार के परिवर्तन के पक्ष में नहीं है।

---

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 30

[2] http://heritagetimes.in/mishra-on-shah/ date- 17/10/2019

मंजूर एहतेशाम अपने उपन्यासों में सर सैयद अहमद खान के योगदान को बार-बार रेखांकित करते हैं। सर सय्यद ने मुसलमानों के उत्थान के लिए विशेष कार्य किए। उन्होंने मुसलमानों के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए आधुनिक शिक्षा पद्धति को अपनाने पर बल दिया। 'अलीगढ़ एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज' की स्थापना के पीछे उनका मुख्य लक्ष्य यही था कि मुसलमान आधुनिक शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान की ओर बढ़े। इस संबंध में मंजूर लिखते हैं-"तालीम, तरबीयत, उर्दू की मौजूदा सूरत-शक्ल, वह शायरी शायरी हो या नस्र, जहाँ-जहाँ नजर जाती है उस पर सर सय्यद की छाप और जमाने के साथ चलने का तकाजा याद आता है। मजहब को भी उन्होंने जिंदगी में इस तरह शामिल करना चाहा कि वह अड़चन बनने की बजाय उनकी मददगार बन सके।"[1] सर सैयद ने मुसलमानों में धर्म के प्रति जागरूकता पैदा करने की कोशिश की। इसके लिए उन्होंने कुरान की व्याख्या आधुनिक संदर्भो के साथ जोड़कर वैज्ञानिक ढंग से की और इस्लाम धर्म की एकमात्र पुस्तक कुरान को बताया। उन्होंने कहा कि मुसलमानों को इस पुस्तक के अलावा अन्य किसी भी धार्मिक पुस्तक का अनुसरण नहीं करना चाहिए। उन्होंने इस्लाम धर्म को मानवतावाद का समर्थक बताया और उसकी गलत व्याख्या का विरोध किया।

मंजूर एहतेशाम सर सय्यद द्वारा चलाए गए सुधारवादी आंदोलनों की प्रशंसा करते हैं। साथ ही मुसलमानों के धार्मिक कट्टरता और रूढ़िवादिता की निंदा भी करते हैं, जिनके कारण सर सय्यद को इस्लाम धर्म से खारिज करने का फतवा जारी किया गया था। गाजीपुर मदरसा खोलने पर सर सय्यद का बहुत विरोध हुआ था। इसी तरह सर सय्यद को 'तहजीबुल अख़लाक़' नामक पत्रिका निकालने पर भी विरोध का सामना करना पड़ा था। यह सभी विरोध तत्कालीन धार्मिक पुरोधाओं, मुल्ले-मौलवियों द्वारा किया जा रहा था। सर सय्यद द्वारा मुसलमानों के लिए किए गए प्रयासों को विपिनचंद्र ने इस प्रकार रेखांकित किया है-"उन्होंने कहा कि धर्म के तत्व भी अपरिवर्तनीय नहीं है। धर्म अगर समय के साथ नहीं चलता तो वह जड़ हो जाएगा जैसा कि भारत में हुआ है। जीवनभर वे परंपरा के अंधानुकरण, रिवाजों पर भरोसा, अज्ञान तथा अबुद्धिवाद के खिलाफ संघर्ष करते रहे।.....सैयद अहमद खान का विश्वास था कि मुसलमानों का धार्मिक और सामाजिक जीवन आधुनिक, पाश्चात्य, वैज्ञानिक ज्ञान और संस्कृति को अपनाकर ही सुधर सकता है।"[2]

---

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 57

[2] विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 222-223

मंजूर ने मुसलमानों के बीच फैली फिरकापरस्ती और रूढ़िवादी मान्यताओं का विरोध करते हुए, सर सैयद अहमद खान के विचारों से अपनी सहमति व्यक्त करते हुए, इस्लाम में परिवर्तन की वकालत की है। उनका विचार है कि चौदह सौ साल पुराने धर्म में समय के साथ परिवर्तन होना चाहिए था। वे धर्म को एक प्रकार का संविधान मानते हैं। 'मदरसा' उपन्यास में मुसलमानों के धार्मिक सुधारवादी नेताओं का जिक्र करते हुए इमाम गजाली, शाह वलीउल्लाह, सैयद अहमद शहीद, शाह अब्दुल अजीज, मौलाना महमूदूलहसन व शेख अहमद सरहिंद का नाम लेते हैं। मंजूर ने इस उपन्यास में हमीद दलवई का भी वर्णन किया है। हमीद दलवई ने मुसलमानों के रूढ़िवादी और पिछड़ेपन के लिए स्वयं उन्हें ही दोषी माना हैं। हमीद दलवई ने मुसलमानों के साथ-साथ कट्टरपंथी हिंदुओं को भी समाज विरोधी बताया है। इसके अलावा मंजूर ने 'मुस्लिम सत्यशोधक मंडल' का भी जिक्र किया है। जिसकी स्थापना हमीद दलवई ने 1970 में पुणे में की थी। यह मंडल वर्तमान में भी मुसलमानों की समस्याओं पर काम करता है। हमीद दलवई की पत्नी मेहरुन्निसा भी इस मंडल से जुड़ी रही हैं, जो मुस्लिम महिलाओं के अधिकार के लिए काम करती थी।

इस प्रकार मंजूर ने मुस्लिम समाज के उन सभी प्रमुख सुधारवादी आंदोलनों की चर्चा अपने उपन्यासों में की है, जिन्होंने भारत के मुसलमानों के पिछड़ेपन और धार्मिक जड़ता को समाप्त करने का प्रयास किया है। इसके साथ ही मंजूर ने उन सभी आंदोलनों की कमजोरियों को भी रेखांकित किया है, जिन्होंने जिहाद को ज्यादा प्रश्न दिया, जैसे- वहाबी आंदोलन, अहमदिया आंदोलन, देवबंद आंदोलन आदि। ये आन्दोलन सामाजिक उत्थान से ज्यादा धार्मिक प्रचार-प्रसार पर बल देते हैं। मंजूर ने धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करते हुए, धार्मिक रुढ़िवादी विचारधाराओं, पंथों, संगठनों को समाज के लिए घातक बताया है।

4.5.4. मानवतावाद की स्थापना पर बल-

मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यासों में विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक स्थितियों, उसकी विषमताओं और परिवर्तनों को रेखांकित करते हुए, मानवतावाद को सर्वोपरि बताया है। उनके समस्त रचनात्मक प्रयासों में मानवीय संबंधों में मधुरता और निकटता लाने का प्रयास दिखाई देता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में विभिन्न धार्मिक व सांप्रदायिक मुद्दों पर बात करते हुए मनुष्य को सभी धर्मों और जातियों से बड़ा बताया

है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में अब्दुल वहीद विभिन्न धार्मिक पाखंडों की निंदा करते हुए मनुष्य प्रेम को सर्वोपरि बताते हैं-"मैंने हर तरह से उन्हें समझाने की कोशिश की कि मेरे लिए इंसान सारे खुदाओं से बड़ा है और चन्द रोजा जिंदगी जन्नत से कभी न खत्म होने वाले ऐशो-आराम से आला और अजीम। मैं इंसान के अलावा किसी खुदा में यकीन नहीं रखता।"[1] मंजूर ने अब्दुल वहीद के माध्यम से इस उपन्यास में जाति और धर्म के आधार पर समाज में व्याप्त भेदभाव और वैमनस्यता को समाप्त करने का प्रयास किया है। साथ ही नेताओं के स्वार्थी चरित्र को भी रजब अली जैसे पात्र के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए सांप्रदायिकता के सवाल पर भी गंभीरता से विचार किया है। उन्होंने धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति आदि सभी को मनुष्यता से कमतर बताया है। मंजूर ने 'बशारत मंजिल' उपन्यास में स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान धार्मिक एकीकरण और सांप्रदायिकता के उभार को सामाजिक समरसता के विरुद्ध बताया है। इस उपन्यास में गाँधी जी के चरित्र के माध्यम से मानवीय प्रेम और आपसी सौहार्द को बनाए रखने की वकालत की गई है। गाँधी जी के धर्मनिरपेक्ष विचारों और उनके आदर्शों को संजीदा सोज जैसे पात्र के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। उन्होंने धार्मिक विचारों और मान्यताओं को स्वयं तक सीमित करते हुए मनुष्य से प्रेम करने, उन्हें सम्मान देने और भेदभाव रहित समाज बनाने पर जोर दिया है। इस उपन्यास में संजीदा सोज गाँधीवाद से प्रभावित हैं और वे उनके आदर्शों को भारतीय समाज और देश के भविष्य के लिए आवश्यक बताते हैं- "संजीदा सोज ने भावनात्मक राजनीतिक मुद्दों को अनदेखा कर सही अर्थ में हिन्दी-उर्दू, हिंदू-मुसलमान और इंसानों में समानता को अपना आदर्श और नीति बनाने का प्रयास किया था। वह गंगा जमुनी तहजीब की सार्थकता और राष्ट्र के जीवन में उसका महत्त्व पाठकों के सामने रखते हुए, एक ऐसे राष्ट्रवाद की रूपरेखा प्रस्तुत करना चाहते थे जिसका आधार धार्मिक एकता से हटकर हो।"[2]

मंजूर अपने समस्त रचनाकर्म में धर्मनिरपेक्षता और मानवतावाद की स्थापना पर बल देते हैं। उनके समस्त चिंतन में धार्मिक और सांप्रदायिक एकीकरण का तीव्र विरोध देखने को मिलता है। उनके लेखन का मूल विषय स्वतंत्रता पश्चात् बदलता हुआ भारतीय परिवेश और उसकी जटिलताएँ हैं, जिनमें मानवीय मूल्यों का तेजी से विनाश होता दिखाई देता है। एक ओर जहाँ पूँजीवाद और नई आर्थिक नीतियाँ सामाजिक

---

[1] सूखा बरगद, मंजूर एहतेशाम, पृष्ठ 55
[2] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 124

संबंधों में क्षीणता ला रही हैं, वहीं दूसरी ओर लोकतांत्रिक व्यवस्था में धर्म और सांप्रदायिकता का बोलबाला बढ़ा है। इन दोनों के बीच मानवीय मूल्यों और संबंधों में तेजी से गिरावट हुई है और धार्मिक कट्टरता और उन्माद को बढ़ावा मिला है। इसलिए इन बदलावों को लेकर मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यासों में गहरी चिंता व्यक्त की है। वे सामाजिक बदलाव के लिए राजनीतिक और धार्मिक संगठनों से दूरी बनाए रखने की बात करते हैं। 'मदरसा' उपन्यास में अलीगढ़ वाले मामू साबिर से कहते हैं- "हम दोनों में एक चीज थी, जो हमारी दोस्ती की बुनियाद बनी: सियासत और सियासी जमातो से हटकर समाज को बदलने की ख्वाहिश....। -सियासत आपसी नफरतों के ईंधन पर पल रही थी और हमारे यकीन था कि उसका तोड़ मुहब्बत के जरिए किया जा सकता था।"[1] इस प्रकार मंजूर बे अपने उपन्यासों के माध्यम से आपसी प्रेम और सौहार्द को कायम रखने की कोशिश की है। उन्होंने धार्मिक एकता की जगह मानवीय एकता को बनाए रखने की जरूरत समझी है। समाज में तेजी से बदलते हुए सामाजिक एवं पारिवारिक संबंधों के साथ सकारात्मक मानवीय गुणों को प्रोत्साहित करते हुए आपसी संबंधों में मधुरता लाने का प्रयास किया है।

4.6. सांस्कृतिक स्वरूप-

मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यासों में उत्तर भारत में रहने वाले मुसलमानों के सांस्कृतिक परिवेश को विशेष रूप से चित्रित किया है। उनके उपन्यासों के पात्र वातावरण और घटनाएँ प्रमुख रूप से भोपाल, अलीगढ़, बरेली, दिल्ली आदि शहरों से संबंधित हैं। इन क्षेत्रों में निवास करने वाले मुसलमानों के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज और वेशभूषा लगभग एक समान है। भारत में रहने वाले मुसलमानों पर हिंदू संस्कृति का प्रभाव भी देखा जाता है, लेकिन यह प्रभाव ग्रामीण मुसलमानों पर अधिक है, जबकि शहरी क्षेत्र के मुसलमान अपनी एक अलग अभिजात्य संस्कृति बनाए हुए हैं। उन पर लोक संस्कृति का प्रभाव नहीं दिखाई देता। चूँकि मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यासों का केंद्र-बिंदु शहरी मुसलमानों को बनाया है, इसलिए उनके यहाँ लोक संस्कृति का चित्र नहीं दिखाई देता है। मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में अभिव्यक्त मुस्लिम समाज के सांस्कृतिक परिवेश को हम निम्न बिंदुओं में देख सकते हैं-

[1] मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृष्ठ 192

4.6.1. भाषा एवं साहित्य-

मंजूर ने अपने उपन्यासों में उत्तर भारत के शहरी क्षेत्रों के मुसलमानों में प्रचलित खड़ी बोली का प्रयोग किया है। जिसमे हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी का मिला-जुला रूप शामिल होता है। इसके अलावा उन्होंने भाषाई विवाद पर एक लंबी बहस भी प्रस्तुत की है। आमतौर पर मुसलमानों में उर्दू भाषा को लेकर विशेष रूचि देखी जाती है तथा साहित्य में भी शेरो-शायरी की तरफ उनका विशेष आकर्षण होता है। मंजूर ने अपनी भाषा में इन विशेषताओं को सम्मिलित करते हुए, भाषा और साहित्य को लेकर मुसलमानों के बीच प्रचलित रूढ़ियों, धारणाओं और विचारधाराओं को भी प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही हिन्दी और उर्दू विवाद को धार्मिक पहचान से जोड़ना तथा अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव को भी अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। इसके अलावा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य और उनकी विशेषताओं को भी जगह-जगह स्थान दिया है। बशारत मंजिल उपन्यास में सुहासिनी घोष नामक एक बंगाली लेखिका और संजीदा सोज नाम के एक उर्दू के शायर का चरित्र देखा जा सकता है। उनकी आपसी बातचीत से बंगला साहित्य की विशेषताओं तथा हिन्दी साहित्य के प्रति लेखिका के रुझान को भी दिखाया गया है। सुहासिनी, संजीदा को पुस्तकें भेंट करती है और स्वयं विभिन्न भारतीय भाषाओं की पुस्तकें पढ़ती रहती है। बंगला में रविंद्रनाथ टैगोर की साहित्यिक विशेषताओं और शांति निकेतन की स्थापना को लेकर भी उनके बीच बातचीत होती है। इसी तरह उर्दू के महान साहित्यकारों में जोश मलीहाबादी, दाग देहलवी, मिर्जा गालिब, मीर, अकबर इलाहाबादी आदि का वर्णन भी जगह-जगह दिखाई देता है। इसके अलावा स्वतन्त्रतापूर्व में निकलने वाली कई उर्दू पत्र-पत्रिकाओं का भी जिक्र उनके उपन्यासों में किया गया है, जिनमे मौलाना आजाद का 'अल हिलाल' और सर सय्यद का 'तहजीब-उल-अखलाक' आदि को देखा जा सकता है। इन सब के माध्यम से लेखक ने पढ़े-लिखे मुसलमानों के बीच साहित्य की लोकप्रियता को दिखाने का प्रयास किया है। बशारत मंजिल उपन्यास का पात्र संजीदा सोज भाषाई वैमनस्य को खत्म करना चाहता है, इसलिए वह 'सरजमीन' नामक साहित्यिक पत्र निकालने का फैसला करता है। जिसमें देवनागरी और फारसी लिपि दोनों का प्रयोग किया जाता है और उस पत्रिका में हिन्दी की खास कृतियों को उर्दू में और उर्दू की खास कृतियों का हिन्दी में अनुवाद करके प्रकाशित करने की योजना बनाई जाती है। इस घटना के माध्यम से मंजूर ने पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में आने वाले वित्तीय संकट को भी कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है-"लाला जी, सरजमीन ने

शुरू होने के छह महीने बाद ही जब पहला वित्तीय संकट झेला तो संजीदा ने महेश्वर दयाल से कहा था- इसके बावजूद कि यह अखबार घाटे का सौदा नजर आ रहा है, फिर भी हम अपने बूते-भर तो कोशिश करेंगे ही।"[1]

मंजूर ने साहित्य के प्रति मुसलमानों की उदासीनता को 'सूखा बरगद' उपन्यास में चित्रित किया है। रशीदा कहती हैं-"खानदान का माहौल ही ऐसा था कि नब्बे प्रतिशत लोग साहित्य के नाम पर कथा-साहित्य में कृशनचंदर, प्रेमचंद और कविता में ग़ालिब, इकबाल, मोमिन को ही सब कुछ समझते थे। कोई बुजुर्ग, किसी नौजवान के मुँह से सआदत हसन मंटो का नाम भी सुनकर उसे कभी क्षमा नहीं कर सकता था। उनकी नजर में मंटो अश्लील ही नहीं बल्कि एक गाली था। साहित्य के सारे दरवाजे नए वर्ग के लिए उर्दू की कुछ छुटपुट फिल्मी या रुमानी मासिक पत्रिकाएँ थी, जिन्हें बुजुर्ग 'मुअम्मा' भर के हजारों रुपए जीतने की आशा में खरीदते थे।"[2] इस प्रकार मंजूर ने मुसलमानों के घर में साहित्यिक अरुचि को दिखाया है। जबकि नई पीढ़ी के बीच साहित्यकारों और विचारको को लेकर एक विशेष रूचि देखी जा सकती है, जैसे कि इसी उपन्यास में सुहेल और परवेज दास्तोएवस्की, ज्याँ पाल सार्त्र, बोरिसपारस्त्राक, टालस्टाय, पर्लवर्क, स्टाइनबेक, कार्लमार्क्स आदि पर बातचीत करते हैं। इसके अलावा मंजूर ने एक और महत्त्वपूर्ण बिंदु की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट किया है कि दार्शनिकों के बारे आम मुसलमानों में जानकारी न के बराबर है। वह लिखते हैं कि नई पीढ़ी में अरस्तु के बाद अगर किसी दार्शनिक का नाम लिया जाता है, तो वह खलील जिब्रान है, वह भी इस भ्रम में कि खलील जिब्रान मुसलमान है।

मंजूर ने अपने उपन्यासों में विभिन्न भाषाओं के लेखकों का उल्लेख किया है। जैसे टायनबी, मीरा, टी०एस० इलियट, नेहरू, मौलाना आजाद, वजदी उल हुसैनी, चार्ली एंड्रयूज, सरोजिनी नायडू, महात्मा गाँधी आदि। मंजूर ने इनमें से कुछ लेखकों की रचनाओं का भी नाम लिया है तथा उनकी रचनागत विशेषताओं पर भी बात की है, जैसे महात्मा गाँधी का हिन्द स्वराज। अपने सभी उपन्यासों में मंजूर ने साहित्यकारों, विचारको, दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों आदि के बारे में आवश्यकतानुसार वर्णन करते हैं। वे इस बौद्धिक वर्ग की आवश्यकता और उनके विचारों को सामान्य लोगों तक पहुँचाने का भी प्रयास करते हैं। इसके अलावा उर्दू और संस्कृत साहित्य की विशेषताओं पर भी उनके

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 124
[2] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 10

विचार देखे जा सकते हैं। उर्दू शायरों में दाग देहलवी, अहसन मारहरवी, नूह नारवी, जालिब देहलवी, सीमाब अकबराबादी, लम्भुराम, जोश मलसियानी, नातिक गुलावठी, मौलाना मुहम्मद अली जौहर, जिगर मुरादाबादी, मुहम्मद इकबाल आदि का नाम लिया गया है। वहीं संस्कृत के वेद पुराण का नाम भी देखा जा सकता है। इसके अलावा मंजूर ने मुसलमानों के बीच शायरी शौक को भी दिखाया है। बशारत मंजिल उपन्यास में संजीदा सोज शायरी को ही अपना पेशा चुन लेते हैं। उन्होंने संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ मुसलमानों और उर्दू व फारसी के विद्वान हिंदुओं का भी जिक्र किया है। इस प्रकार उन्होंने भाषा को धर्म से अलग, ज्ञान की वस्तु मानने पर जोर दिया है। यही नहीं मंजूर के उपन्यासों में राष्ट्रीय एकता को सर्वोपरि मानते हुए भाषाई विवाद को भी सुलझाने का प्रयास देखा जा सकता है। मंजूर के उपन्यासों की यह विशेषता है कि भाषा और साहित्य को लेकर उन्होंने जितना भी चिंतन प्रस्तुत किया है, उसमें अधिकांशतः मध्यवर्ग के पात्रों की ही अधिक रूचि रही है। हमारे समाज की विशेषता भी यही है कि सामाजिक चिंतन की दिशा में मध्यवर्ग ही अधिक चिंतनशील रहता है।

4.6.2. रीति-रिवाज, पर्व एवं मान्यताएँ-

मुसलमानों के रीति-रिवाज, पर्व एवं मान्यताओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन पूर्व के अध्याय में किया जा चुका है। इसके साथ ही उनके बीच व्याप्त सांस्कृतिक विविधता को भी हम देख चुके हैं। मुसलमानों में प्रचलित अधिकांश रीति-रिवाज, लोक से प्रभावित हैं। रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी पुस्तक ‘संस्कृति के चार अध्याय’ में सांस्कृतिक आदान-प्रदान, समन्वय व प्रभावों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करते हुए, भारत की बहुसांस्कृतिक विशेषता को रेखांकित किया है। मंजूर एहतेशाम ने भी अन्य रचनाकारों की भांति भारतीय संस्कृति में प्रचलित रीति-रिवाजों का वर्णन करते हुए मुसलमानों के सांस्कृतिक स्वरुप को रेखांकित किया है। जन्म, विवाह व मृत्यु पर आयोजित विभिन्न रीति-रिवाजों का पालन करते हुए मुस्लिम समाज को उनके उपन्यासों में देखा जा सकता है। इसके अलावा कई धार्मिक मान्यताओं और अंधविश्वासों को भी उन्होंने चित्रित किया है। जैसे बशारत मंजिल उपन्यास में वे लिखते हैं-“वहीं अमतुल कबीर का ज्यादा वक्त नमाज-रोजे, नजर-नियाज, वजीफे पढ़ने और लोगों को गंडे ताबीज देने में बीत रहा था।......लोग उनके पास आते थे, जिन्नात और भूत-प्रेत के लिए ताबीज और

दम का पानी लेने के लिए।”[1] मुसलमानों में भूत-प्रेत और जिन्न की मान्यता रही है। यह नकारात्मक शक्तियाँ मानी जाती है, जो मनुष्य को ईश्वर-प्रेम और सत्य के मार्ग पर जाने से रोकती है। मुसलमानों में इन शक्तियों से बचने के लिए ताबीज पहनने का प्रचलन है। ताबीज में कुरान की आयतें लिखी होती हैं। इसी प्रकार कुरान की आयतों को पढ़कर, पानी में फूंक कर उसे पीड़ित व्यक्ति को पिलाया जाता है, जिसे दम का पानी कहा जाता है। यह सब मुसलमानों में प्रचलित अंधविश्वास है, जिसे धार्मिक मान्यताओं से जोड़ दिया गया है।

मुसलमानों में प्रचलित रीति-रिवाजों में मृत्यु-भोज, वैवाहिक अवसर पर मेहँदी व हल्दी की रस्म, कुरान-ख्वानी, मिलाद आदि का आयोजन किया जाता है। इसके अलावा और भी कई ऐसे रस्म है, जिन पर लोक का सीधा-सीधा प्रभाव दिखाई देता है। मुसलमानों में आपसी रिश्तो में वैवाहिक संबंध बनाने का प्रचलन अधिक है। विवाह से पूर्व मंगनी की रस्म पूरी की जाती है, इसमें परिवार वाले लड़के और लड़की के वैवाहिक रिश्ते की रजामंदी के लिए कुछ औपचारिकता पूरी करते हैं। कई बार यह रस्म बचपन में ही कर दी जाती है। इसी तरह विवाह के समय पाँच गवाहों के बीच लड़के और लड़की से वैवाहिक संबंधों की स्वीकृति माँगी जाती है। यह रस्म किसी मौलवी या काजी के माध्यम से पूरा कराया जाता है। इन सभी रीति-रिवाजों का वर्णन मंजूर के उपन्यासों में देखने को मिलता है।

मुस्लिम त्यौहार का वर्णन और विशेष अवसरों पर बनाए जाने वाले व्यंजन तथा धार्मिक कर्मकांड को मंजूर ने यथास्थान चित्रित किया है। मुस्लिम त्यौहारों का वर्णन करते हुए उपन्यास में वे लिखते हैं-“कोई त्यौहार वह पाबंदी से मनाती थी तो शबे-बारात, जब तरह-तरह के हलवे बनाए जाते, नजरों-नियाज और फातिहा दी जाती, और सारी रात अपनी तरह के जश्न का-सा माहौल होता। इसके अलावा ईद मिलादुन्नबी भी मनाई जाती और मिलाद पढ़ने का जिम्मा खासतौर पर संजीदा के सिर होता। वैसे मीठी ईद और बकरीद भी थी, जो सिवई और गोश्त को सारी बारीकी और नफासत के साथ पकवाकर खाने और खिलाने से अधिक जुड़ गई थी।”[2] मंजूर ने धार्मिक उत्सवों के महत्त्व को बदलते दौर में खत्म होते हुए भी दिखाया है। इस उपन्यास में अमतुल कबीर त्योहारों पर तरह-तरह के व्यंजन बनवाती हैं, लेकिन धार्मिक श्रद्धा और उसके मूल

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 44
[2] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 132

उद्देश्यों से उनका कोई संबंध नहीं रहता। मंजूर ने बदलते दौर में धार्मिक आस्था में आए परिवर्तन को भी रेखांकित किया है। उन्होंने यह दिखाने का प्रयास भी किया है कि किस प्रकार धार्मिक मान्यताओं को बदलते परिवेश के अनुसार लोगों ने अपने सहूलियत के हिसाब से बदल लिया है।

मुसलमानों के यहाँ शुक्रवार का दिन शुभ माना जाता है। इस दिन लोग दोपहर में जुमे की नमाज पढ़ने के लिए जाते हैं। कुरआन को अरबी भाषा में पढ़ने और धार्मिक शिक्षा से भी सभी मुसलमान अपने बच्चों को रूबरू कराते हैं। निम्न व मध्यम वर्गीय मुसलमानों के यहाँ इन दोनों का विशेष महत्त्व होता है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में रशीदा और सुहेल अरबी पढ़ने फफू के घर जाया करते हैं। रशीदा कहती है-"फफू की शिक्षा में अब्बू को भले ही कोई दिलचस्पी न रही हो लेकिन अम्मी हमारे मुँह से कलमे, दरूद और कुरान की आयतें सुनकर बहुत खुश होती थी। मुझे घर पर नमाज पढ़ने की ताकीद होती रहती थी और सुहेल को हर जूमे, नहला-धुलाकर सफेद कपड़ों में वह बड़वाली मस्जिद, हब्बा बुआ के पति या सलाम दादा के साथ भेजती।"[1] सूखा बरगद उपन्यास में धार्मिक मान्यताओं व संस्कारों का वर्णन फफू के माध्यम से किया गया है। वह बच्चों को दीनी तालीम देती है और उन्हें धार्मिक किस्से कहानियाँ सुनाती है। बकरीद पर कुर्बानी करने की प्रथा किस प्रकार शुरू हुई, यह घटना भी इस उपन्यास में फफू के माध्यम से बताया गया है। इसके अलावा हज के दौरान पूरे किए जाने वाले कर्मकांड का वर्णन भी मंजूर के उपन्यास 'दास्तान-ए-लापता' में देखा जा सकता है। इस उपन्यास में दुल्हन चची हज के अरकानों पर व्यंग्यात्मक कटाक्ष करती हुई कहती हैं- "शैतान को पत्थर मारने को पागल हुए जा रहे हैं यह समझ के कि बस, यही असली शैतान है।....रस्म सब अदा कर रहे हैं, मगर उसके पीछे छिपे, मायने मतलब समझने की अकल किसी में नहीं। क्या बताए यह सवाल-जवाब की पख ! अरे भाई, वहाँ हरम-शरीफ में खाना-काबा का तवाफ करते हुए दीवाने हुए जा रहे हैं। वह धक्का-मुक्की और कुश्तम पछाड़ा कि अल्लाह की पनाह ! और सब जान दे रहे हैं, संगे-असवद का बोसा लेने के लिए।"[2] इस प्रकार मंजूर एहतेशाम ने मुस्लिम समाज का चित्रण करते हुए जगह-जगह धार्मिक रीति-रिवाजों, त्यौहारों व मान्यताओं का वर्णन किया है। उनके उपन्यासों में चित्रित इन सांस्कृतिक गतिविधियों व आयोजनों में परिवेशगत बदलाव भी दिखाई

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 31

[2] मंजूर एहतेशाम, दास्ताने लापता, पृष्ठ 42

देता है। विभिन्न वर्गों के पात्र अलग-अलग तरह से धार्मिक मान्यताओं में विश्वास रखते हैं। अधिकांश संदर्भों में निम्न वर्गीय पात्रों का धार्मिक रीति-रिवाजों से ज्यादा जुड़ाव दिखाया गया है। जबकि मध्यम वर्ग इन रीति-रिवाजों और मान्यताओं को लेकर इतना गंभीर नहीं है। मध्यम वर्ग के कुछ पात्रों का जुड़ाव इन सब से है जबकि कुछ पात्र खुलकर धार्मिक पाखंड का विरोध करते हैं, जैसे अब्दुल वहीद, दुल्हन चची, साबिर नईम, संजीदा सोज, जमीर अहमद खान आदि। जबकि वहीं अमतुल कबीर, रशीदा की अम्मी, फफू, खद्दर आदि की आस्था अधिक दिखाई देती है। इसी तरह त्यौहारों को लेकर भी सभी वर्गों में अलग-अलग रुचि दिखाई देती है। इसके अलावा हराम और हलाल को लेकर भी एक बहस उनके उपन्यास में देखा जा सकता है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में अब्दुल वहीद द्वारा सूअर खाने और न खाने संबंधी विवाद को सुलझाया गया है। इसी तरह अन्य कई प्रकार के संदर्भ उनके उपन्यासों में देखे जा सकते हैं।

4.6.3. रहन-सहन एवं खान-पान-

मंजूर के उपन्यासों के पात्र विभिन्न आर्थिक वर्गों से संबंधित हैं, इसलिए उनके रहन-सहन और खान-पान में अंतर दिखाई देता है। उच्च वर्गीय मुसलमानों का चित्रण 'पहर ढलते' उपन्यास में किया गया है। जिसमे हनीफ मियाँ के घर शहर के रईस मुसलमानों की दावत होती है। दावत में कव्वाली की महफिल सजी हुई है। शराब और सिगरेट उस महफिल की शोभा बढ़ा रहे हैं। दावत में शिकार का गोश्त बना हुआ है। चमकते रेशमी परिधान में सजे सभी मेहमान नजाकत के साथ एक दूसरे से मिलजुल रहे हैं। स्त्रियों की टोली भी संगीत का पूरा आनंद ले रही है। हनीफ मियाँ की कोठी की साज-सज्जा और ऐशो-आराम के पूरे साधनों का चित्रण करते हुए मंजूर ने मुसलमानों के यहाँ वर्ग भेद को दिखाया है। इसी प्रकार 'बशारत मंजिल' उपन्यास में अमीर व मुस्लिम रियासतों से संबंधित नवाबों के खानदान से संबंध रखने वाले मुसलमानों के जीवन-स्तर व रहन-सहन का चित्रण इस प्रकार किया गया है-"शिकार के अलावा उन्हें नई इमारते बनवाने का शौक था और उनकी बनवाई शानदार कोठी कछारिया पर आए दिन मेहमानों का आना जाना रहता था और दावते होती थी। उस कोठी की सज्जा जानवरों के सींगों से की गई थी जिनमें बारहसिंघे, सांभर, चीतल, चिकारे सबके सींग इस्तेमाल किए गए थे। पलंग और सोफे तक उन्हीं सींगों के बनवाए गए थे और जहाँ-तहाँ जानवरों की खाल का भी उपयोग किया गया था। कछारिया का बाग भी बहुत खूबसूरती से

लगाया गया था और उसमें दुर्लभ फूल और फलों के दरख्त थे।”[1] मंजूर ने उच्च वर्गीय मुसलमानों का चित्रण करते समय बड़ी बारीकी से पूरे परिवेश को रेखांकित किया है।

मंजूर ने वास्तविकता के साथ उच्च वर्गीय मुसलमानों के जीवन स्तर और रहन-सहन को चित्रित किया है। ‘सूखा बरगद’ उपन्यास में भोपाल शहर में रहने वाले गरीब मुसलमानों के जीवन स्तर को चित्रित करते हुए उनके परिवेश से पाठक को रूबरू कराया गया है। फफू, कल्लो, सलाम दादा, इब्बू दादा, हब्बा बुआ, सईदा जैसे पात्रों के रहन-सहन और खान-पान को चित्रित करते हुए, उस पूरे परिवेश को दिखाने का प्रयास किया गया है, जिसमें एक निम्न वर्गीय मुसलमान का जीवन बसर होता है। फफू बिया के घर का चित्रण लेखक ने कुछ इस प्रकार किया है- “फफू के घर को घर कहना ठीक न होगा क्योंकि घर में शायद चारदीवारी के अलावा भी काफी कुछ होता है। यहाँ केवल लंबे आँगन के एक सिरे पर एक सकरा दालान था, जिसके थोड़े से हिस्से में फर्रे ठोककर एक कमरा सा बना दिया गया था। यह फफू के उठने-बैठने, सोने, इबादत करने की जगह थी।”[2] मंजूर ने निम्न वर्ग का चित्रण करते हुए बकरी, मुर्गी, कबूतर व भैंस पालन, सकरी व तंग गली, टूटे-फूटे मकान, मिट्टी का चूल्हा, धुँए से काली छत व दीवारें, अंधेरी व सीलन भरी कोठरी आदि का वर्णन करते हुए पूरे परिवेश को यथार्थ के धरातल पर अंकित किया है। आमतौर पर भारतीय मुसलमानों को लेकर समाज में यही स्वरूप दिखाया जाता है। समाज में यह धारणा बनी हुई है कि मुसलमान गंदे व तंग गलियों में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। हमने पिछले अध्याय में मुसलमानों की आर्थिक स्थिति का चित्रण करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत में रहने वाले अधिकांश मुसलमान निम्न वर्ग से संबंधित हैं। इस वर्ग के मुसलमानों का खान-पान बेहद असंतुलित है। इसी कारण उनके यहाँ कुपोषण व बीमारियाँ गंभीर अवस्था में देखी जा सकती हैं। मंजूर ने भी ‘सूखा बरगद’ उपन्यास में कल्लो की माँ को टी० बी० से खाँसते हुए दिखाया है। मंजूर की रचनाओं में विषयवस्तु की यह सीमा है कि उन्होंने निम्न वर्गीय मुसलमानों का चित्रण कम ही किया है, लेकिन जहाँ भी इस वर्ग का वर्णन मिलता है, वहाँ उन्होंने अपने लेखकीय कौशल से उस पूरे परिवेश को सजीव रूप में पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है।

मंजूर मुसलमानों के रहन-सहन का चित्रण करते हुए, उनके खान-पान और वेशभूषा को भी चित्रित किया है। ‘बशारत मंजिल’ उपन्यास में खीर का वर्णन कुछ इस

---

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 45
[2] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 17

प्रकार किया गया है-“बाईसवें रजब को खीर पकाकर मिट्टी के कुंडों में जमाई जाती थी। वह खीर सिर्फ दूध चावलों की न होती थी बल्कि पिस्ता बादाम की खीर, कलाकंद की खीर और रंगारंग फिरनियाँ होती थी, खुशबू में बसी हुई, सोने-रूपे के वरको और वरकियों से आरास्ता।”[1] इसी प्रकार ईद के मौके पर बनाई जाने वाली खीर, शबे-बारात पर तरह-तरह के मीठे हलवे और गोश्त के तरह-तरह के व्यंजनों का चित्रण भी देखा जा सकता है। ‘पहर ढलते’ उपन्यास में पान, सिगरेट और शराब के प्रचलन को उच्च वर्ग मुसलमानों के बीच दिखाया गया है। शिकार करके गोश्त बनाना, कव्वाली का आनंद लेना और मोटर गाड़ियों में बैठकर घूमना-फिरना, पार्टी करना, सुंदर वस्त्र और आभूषण पहनना इनके जीवन में शामिल है, जिसे ‘पहर ढलते’ व ‘बशारत मंजिल’ उपन्यास में दिखाया गया है।

4.6.4. वेशभूषा-

रचनाकार कथावस्तु और वातावरण को निर्मित करने तथा उसे सजीव रूप प्रदान करने के लिए कई छोटी-बड़ी चीजों पर ध्यान देता है, उनमें पात्रों की वेशभूषा भी काफी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। लेखक पात्रों में वर्ग भेद के अनुसार वस्त्रों का वर्णन करता है। मंजूर ने भी अपने उपन्यासों में अलग-अलग वर्गों के पात्रों का चित्रण करते समय अलग-अलग तरह के वेशभूषा में उन्हें दिखाया है। पहर ढलते उपन्यास में उच्च वर्ग के पात्र शेरवानी, सूट, कोट आदि पहने हुए हैं, वहीं महिला पात्रों को खूबसूरत रंग-बिरंगे वस्त्रों, रेशमी सालों, पूरे साज-सिंगार व आभूषणों से सुसज्जित दिखाया गया है। शबनम द्वारा पार्टी में पहने गये वस्त्र का वर्णन कुछ इस प्रकार से किया गया है-“शाल अलग करके उसने मसहरी पर डाल दिया था और आईने के किनारे छिपी हुई रोशनी की झालर जला दी थी। काली साड़ी, उसकी बहुत कीमती बनारसी साड़ियों में से एक, जिसका बॉर्डर सुनहरा था और आँचल पर छिटके बेगिनती सुनहरे बेल-बूटे।”[2] इसी प्रकार उनके आभूषणों और साज-सज्जा को दिखाते हुए, लेखक ने उच्च वर्ग के पात्रों का दृश्य अंकित किया है। बशारत मंजिल उपन्यास में गाँधीवादी पात्र संजीदा सोज को खादी का कुर्ता-पायजामा पहने हुए दिखाया है, वहीं गुलबदन नामक मुजरे वाली स्त्री बेल-बूटे और सितारे-जरी के काम वाला वस्त्र पहने हुए हैं। जबकि अन्य साधारण पात्र सामान्य वेशभूषा में चित्रित किए गए हैं। सूखा बरगद उपन्यास में भी इसी प्रकार सभी

---

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 62
[2] मंजूर एहतेशाम, पहर ढलते, पृष्ठ 62

पात्र अपने-अपने चरित्र के अनुरूप वेशभूषा में दिखाए गए हैं। रशीदा और सुहेल स्कूल में जाते समय उनके यूनिफॉर्म का जिक्र है। रशीदा के दादा पारंपरिक मुसलमानों में प्रचलित वस्त्र पहनते थे। अब्दुल वहीद उनके वेशभूषा के बारे में बताते हैं-"तुम्हारे दादा पढ़े-लिखे तो थे नहीं, और वैसे भी, अपने सारे भाइयों में वह सबसे छोटे थे। उनका पहनावा और पोशाक- वही पठानों का रिवायती सलवार कमीज, सिर पर बँधा कल्लाह, कांधे पर पड़ा रुमाल और पश्तो का लबों-लहजा।"[1] वे बताते हैं कि उनके समय तक आते-आते यह पारम्परिक वस्त्र किस तरह खत्म हो गया और वे स्वयं इस वेशभूषा से अलग हो गए। रशीदा बताती है कि उसके अब्बू पूरे खानदान से अलग शेरवानी की बजाय कमीज-पेंट या कोट पहनते थे। वे शेरवानी किसी विशेष अवसर पर कभी-कभी पहन लेते थे। जबकि उसकी अम्मी सलवार-सूट पहनती हैं और सिर से दुपट्टा ओढ़कर पर्दे में रहा करती हैं। इस उपन्यास में कुछ मुस्लिम परिवार की लड़कियों को स्कूल जाते समय बुरका पहने हुए दिखाया गया है, जबकि रशीदा स्कर्ट पहनती है। इसी प्रकार मंजूर ने विभिन्न तरह के मुस्लिम पात्रों का वर्णन किया है। निम्न वर्गीय मुस्लिम समाज का चित्रण करते समय उसके वेशभूषा को भी उसी के अनुरूप दिखाया गया है। जैसे कि बन्ने दादा के वेशभूषा का वर्णन करते हुए रशीदा बताती है-"दायीं ओर पहला घर इब्बू दादा का था जिन्हें कभी तो मैं सिपाहियों वाली खाकी ड्रेस और पीतल के बेज लगाए देखती, कभी मैला-कुचैला कमीज पजामा पहने, हाथ में लाठी लिए, भैंस को हॉकते, गालियाँ देते, डाँटते।"[2] इसी तरह उनकी बेटी को गंदे, फटे कपड़े पहने, बर्तन माँजते तथा भैंसों को घास के पुले खिलाते हुए दिखाई गई है। मंजूर ने कम पढ़े-लिखे मुसलमानों का चित्रण करते समय टोपी, कुर्ता-पायजामा, बुर्का, सलवार कमीज आदि में दिखाया है, जबकि उनके पढ़े-लिखे पात्र आधुनिक वेशभूषा में दिखाई देते है। इसी तरह पात्रों की शारीरिक संरचना, उनके चाल-ढाल व बातचीत के लहजे को भी लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता से अंकित किया है। मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में पात्रों के वेशभूषा और वातावरण के चयन में विशेष सावधानी देखी जा सकती है। जिस कारण उनके पात्र व घटनाक्रम सजीव दिखाई देते हैं। व्यक्ति के आंतरिक मनोभावों व शारीरिक कद काठी व बनावट का चित्रण भी बेहद सधे हुए रूप में देखा जा सकता है।

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 63

[2] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 25

मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में मुस्लिम समाज के विविध स्वरूप चित्रित किए गए हैं। मुसलमानों के आपसी विभेद से लेकर समाज में उनकी पहचान तथा स्थान को भी उपन्यासकार ने अपने विषय-वस्तु में शामिल किया है। अन्य धार्मिक समुदायों की भांति भारतीय मुसलमान भी आर्थिक रूप से कई वर्गों में विभक्त है। मंजूर ने उच्च, मध्यम व निम्न तीनों ही वर्गों को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। किंतु मध्यवर्ग को उनके उपन्यासों में अधिक जगह मिली है। देश की राजनीतिक व सांप्रदायिक स्थितियों पर चर्चा करते हुए भाषा, साहित्य, राष्ट्र, धर्म व संस्कृति आदि मुद्दों पर भी उन्होंने अपना विचार प्रस्तुत किया है। औद्योगीकरण और पूँजीवाद के विस्तार से मध्यवर्ग के समक्ष उत्पन्न रोजगार के संकट तथा बढ़ती महँगाई के कारण उत्पन्न समस्याओं पर भी मंजूर ने अपने उपन्यासों में विस्तारपूर्वक चर्चा की है। धार्मिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों पर व्यंग्यात्मक शैली में टिप्पणी की गई है। स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर भी उन्होंने बल दिया है। उनके अधिकांश स्त्री पात्र सशक्त तथा स्वावलंबी है। वे अपना निर्णय लेने में सक्षम है। अंतर्जातीय विवाह तथा पारिवारिक विखंडन की समस्या भी मंजूर के उपन्यासों में अभिव्यक्त हुई है। बदलते हुए आपसी संबंधों तथा मानवीय गुणों में आई शिथिलता भी उनकी चिंता का मुख्य केंद्र रहा है। पति-पत्नी के मध्य आ रही दूरियों तथा तलाक की समस्या को कुछ दिन और, दास्तान-ए-लापता, बशारत मंजिल तथा मदरसा उपन्यास में प्रमुखता से देखा जा सकता है। मंजूर ने अपने सभी उपन्यासों में प्रगतिशील विचारों वाले पात्रों का सृजन किया है। ये पात्र मंजूर की वैचारिक पृष्ठभूमि को उपन्यास में अभिव्यक्त करने में मदद करते हैं। विषय-वस्तु की गंभीरता मंजूर के उपन्यासों को सशक्त तथा प्रभावी बनाती है। शिल्प की दृष्टि से भी उनके उपन्यास महत्त्वपूर्ण हैं। उनके उपन्यासों में विविध शैलियों तथा भाषाई बहुलता को देखा जा सकता है। विविध विषयों को समाहित किए हुए उनके उपन्यास हिन्दी कथा साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

पंचम अध्याय

मंजूर एहतेशाम की कहानियों में अभिव्यक्त मुस्लिम समाज की स्थिति

पंचम अध्याय

मंजूर एहतेशाम की कहानियों में अभिव्यक्त मुस्लिम समाज की स्थिति

हिन्दी साहित्य में कहानी लेखन की व्यवस्थित शुरुआत भारतेंदु युग में होती है। हालाँकि इस युग की कहानियाँ अपने विषयवस्तु एवं शिल्प के दृष्टिकोण से उतने परिपक्व व विकसित नहीं दिखते, जितने कि निबंध और उपन्यास दिखाई देते है। फिर भी कहानी लेखन की दिशा में बीजारोपण का श्रेय इस युग के साहित्यकारों को जाता है। द्विवेदी युग में हिन्दी कहानी का व्यापक विस्तार हुआ। इस युग के कहानी लेखकों में किशोरी लाल गोस्वामी, रामचंद्र शुक्ल, बंग महिला, राधिकारमण सिंह, जयशंकर प्रसाद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी आदि विशेष महत्त्वपूर्ण रहे। कहानी के विकास में 'सरस्वती' और 'इंदु' पत्रिकाओं का भी विशेष योगदान रहा। प्रेमचंद के आगमन के बाद हिन्दी कहानी अपने उत्कर्ष को प्राप्त कर सकी। प्रेमचंद ने विभिन्न विषयों पर सैकड़ों कहानियाँ लिखकर हिन्दी कहानी को विभिन्न भाषाओं के साथ-साथ आमजन में भी लोकप्रिय बनाया। प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए सियारामशरण गुप्त, चतुरसेन शास्त्री, सुदर्शन, उग्र, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, अश्क, रांगेय राघव, भगवती चरण वर्मा आदि रचनाकारों ने कहानी विधा को समृद्ध किया।

हिन्दी कहानी में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का समावेश जैनेंद्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी आदि के द्वारा किया गया। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी कहानी में कई उतार-चढ़ाव देखे जा सकते हैं। सन् 1954-55 के दौर में कहानी के अंतर्वस्तु और शिल्प में व्यापक बदलाव हुए। इस युग की कहानियों में सूक्ष्मता का विस्तार हुआ और जीवन के विभिन्न अनुभवों और विसंगतियों का बारीकी से अंकन किया जाने लगा। इस युग की कहानियों में आत्मपरकता, व्यक्तिवादिता, अनुभवजन्यता, हताशा, विसंगतियाँ, मानसिक अंतर्द्वंद्व आदि का चित्रण अधिक दिखाई देता है। इन विशेषताओं को समाहित करने वाली कहानियों को 'नई कहानी' संज्ञा से अभिहित किया गया। नई कहानी आन्दोलन के प्रणेता 'जगदीश गुप्त' माने जाते हैं। इसके पश्चात् महीप सिंह ने 'सचेतन कहानी आन्दोलन', गंगा प्रसाद विमल ने 'अकहानी आन्दोलन', कमलेश्वर ने 'समानांतर कहानी आन्दोलन' और फिर 'जनवादी लेखक संघ' की ओर से 'जनवादी कहानी आंदोलन' विशेष

महत्त्वपूर्ण रहा। विभिन्न कहानी आंदोलनों के बीच हिन्दी कहानी विविध स्वरूप और आयाम ग्रहण करते हुए आधुनिक विधाओं में सर्वाधिक चर्चित व समृद्ध रही। इस दौर के कुछ साहित्यकार विभिन्न आंदोलनों से विमुख होकर स्वतंत्र लेखन भी करते रहे, जिन्हें कमलेश्वर द्वारा 'समानांतर कहानी आंदोलन' में समेटने का प्रयास किया गया।

नई कहानी आंदोलन की विशेषताओं से प्रभावित रचनाकारों में मंजूर एहतेशाम भी एक महत्त्वपूर्ण कहानीकार हैं। उन्होंने सन् 1973 में अपनी पहली कहानी 'रमजान में मौत' लिखी। इसके पश्चात् उनके तीन कहानी संग्रह 'रमजान में मौत', 'तसबीह' एवं 'तमाशा तथा अन्य कहानियाँ' प्रकाशित हुए। सन् 2013 में संपूर्ण कहानियाँ नाम से उनकी सभी कहानियों का संकलन 'सम्पूर्ण कहानियाँ' नाम से प्रकाशित हुआ। इस संकलन में कुल 33 कहानियाँ संकलित हैं, जो विभिन्न विषयों पर लिखी गई हैं। इन कहानियों का विस्तारपूर्वक अनुशीलन हम निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर करेंगे-

5.1. सामाजिक परिवेश-

मंजूर एहतेशाम शहरी जीवन के लेखक हैं। उनकी कहानियों में शहरी मध्यवर्गीय समाज की चुनौतियों और विडंबनाओं का प्रभावपूर्ण अंकन देखा जा सकता है। उनकी कहानियों में अनुभव की प्रमाणिकता है। सामाजिक विद्रूपताओं का यथार्थपूर्ण अंकन पाठक को भीतर तक प्रभावित करता है। औद्योगीकरण व शहरीकरण के बढ़ते प्रभावस्वरूप लोगों की दैनिक आवश्यकताओं में वृद्धि हुई, जिसके कारण आर्थिक दबाव बढ़ने लगा। जिसका परिणाम पारिवारिक विखंडन के रूप में देखा गया। पारिवारिक विखंडन व अकेलेपन से कई मानसिक जटिलताएँ उत्पन्न हुई। लोक व संस्कृति से लोगों का जुड़ाव कम हुआ, पलायन बढ़ा, धार्मिक मान्यताओं में भी शिथिलता आई है। इन सभी समस्याओं को साहित्य में मुखरता से उठाया गया। मंजूर ने भी इसके प्रभाव को अपने कहानियों में उकेरा है। मंजूर की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक स्वरूप व उसकी जटिलताओं का विश्लेषण निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर किया गया है-

5.1.1. मानवीय मूल्यों का ह्रास-

मंजूर एक संवेदनशील रचनाकार हैं। आधुनिकता के साथ बदलते और क्षीण होते मानवीय मूल्य उनकी चिंता का मुख्य केंद्र रहा है। उनकी पहली कहानी 'रमजान में मौत' का मुख्य उद्देश्य मानवीय संबंधों में आई शिथिलता को उजागर करना ही रहा है।

इस कहानी में असद मियाँ मृत्यु शैय्या पर लेटे हुए हैं और उनकी पत्नी सुहेला ईद की तैयारियों में व्यस्त है। इस कहानी में लेखक ने बड़ी बारीकी से जीवन की भागदौड़ और चकाचौंध के बीच एक असहाय व्यक्ति के मौत को रेखांकित किया है। असद मियाँ के मरने से उनके आसपास मौजूद लोगों की जिंदगी में कोई ठहराव नहीं आता। घर में असद मियाँ की मैय्यत पड़ी है और बाहर ईद के चाँद दिखने की खुशी में पटाखे छोड़े जा रहे हैं। इसी प्रकार 'खेल' कहानी में शरीफ मियाँ का पुराना नौकर 'नन्हे' तालाब में डूब कर मर जाता है। उसकी लाश को दफनाने के लिए कोई अपनी गाड़ी नहीं देना चाहता। अंत में ट्रैक्टर से लाश ले जाया जाता है। कब्रिस्तान में चंद लोग ही मौजूद होते हैं। मंजूर लिखते हैं-"ट्रैक्टर उसके सामने आकर रुक गया। शरीफ कंधा देने से हमेशा कतराता था। लेकिन आज... आस-पास थे ही कितने लोग। उसके अपने रिश्तेदारों में से ही कौन था। और शायद ठीक भी था। नन्हे उसका नौकर ही था। क्या पता जीते जी भी किसी ने उसकी मौजूदगी कभी महसूस की थी या जब मौत ही उसकी मौजूदगी का एहसास बनी है?"[1] शरीफ नन्हे की मृत्यु से कुछ देर दुखी होता है, लेकिन जैसे ही उसे पता चलता है कि उसकी पत्नी गर्भवती है, वह सब कुछ भूलकर नये बच्चे की खुशी मनाने लगता है और उससे फिर यह सब जीवन-मरण एक खेल लगने लगता है।

मंजूर की कहानियों में हत्या, आत्महत्या, मृत्युबोध, जीवन-मरण का चक्र, निराशा, घुटन जैसी चीजें बार-बार रेखांकित की गई है। रमजान में मौत, खेल, एक फिल्मी पोस्टर के हवाले से, उदास चाँदनी, धुन आदि कहानियाँ इसी पृष्ठभूमि पर आधारित है। 'एक फ़िल्मी पोस्टर के हवाले से' कहानी एक युवक के आत्महत्या की घटना पर आधारित है। उसके मित्र उसे कर्नल कह कर बुलाते हैं। वह पिछले चार-पाँच वर्षो से आत्महत्या के केसों का अध्ययन करता रहता है और फिर एक दिन स्वयं आत्महत्या कर लेता है। लेखक ने इस कहानी में युवाओं में बढ़ते मानसिक दबाव व अवसादग्रस्तता को रेखांकित किया है। स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में अवसादग्रस्तता एक मुख्य समस्या बनकर उभरी है। साठोत्तरी पीढ़ी के रचनाकारों ने एकाकीपन, ऊब, निराशा, अवसाद जैसी नकारात्मक प्रवृत्तियों को व्यापक फलक पर चित्रित किया है। आधुनिकता बोध की संज्ञा से अभिहित साहित्य में खासतौर पर इन सभी विषमताओं और विद्रूपताओं को विशेष महत्त्व दिया गया है। एकाकीपन, पारिवारिक विखंडन और मानसिक विकृतियों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् तेजी से समाज को प्रभावित किया। यही कारण है कि लेखन

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 23-24

की शैली व विषयवस्तु में इन सभी बदलावों को शामिल किया जाने लगा। साहित्य में आदर्श और नैतिकता के स्थान पर यथार्थ और संघर्ष को सूक्ष्मता से अंकित किया जाने लगा और इन सभी सामाजिक बदलावों के बीच मानवीय मूल्यों में आई कमी भी लेखकों के लिए चिंता का एक महत्त्वपूर्ण विषय बनी। मंजूर एहतेशाम ने भी जीवन की इन विद्रूपताओं को अपनी कहानियों में विशेष स्थान दिया है। 'उदास चाँदनी' कहानी इसी प्रकार की विद्रूपता को उजागर करती है। इस कहानी में कथावाचक अपनी पत्नी को पसंद नहीं करता है। उसे अपनी पत्नी के कामों में फूहड़ता नजर आती है। वह खुद को उसके साथ मिसफिट महसूस करता है। उसक मन में पत्नी के लिए घृणा, द्वेष और नफरत इतनी बढ़ जाती है कि एक दिन वह उसकी गला दबाकर हत्या कर देता है। पत्नी की हत्या के बाद वह स्वीकार करता है कि वह कोई मनोरोगी नही है तथा उसे कभी-कभी पछतावा भी होता है। वह गिलास में शराब उड़ेल कर पीता है और अपनी कहानी एक युवक को बताता है। वह स्वीकारता है कि वह अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था और उसके साथ शर्मिंदगी महसूस होती थी। हत्या करने के बावजूद वह स्वयं को मनोरोगी नहीं मानता, जबकि हत्या करना सामान्य बात नहीं है। मंजूर ने मनुष्य के मानसिक जटिलताओं को बड़े ही यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। नई पीढ़ी के साहित्यकारों में मुक्तिबोध ने 'दिमागी गुहान्धकार का ओरांग उटांग' और 'ब्रह्मराक्षस' जैसी कविताओं के माध्यम से मनुष्य के भीतर छिपे राक्षसी प्रवृत्ति को उजागर किया है। उन्होंने बताया है कि मनुष्य सदैव अपने इन राक्षसी प्रवृत्तियों पर विजय पाने का प्रयास करता रहता है। लेकिन वह कभी-कभी न कभी प्रकट हो ही जाती है।

मंजूर ने अपनी कहानियों में विभिन्न दृष्टिकोण से मानवीय संबंधों में आई शिथिलता को चित्रित करने का प्रयास किया है। पति-पत्नी संबंधों के बदलते आयाम को चित्रित करते हुए, आधुनिक जीवन शैली और आर्थिक दबाव की भूमिका पर भी प्रश्न खड़े किए हैं। 'काला पुल' कहानी में पति-पत्नी संबंधों के बीच की दूरी और उससे उत्पन्न निराशा, कुंठा,ऊब और आत्महत्या के विचार को रेखांकित किया गया है। इसी प्रकार 'रिश्ता' कहानी में दो रिश्तेदारों के बीच उत्पन्न द्वंद्व और महत्वाकांक्षाओं के बीच आपसी संघर्ष को दिखाया गया है। इस कहानी में सलीम और सुलेमान के बीच अमीरी और गरीबी की खाई को दिखाया गया है। सुलेमान शहर के रसूखदारों में शामिल है। वह चाहता है कि शमीम अपना घर उसे बेंच दे। वह उसे मुँहमांगी कीमत देने को तैयार है। शमीम अपना घर नहीं बेचना चाहता। दोनों के बीच विवाद इतना बढ़ जाता है कि

शमीम द्वारा सुलेमान की हत्या कर दी जाती है। इन दोनों के आपसी बातचीत के माध्यम से लेखक ने आर्थिक विषमता को पारिवारिक संबंधों और संवेदनाओं के ऊपर प्रभावी होते हुए दिखाया है। औद्योगीकरण और नगरीकरण के प्रभावस्वरूप एक खास किस्म का मध्यवर्ग व्यापक पैमाने पर उभर कर सामने आया है। उसमें आपसी प्रतिद्वंद्विता का भाव सर्वाधिक देखा जा सकता है। इस प्रतिद्वंदिता के परिणामस्वरुप निम्न मध्यवर्ग के मध्यवर्ग में और मध्यवर्ग के उच्चवर्ग में बदल जाने की प्रबल इच्छा और महत्वाकांक्षा के कारण आपसी संबंधों में उदासीनता और निजी स्वार्थो में वृद्धि देखि जा सकती है। इस दौर में न सिर्फ संयुक्त परिवार का विभाजन हुआ, बल्कि एकल परिवार में भी विखंडन की प्रक्रिया जारी है। इस बिखराव ने मनुष्य में एकाकीपन को प्रश्रय दिया। इसके अलावा अन्य नकारात्मक बदलाव भी समाज में देखे जा सकते हैं। मंजूर ने इन सभी बदलावों को बड़ी बारीकी से अपनी कहानियों में चित्रित किया है। धुन, धरती पर, लड़ाई, जिक्रे खलील उर्फ दास्ताने फाख्ता, एक पारंपरिक समस्या प्रधान कहानी, राहत, रिश्ता, तसबीह आदि इसी पृष्ठभूमि पर लिखी गई कहानियाँ हैं। इन कहानियों का मूल संवेद्य बदलता हुआ भारतीय परिवेश, शहरी समाज, जीवन स्तर में बदलाव, वैचारिक दृष्टिकोण में परिवर्तन व मानसिक जटिलता आदि है।

5.1.2.शहरों के प्रति आकर्षण-

आधुनिकता के विकास के साथ-साथ औद्योगीकरण व नगरीकरण की अवधारणा का भी विकास हुआ। यह अवधारणा वैश्वीकरण की परिस्थितियों के उपरांत समावेशी विकास की एक अनिवार्य शर्त बन गई। नए-नए उद्योग धंधों की स्थापना हेतु पर्याप्त भौतिक व प्राकृतिक संसाधनों से युक्त स्थान चुने गए। इस उपलब्धता हेतु जहाँ कई नए नगर बसाए गए, वही पुराने शहरों का विस्तार भी किया गया। नगरीकरण पूँजीवादी व्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण उपादेयता रही है। औद्योगिक विकास हेतु पूँजी के साथ-साथ श्रम की भी आवश्यकता रही है। जिसके कारण भारी संख्या में मजदूर व कर्मचारियों का पलायन व विस्थापन देखा जा सकता है। जमीदारों की शोषणकारी व्यवस्था, अनियंत्रित लगान व कृषि हेतु अपर्याप्त संसाधनों के कारण भारी संख्या में किसान शहरों की ओर पलायन करने लगे। परिणामस्वरूप अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि के कारण शहरों में अनेक समस्याएँ देखी जा सकती है। शहरी जीवन की इन्हीं तमाम विसंगतियों की ओर नई पीढ़ी के रचनाकारों ने चिंता व्यक्त की है। ग्रामीण लोगों के मन में शहरों के प्रति जहाँ एक ओर आकर्षण है, वही पाश्चात्य संस्कृति के प्रति असमंजसता की स्थिति भी देखी जा

सकती है। प्रेमचंद की रचनाओं में इस विरोधाभाष को सहज रूप में चित्रित किया गया है। प्रेमचंद 'गोदान' में शहरी व ग्रामीण समाज की तुलना करते हुए उनकी सीमाओं को भी रेखांकित करते हैं। वे मालती के स्वभाव व शिक्षा-दीक्षा से प्रभावित होते हैं लेकिन उसकी स्वच्छन्दता को वे भारतीय परिवेश के अनुरूप उचित नहीं मानते। 'ईदगाह' कहानी में हामिद मेला देखने के लिए जैसे ही शहर में प्रवेश करता है, प्रेमचंद बड़ी-बड़ी ऊँची इमारतों, स्कूल, कालेज व अस्पताल इत्यादि का वर्णन करते हुए शहरों की विशेषताओं को रेखांकित करने लगते हैं।

भारत में पूँजीवाद का जैसे-जैसे विकास होता गया। वैसे-वैसे नगरों की संख्या व उनकी समस्याओं में भी बढ़ोत्तरी देखी जा सकती है। अनियोजित विकास के परिणामस्वरूप शहरी जीवन की जटिलताओं को नई पीढ़ी के रचनाकारों ने बड़ी गंभीरता के साथ उठाया है। छठे दशक तक आते-आते 'नई कहानी आंदोलन' के रचनाकारों में एक शाखा आंचलिक रचनाकारों के रूप में भी सामने आई। इस दशक की अधिकतर कहानियाँ शहरी परिवेश को लेकर ही लिखी गई है। जहाँ एक ओर 'नई कहानी' आंदोलन की प्रतिनिधि कहानी 'परिंदे' शहरी समाज की विद्रूपता, एकाकीपन,निराशा,कुंठा आदि भावनाओं को उजागर करती है, वहीं आंचलिक कहानियाँ ग्रामीण जीवन की सरसता और जीवंतता के बोध को भारतीय समाज के सौंदर्य के रूप में रेखांकित करती हैं। इस संबंध में मधुरेश लिखते हैं-“स्वीकृति और अस्वीकृति के बीच यह काल जो मुश्किल से चार-पाँच साल का है, वस्तुतः इस कथित नवोत्थान के प्रति एक व्यापक मोहभंग की शुरुआत का काल है। सड़कों, पुलों, स्कूलों व परिवहन सुविधाओं के विकास के कारण गाँवों में मोहभंग की प्रक्रिया अपेक्षाकृत बाद में शुरू होती है क्योंकि कम से कम ऊपरी तौर पर वहाँ बहुत कुछ ऐसा था जो इस विकास का भ्रम बनाए रख पाने को काफी था। शहरों में मोहभंग की यह प्रक्रिया और जल्दी शुरू हुई क्योंकि कोटा परमिट और शिक्षित बेरोजगारी से उत्पन्न प्रभाव वहाँ आसानी से दिखाई देने लगे थे।”[1]

साठोत्तरी पीढ़ी के रचनाकारों में निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, बदीउज्जमा आदि ने नगरीय समाज की विद्रूपता की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट किया है। मंजूर एहतेशाम भी इसी तरह के भावबोध को

[1] मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, पृष्ठ 61

अपनी कहानियों की विषयवस्तु बनाते रहे हैं। मंजूर ने 'लौटते हुए' कहानी में सिंह साहब के घर पर होने वाली पार्टी का वर्णन करते हुए उच्चवर्ग के शहरी लोगों के रहन-सहन का चित्रण किया है। इस कहानी में शहरों के अनियंत्रित एवं अप्राकृतिक विकास को इस प्रकार दिखाया गया है-"पुरानी बचपन वाली सड़क एकदम चौड़ी हो गई थी, वीराने में जगह-जगह मकान बन गए थे, पुराने मकानों को नए ढंग से बनाने की कोशिश की गई थी, तालाब उससे बहुत दूर चला गया था, चिड़ियाँ, फाख्ताएँ, मैनाएँ उड़ गई थी, दरख़्त कट गए थे, जमीन की बेशुमार झाड़ियाँ और घास.... कितनी बार उसने खुद जलते देखी थी। और धुआँ, दूर-दूर तक फैलता धुआँ।"[1] इस प्रकार मंजूर एहतेशाम ने प्राकृतिक संसाधनों हवा, पानी, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि के नष्ट हो जाने पर भी चिंता व्यक्त की है। साथ ही शहरों में प्रदूषण की खतरनाक स्थिति का भी वर्णन किया है। वर्तमान में यह सभी समस्याएँ भारतीय शहरों के लिए चिंताजनक स्थिति बनी हुई है। यही नहीं जलवायु परिवर्तन को लेकर पूरा विश्व आज चिंतित है।

मंजूर की रचनाओं में भोपाल गैस त्रासदी का वर्णन प्रायः देखने को मिलता है। 3 दिसंबर सन् 1984 में भोपाल शहर में 'यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड' की फैक्ट्री से 'मिथाइल आइसोसायनाइड' नामक जहरीली गैस का रिसाव होता है, जिसके परिणामस्वरूप कई हजार लोगों की जानें चली जाती हैं, और पूरा शहर उससे संबंधित बीमारियों और शारीरिक अपंगता का शिकार हो जाता है। मंजूर ने इस त्रासदी को 'जिक्रे खलील उर्फ़ दास्ताने फाख्ता' नामक कहानी में वर्णित किया है। औद्योगिक विकास और शहरीकरण के नाम पर मानव जीवन के अस्तित्व पर बने संकट पर यह कहानी गंभीरता से विचार करती है। इसके साथ ही इस कहानी के माध्यम से लेखक ने वर्तमान सरकारी व्यवस्था पर भी प्रश्न चिन्ह लगाया है। शहरी मजदूरों की समस्या पर भी इस कहानी में ध्यान आकृष्ट किया गया है। इसी प्रकार 'एक पारंपरिक समस्या प्रधान कहानी' में भी भोपाल गैस त्रासदी के बाद भोपाल शहर के लोगों के जीवन में आए बदलाव को इस प्रकार चित्रित किया गया है-"टॉलस्टॉय की बात को थोड़ा बदल दिया जाए तो हर शहर का सुख एक-सा होता है लेकिन दुख, बारीकी से, एक दूसरे से भिन्न और अनोखा। खासकर भोपाल, जहाँ गैस रिसने की घटना के बाद छोटी-छोटी चीजों की परिभाषा बदल गई है। पिछले वर्षों में यहाँ दवा और दारू दोनों की दुकानों में

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 111

आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है और पूरे शहर में जितने लेटर बॉक्स होंगे उससे तीन गुना अस्पताल खुल गए हैं।"[1] हालाँकि यह सिर्फ भोपाल शहर की समस्या नहीं है, बल्कि पूरा शहरी समाज इससे ग्रस्त है। मंजूर ने 'राहत' कहानी में भी भोपाल त्रासदी को केंद्र बनाया है। इस कहानी में भी त्रासदी के बाद उत्पन्न शारीरिक, आर्थिक, मानसिक व पर्यावरणीय समस्या पर विचार किया गया है। साथ ही सरकार व अफसरों द्वारा पीड़ितों की सहायता के नाम पर किए गए घोटाले को भी चित्रित किया गया है।

मध्यवर्गीय समाज को केंद्र में रखकर मंजूर ने 'रिश्ता' नामक कहानी लिखी है। इस कहानी में शहरी समाज के मध्य समाप्त होते आत्मीय रिश्तों व संवेदनाओं को उजागर किया है। शहरी समाज की निष्ठुरता को 'बाकी सारी गाड़ियाँ' नामक कहानी में भी देखा जा सकता है। इस कहानी में जीवन की भागदौड़ और संवेदनाशून्य व्यवस्था का चित्रण है। 'चंदा' नामक कहानी में शहरी विकास और सुख-सुविधाओं को दिखाया गया है। इसमें बड़े-बड़े स्कूल, विश्वविद्यालय, अस्पताल, सिनेमाघर, कारखाने, मनोरंजन के साधन आदि का वर्णन है। बीसवीं सदी के आखिरी के कुछ दशकों में वह भोपाल शहर के आधुनिक तौर-तरीके पर विकसित होने की स्थितियों व दशाओं पर मंजूर बराबर लिखते रहे। भोपाल रियासत के राजधानी बनने की घटना और उसके बाद हुए परिवर्तनों को वर्णन बार-बार रेखांकित करते हैं। इसके अतिरिक्त मंजूर एहतेशाम ने शहरी जीवन की कठिनाइयों, उनके संघर्षों व जीवनशैली को अपने संपूर्ण कथा लेखन में विस्तारपूर्वक चित्रित किया है। मंजूर स्वयं शहरी समाज में पले बढ़े हैं, इस कारण उसकी चुनौतियों को बखूबी चित्रित करने में सक्षम होते हैं।

5.1.3.पारिवारिक विघटन-

साठोत्तरी पीढ़ी के रचनाकारों ने पारिवारिक विखंडन को एक व्यापक समस्या के रूप में रेखांकित किया है। समाज में हो रहे आर्थिक, सांस्कृतिक व शैक्षणिक विकास के क्रम में पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया एक सामान्य प्रक्रिया बन चुकी है। चूँकि साठ के दशक में यह प्रक्रिया भारतीय समाज के संस्थागत ढांचे को तेजी से प्रभावित करने में समर्थ हुई, इस कारण इस परिवर्तन को साहित्यकारों द्वारा विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। इस दौर के रचनाकारों में मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, अमरकांत, भीष्म साहनी, धर्मवीर भारती, विनोद रस्तोगी, जगदीश चंद्र

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 160

माथुर आदि ने प्रमुखता से उठाया है। इसके साथ ही महिला रचनाकारों में उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, शिवानी, प्रभा शास्त्री, मेहरुन्निसा परवेज, कृष्णा सोवती, मृदुला गर्ग, ममता कालिया आदि रचनाकारों ने स्त्री मुक्ति की समस्या के साथ-साथ पारिवारिक विघटन के कारणों की भी पड़ताल की है।

पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया को तत्कालीन सामाजिक ढांचे में आये परिवर्तन की प्रतिक्रिया के रूप में देखा गया है। मुख्य रूप से औद्योगीकरण, नगरीकरण, नारी मुक्ति आंदोलन, कानून, व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा, निर्धनता, बेरोजगारी, सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन, भौतिकवादी या व्यक्तिवादी विचारधारा आदि पारिवारिक संरचना के परिवर्तन हेतु उत्तरदायी माने गए हैं। इस परिवर्तन के कई सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव भी देखे गए हैं। सकारात्मक प्रभाव में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, स्त्री शोषण में कमी, महिलाओं के शिक्षा व स्वावलंबन हेतु आई जागरूकता, जीवन स्तर में सुधार, रूढ़िवादी मान्यताओं का समापन, धार्मिक व आर्थिक संबंधों में शिथिलता, प्रेम विवाह आदि को देख सकते हैं। जबकि इसके नकारात्मक प्रभाव में अकेलापन, निराशा, कुंठा, आपसी सहयोग व भाईचारे में कमी आदि महत्त्वपूर्ण समस्या बनकर उभरी है। साहित्यकारों ने इसके सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही पक्षों को अपनी रचनाओं में प्रमुखता से दिखाने का प्रयास किया है। मंजूर की रचनाओं में भी इसके दोनों ही रूप देखे जा सकते हैं।

मंजूर ने अपने उपन्यासों में पारिवारिक विघटन को व्यापक फलक पर चित्रित किया है। जबकि उनकी कहानियों में उन तत्त्वों को अपेक्षाकृत कम विस्तार मिला है। 'छोटी-छोटी चीजें' कहानी में आर्थिक तंगी को पारिवारिक विघटन का एक बड़ा कारण दिखाया गया है। इस कहानी में पति रोजमर्रा की छोटी-छोटी आवश्यकताओं को पूरा करने में स्वयं को असमर्थ पाता है। उसके पारिवारिक आवश्यकताओं को पत्नी के मायके वाले, रिश्तेदार व पड़ोस के लोगों द्वारा पूरा किए जाने से वह बेहद चिंतित रहता है। उसके मन में निराशा उत्पन्न होने लगती है। इस कहानी का मूल विषयवस्तु आर्थिक तंगी से उत्पन्न पारिवारिक समस्या है। जिसका परिणाम अंत में विघटन के रूप में सामने आता है। मंजूर का पहला उपन्यास 'कुछ दिन और' भी इसी तरह की समस्या पर आधारित है। वही दूसरी ओर 'एक फिल्मी पोस्टर के हवाले से' कहानी में एक युवक द्वारा आत्महत्या करने के कारण पारिवारिक विघटन को दिखाया गया है। युवक आत्महत्या से संबंधित केसों का लंबे समय से अध्ययन करते हुए मानसिक रूप से विक्षिप्त

हो जाता है। जिसके कारण वह अपनी पत्नी व एक वर्ष की बेटी को छोड़ कर आत्महत्या कर लेता है। वही 'उदास चाँदनी' कहानी में युवक द्वारा अपनी पत्नी की गला दबाकर हत्या कर दी जाती है, जिसके कारण उसका परिवार विखंडित हो जाता है।

मंजूर ने पति-पत्नी के मध्य आपसी असामंजस्य को भी व्यापक रूप से चित्रित किया है। 'घेरा' कहानी में बेमेल विवाह और अवैध संबंधों को दिखाया गया है। इसी प्रकार 'उदास चाँदनी' कहानी में भी बेमेल विवाह और पति-पत्नी संबंधों में अलगाव और अमानवीय संबंधों को दिखाया गया है। नई कहानी आंदोलन से प्रभावित रचनाकारों ने जीवन के अति यथार्थ और उन जटिलताओं को कहानियों में चित्रित किया है, जो कि मध्यवर्गीय समाज की वास्तविकता है। इन्हीं विशेषताओं को केंद्र में रखकर मंजूर ने अपनी इन कहानियों को रचा है। मूल्यहीनता और अनैतिकता आधुनिक समाज की परिवर्तनशील दशाओं की एक मुख्य उपज रही है। जिससे पूरी पीढ़ी प्रभावित हुई है। यह मूल्यहीनता नई कहानी की पृष्ठभूमि बनी। जिसको मंजूर ने अपनी कहानियों में भी प्रदर्शित किया है। 'रमजान में मौत', 'उदास चाँदनी', 'घेरा', 'जश्न', 'एक फिल्मी पोस्टर के हवाले से', 'लड़ाई', 'धरती पर' आदि कहानियाँ इसी पृष्ठभूमि पर रची गई है। इस संबंध में कमलेश्वर लिखते हैं-"चूँकि हमारे समय का यथार्थ बहुत भीषण, गलित, रुग्ण और बीमार है, इसलिए उसका बोध एक संकट पैदा करता है। जितना ही यथार्थ को अपने आस-पास और अपने भीतर देखते और अनुभव करते जाइए उतना ही वह त्रासदायी दिखाई देता है। ......चारों तरफ एक निरर्थकता और विघटन व्याप्त है।"[1] मंजूर की कहानियों में यह निरर्थकता और विघटन स्पष्ट दिखाई देता है। सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तनों व जटिलताओं का प्रभाव पारिवारिक जीवन पर स्पष्ट देखा जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक विखंडन एक आम समस्या बन कर उभरी है।

5.1.4.मध्यवर्ग का विस्तार-

मध्यवर्ग की अवधारणा का चलन 19वीं शताब्दी से निरंतर देखने को मिलता है। वैसे तो यह इस वर्ग की ऐतिहासिकता की जड़े 15वीं व 16वीं शताब्दी तक में तलाश की जाती है। किंतु 'मध्यवर्ग' शब्द का प्रचलन औद्योगीकरण और पूँजीवाद के विकास के

[1] कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका, पृष्ठ 91

बाद के सामाजिक संगठन के परिणामस्वरूप अधिक प्रचलित हुआ। मध्यवर्ग की अवधारणा को मार्क्सवादी दर्शन से जोड़ा गया है। मार्क्स ने 19वीं शताब्दी के बदलते हुए आर्थिक ढांचे की समीक्षा करते हुए समाज को 'पूँजीपति' और 'सर्वहारा' दो मोटे रूपों में देखने का प्रयास किया है। पूँजीपति और सर्वहारा के बीच के वर्ग को ही मार्क्सवादी दर्शन में 'मध्यवर्ग' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। यह वर्ग आर्थिक और भौतिक रूप से समृद्ध होता है और मूल रूप से पूँजीपतियों को फायदा पहुँचाता है। डॉ०अमरनाथ ने मध्यवर्ग को परिभाषित करते हुए लिखा है-"मध्यवर्ग मार्क्सवादी दर्शन का शब्द है। अंग्रेजी में इसके लिए मिडिल क्लास शब्द प्रयुक्त होता है। उस वर्ग के लोगों को अभिव्यक्त करता है जो किसी पूँजीवादी समाज में सत्ताधारी वर्ग और उत्पादक वर्ग के बीच में होते हैं। तात्पर्य बुर्जुआ और सर्वहारा वर्ग के बीच के लोगों से है।"[1]

मध्यवर्ग को बौद्धिक दृष्टि से समृद्ध बताया गया है। यह वर्ग वैचारिक रूप से प्रखर होने के कारण समाज को दिशा-निर्देशित करने में समर्थ होता है। लेकिन इसका चरित्र अवसरवादी होता है। डॉ० अमरनाथ ने मध्यवर्ग के चार प्रकारों का उल्लेख किया है। इन सभी की व्यावसायिकता के आधार पर अपनी-अपनी अलग-अलग विशेषताएँ भी बताई है। इसमें पहला वर्ग छोटे व्यापारियों का है, जिसे 'पेट्टी बुर्जुआ' कहते हैं। दूसरा वर्ग वेतन के रूप में कार्य करने वाले व्यापारियों का है और तीसरा वर्ग किसानों का है, जो सर्वहारा की भांति परिश्रम करते हैं, लेकिन वैचारिक रूप से बुर्जुआ वर्ग से मेल रखते हैं। चौथा व अंतिम वर्ग बाबू वर्गीय श्रमिकों का बताया गया है, जो कि श्रमिक वर्ग के पर्यवेक्षण का कार्य करते हैं। आमतौर पर मध्यवर्ग को दो मोटे रूप में बाँटकर देखा जाता है, जिसे उच्च मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग कहते हैं।

नई कहानी आंदोलन की मुख्य विशेषताओं में मध्यवर्गीय समाज के चित्रण को भी रेखांकित किया जाता है। भारत में 19वीं शताब्दी में औद्योगीकरण का तेजी से विकास हुआ। जिसके परिणामस्वरुप मध्यवर्ग का विस्तार हुआ। हिन्दी कथा साहित्य में इस मध्यवर्ग को विभिन्न रूपों में प्रमुखता के साथ प्रस्तुत किया जाने लगा। प्रेमचंद से लेकर बाद के रचनाकारों ने इसे उत्तरोत्तर गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया है। विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के रचनाकारों ने मध्यवर्गीय समाज की चिंताओं को अधिक प्रमुखता दी है। नई कहानी की भूमिका व विषयवस्तु पर विचार करते हुए, मध्यवर्ग की

[1] अमरनाथ, हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ 264

उपस्थिति के संबंध में कमलेश्वर लिखते हैं-“समकालीन कहानी का मुख्य पात्र निम्नमध्यवर्गीय मनुष्य ही है, जो अपने परिवेश से संपृक्त और सामाजिक जड़ों द्वारा अपने अस्तित्व की खुराक पा रहा है। वह प्रवृत्तिमूलक या अहंमूलक व्यक्ति नहीं- जीवन के घात प्रतिघातों को सहता, हारता-हराता, क्षुद्रता और मनुष्यता को सहेजता-नकारता, अपने निर्णय शक्ति को बचाता लुटाता इसी दुनिया और इसी जीवन के अस्तित्व में विश्वास करता, सुख-दुख उठाता, जाने-अनजाने नये क्षितिजों को उद्घाटित करता और नए संबंधों-संतुलनों को जन्म देता जिंदगी को वहन कर रहा है।”[1]

मंजूर एहतेशाम ने भी अपनी कहानियों में इन तमाम विसंगतियों व विशेषताओं के साथ संघर्षरत मध्यवर्गीय समाज को चित्रित किया है। उनकी लगभग सभी कहानियाँ मध्यवर्गीय समाज को केंद्र में रखकर लिखी गई हैं। उनकी कहानियों के पात्र वर्तमान व्यवस्था से संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। ‘छोटी-छोटी चीजें’ नामक कहानी में मध्यवर्गीय परिवार की त्रासदी को दिखाया गया है। मध्यवर्गीय समाज के समक्ष आर्थिक चुनौती एक बड़ी समस्या रही है। वह अपने रहन-सहन में उच्च वर्गीय समाज की सभी विशेषताओं को शामिल करना चाहता है। साथ ही निम्न वर्ग से एक खासा दूरी भी बनाए रखने की कोशिश करता है। ‘तलाफी’ कहानी में कहानी का नायक जो कि एक लेखक है, वह आर्थिक तंगी से जूझता है लेकिन दुकान खोलना अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं मानता। वह कहता है-“पेट भरने या जिंदगी गुजारने के लिए अगर कोई मुझे मशवरा दे कि मुहल्ले के नुक्कड़ पर परचून की दुकान लगाकर बैठ जाओ, तुम्हारी और तुम्हारी आल-औलाद की गुजर-बसर हो जाएगी तो मैं इसे मशवरे को नहीं मानूंगा। मैं खुद कहता हूँ कि शादी करके मैंने एक अच्छी-भली लड़की की जिंदगी खराब की और रही सही कसर बाप बन कर पूरी कर दी! मुझे मालूम है, उसमें मेरा स्वार्थ था! अगर बीवी और बच्चा न होते तो मैं कभी का आत्महत्या कर चुका होता।”[2] कहानी में लेखक को ऐशो-आराम पसंद दिखाया गया है। वह शराब और सिगरेट का शौकीन है। उसे लेखन में रुचि है लेकिन मध्यवर्गीय अहंकार और झूठे दिखावे उसके चरित्र में शामिल है। वह अपने स्वार्थी चरित्र को स्वयं स्वीकार भी करता है। मध्यवर्गीय समाज की विसंगतियों को इस कहानी में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

---

[1] कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका, पृष्ठ 20

[2] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 203

मंजूर एहतेशाम शहरों में तेजी से विकसित मध्यवर्गीय समाज की तमाम विसंगतियों के साथ-साथ उनके नैतिक व धार्मिक मूल्यों में आए परिवर्तन को भी चित्रित करते हैं। 'बशीर खां मालिक मॉडर्न केनिंग आर्ट' कहानी में क्षीण होते धार्मिक विश्वास को दिखाया गया है। इस कहानी में चेतना संपन्न मध्यवर्गीय समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए बशीर खां धार्मिक मान्यताओं को मानवीय मूल्यों के आधार पर पुनर्विचार करते हुए बकरीद पर कुर्बानी करने की अनिवार्यता को नकारते हैं। इसी प्रकार 'रिहाई' कहानी में भी धर्मनिरपेक्षता को महत्त्व दिया गया है। 'तसबीह' कहानी में एक मध्यवर्गीय परिवार में आर्थिक वर्चस्व के बीच धार्मिक अस्मिता के संकटग्रस्त स्थितियों को दिखाया गया है। इसी प्रकार मंजूर की अन्य कहानियों में भी मध्यवर्गीय जीवन मूल्य, उनके संघर्ष और द्वंद्वात्मक स्थितियों को देखा जा सकता है। मंजूर स्वयं मध्यवर्गीय समाज से संबंध रखते हैं। इस कारण उनकी कहानीयों में मध्यवर्ग के संकट को अधिक सहानुभूतिपूर्वक तथा यथार्थपूर्ण चित्रण देखा जा सकता है। उनके संपूर्ण कथा जगत का केंद्र ही मध्यवर्गीय भारतीय समाज रहा है। साठोत्तरी पीढ़ी के रचनाकारों ने भारत में तेजी से उभरते मध्यवर्ग को कथा के केंद्र में लाने का प्रयास किया है। यह दशक हिन्दी साहित्य के लिए कई नए बदलावों के साथ-साथ विभिन्न धाराओं के विकास हेतु जाना जाता है। इसी समय स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श के साथ-साथ मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं पर सर्वाधिक लिखा गया है। हिन्दी कथा साहित्य में एक लंबी सूची मध्यवर्गीय चिंतन को विषयवस्तु बनाने वाले रचनाकारों की रही है। इन रचनाकारों में मंजूर एहतेशाम भी एक प्रमुख रचनाकार के रूप में जाने जाते हैं।

5.2.आर्थिक स्वरूप-

औद्योगीकरण के विकास के बाद आर्थिक स्थिति का पारिवारिक व सामाजिक संबंधों पर गहरा प्रभाव देखा गया। नई पूँजीवादी व्यवस्था ने भारतीय समाज के हर वर्ग को प्रभावित किया। औद्योगीकरण ने नए आर्थिक विकल्पों के साथ-साथ बाजार और पूँजी के महत्त्व को अनिवार्य बना दिया है। भारतीय समाज एक कृषि प्रधान समाज रहा है। यहाँ बाजारों में वस्तु विनिमय प्रणाली का प्रचलन अधिक रहा है। लेकिन औद्योगीकरण के प्रभावस्वरूप बाजारों का स्वरूप तो बदला ही, साथ ही दैनिक जीवन की आवश्यकताओं में भी परिवर्तन आया। पूँजीवाद के विकास ने उच्च, मध्यम व निम्न तीनों वर्गों को प्रभावित किया। रोजगार के नए-नए विकल्प खुले। लोग शहरों की ओर

तेजी से पलायन करने लगे। मध्यवर्ग का विस्तार होने से बाजारों में प्रतिस्पर्धा भी बढ़ने लगी। लोगों का रहन-सहन बदला, साथ ही क्रय-शक्ति भी बढ़ी। भारत में अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक योजनाओं के प्रति उदासीन सरकारी नीतियों ने रोजगार के संकट में और अधिक वृद्धि की। जिसके कारण मध्यम व निम्न वर्ग में सर्वाधिक प्रतिस्पर्धा देखी जा सकती है। यह दोनों वर्ग इस नई पूँजीवादी व्यवस्था से सर्वाधिक प्रभावित हुआ है। मंजूर एहतेशाम ने निम्न तथा मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त आर्थिक चुनौतियों को अपनी कहानियों में विस्तार से दिखाया है। उनकी कहानियों में चित्रित आर्थिक स्थितियों को हम निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर देख सकते हैं-

5.2.1.औद्योगीकरण का विस्तार-

औद्योगीकरण शब्द 'उद्योग' से बना है। जिसका अंग्रेजी समानार्थी शब्द 'इंडस्ट्री' है। जिसका तात्पर्य कच्चे माल से विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करना है। इसका दूसरा अर्थ मशीनों के उपयोग से बड़े पैमाने पर वस्तुओं के संशोधन व निर्माण प्रक्रिया भी माना गया है। आधुनिक पद्धति का उपयोग कर विभिन्न मशीनों के अविष्कार से कच्चे माल को उपयोगी वस्तु में बदलना इसका मूल उद्देश्य है। इस प्रक्रिया में कम लागत, श्रम व समय की आवश्यकता होती है। औद्योगीकरण एक प्रक्रिया है, जिसे आधुनिकता का परिचायक भी बताया गया है। किसी भी देश के आर्थिक विकास हेतु औद्योगीकरण का विस्तार आधुनिक समय की अनिवार्यता बन गई है। जिन देशों व राज्यों में औद्योगीकरण का अधिक विस्तार हुआ, वहाँ परिवहन, रोजगार, लोगों की क्रयशक्ति, बाजार तथा अन्य सुख-सुविधाओं का तेजी से विकास हुआ।

भारत में औद्योगीकरण की शुरुआत व्यवस्थित रूप से ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन से मानी जाती है। हालांकि इससे पूर्व भी भारत में व्यापार व उद्योग-धंधों की समृद्ध परंपरा देखने को मिलती है। भारत में लघु एवं कुटीर उद्योग का विकास काफी पहले से रहा है। सूती वस्त्र, इत्र, मसाले आदि के व्यापार के लिए भारत एक बड़ा बाजार रहा है। अंग्रेजों से पूर्व यहाँ पुर्तगाली, फ्रांसीसी, डच आदि ने सूरत, मसूलीपट्टनम, पांडिचेरी, दमन, दीव व केरल की मालाबार तट पर व्यापार हेतु अपनी फैक्ट्रियाँ स्थापित कर चुके थे। किंतु ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के बाद जिस प्रकार मुगल साम्राज्य का उत्तरोत्तर पतन होता गया, उसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों द्वारा यहाँ की

राजनीतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने के कारण लघु एवं कुटीर उद्योगों का तेजी से विनाश होता गया।

अंग्रेजों द्वारा उपनिवेश बनाए जाने के बाद भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया और तेज हुई। जिसके कारण पूँजीवाद का विकास तेजी से हुआ। लघु एवं कुटीर उद्योगों के विनाश तथा पूँजीवाद के विकास के कारण भारत में मध्यवर्ग का तेजी से विस्तार हुआ। इन दोनों प्रक्रियाओं ने भारतीय समाज को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। पारिवारिक विखंडन, शहरों की ओर पलायन, रोजगार का संकट, दैनिक आवश्यकताओं में परिवर्तन आदि स्थितियों ने लोगों में कुंठा, निराशा, बेचैनी तथा अन्य अवसादग्रस्त स्थितियों को जन्म दिया। इन नई आर्थिक चुनौतियों और उससे जूझते भारतीय समाज को हिन्दी रचनाकारों ने अत्यंत मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। मंजूर एहतेशाम ने भी एक सजग रचनाकार की भांति औद्योगीकरण की प्रक्रिया तथा उसके दुष्परिणामों का बारीकी से चित्रण किया है। 'चंदा' कहानी में पुराने व परंपरागत तकनीक के स्थान पर नई तकनीक के प्रयोग किए जाने का वर्णन है। इस बदलाव को कहानी में इस प्रकार चित्रित किया गया है-"तेजी से बिजली या डीजल से चलने वाली आरा मशीनें लगना शुरू हुई थी अब्बा का लकड़ी का पीठा तब तक आराकशों की अड्डियों के सहारे चलता रहा लेकिन अंततः मार्केट में हाथ और मशीन के बीच मुकाबला होना ही था। जिसे मैदान में रहना था उसके लिए मशीन लगवाना बुनियादी शर्त ठहरता ही ठहरता था।"[1] इस प्रकार औद्योगीकरण के प्रभाव को लेखक ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है। इस प्रभाव से न सिर्फ पुरानी मशीने बेकार हुई, बल्कि पुराने कारीगर भी बेरोजगार हुए। नई मशीनों के साथ काम करने हेतु नए मजदूर रखे जाने लगे। साथ ही मशीनीकरण की प्रक्रिया से व्यापक रूप से बेकारी की समस्या भी उत्पन्न हुई। जिसे इस कहानी में इस प्रकार देखा जा सकता है- "मशीन आने के साथ, अभी तक अड्डियों पर काम करने वाले आराकश, अब्बा के और अन्य कई पीठों के, बेकार हो गए थे और मशीन के मिजाज और काम की जरूरत के अनुसार नए लोगों को नौकर रखा गया था।"[2] इसी प्रकार मंजूर की अन्य कहानियों में भी औद्योगीकरण के प्रभाव को देखा जा सकता है।

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 272

[2] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 272

औद्योगीकरण एक ऐसी प्रक्रिया रही है, जिसने भारत में पारंपरिक व्यवसाय को काफी क्षति पहुँचाई है। आमतौर पर औद्योगीकरण को विकास का द्योतक माना जाता है। लेकिन इसके कई नकारात्मक परिणाम भी सामने आए हैं। खासतौर पर भारत जैसे देश में जहाँ लघु एवं कुटीर उद्योगों की एक समृद्ध परंपरा रही है, वहाँ मशीनीकरण के आगमन से हस्तकला और पारंपरिक उद्योगों का पतन हुआ है। मंजूर ने 'जिक्रे खलील उर्फ दास्ताने फाख्ता', 'बाकी सारी गाड़ियाँ', 'तमाशा', 'चंदा', 'लौटते हुए', 'अंधेरे में' आदि कहानियों में औद्योगीकरण के विस्तार और उसके प्रभावों पर विचार किया है। इन कहानियों में दैनिक जीवन से लेकर आर्थिक व सामाजिक सभी क्षेत्रों में आए बदलावों को रेखांकित किया गया है।

5.2.2.निजीकरण का विस्तार-

निजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके तहत आर्थिक क्षेत्रों से सार्वजनिक हस्तक्षेप को कम करके, उसे निजी स्वामित्व के हाथों सौंपा जाता है। किसी भी देश की अर्थव्यवस्था दो रूपों में संचालित होती है- पहला सार्वजनिक क्षेत्र, दूसरा निजी क्षेत्र द्वारा। सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं का संचालन सरकार द्वारा किया जाता है, जबकि निजी क्षेत्र में पूँजीपति का एकाधिकार होता है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक बढ़ावा दिया गया। नेहरू ने समाजवादी सिद्धांत से प्रभावित होकर जनता के हितों को सुरक्षित रखने हेतु सार्वजनिक संस्थाओं को महत्त्वपूर्ण माना। उनका मानना था कि उद्योगपति जनता के हित के लिए कभी भी अपनी पूँजी का समान वितरण नहीं कर सकते। अतः उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र, जिसमें राज्य और उद्योगपति दोनों के बीच का मार्ग चुना। किंतु उत्तरोत्तर काल की अवसरवादी सरकारों की अव्यवस्था और लापरवाही के कारण सार्वजनिक क्षेत्रों को निजी हाथों में दिये जाने की कवायद तेज होती गयी। सार्वजनिक क्षेत्रों के निजीकरण के संदर्भ में एस.एल. दोषी लिखते हैं-"ई० 1991 में आर्थिक संकट के दबाव में आकर देश ने ढांचागत परिवर्तन की नीति को अपनाया और इस कारण देश में वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण आये।...... वैश्वीकरण, उदारीकरण और इन दोनों के कारण निजीकरण इस देश में आया है वह एक नई आर्थिक क्रांति का परिचायक है।"[1] एस.एल. दोषी ने निजीकरण को आर्थिक उदारीकरण तथा भूमंडलीकरण का परिणाम माना है। साथ ही उन्होंने इसे उत्तर

[1] एस. एल. दोषी, आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धांत, पृष्ठ 200

आधुनिकतावाद से भी जोड़ कर देखा है। जबकि निजीकरण के मूल में सरकारी तंत्र की उदासीनता ही मुख्य वजह रही है। सार्वजनिक क्षेत्रों को अलाभकारी, सरकारी खजाने पर बोझ, प्रबंधन की अकुशलता आदि कारणों को गिनाते हुए, उसे निजी क्षेत्रों के हवाले कर दिया जाता है। जबकि पूँजीपति उन्हीं क्षेत्रों से मोटा मुनाफा कमाकर उत्तरोत्तर प्रगति कर रहे हैं। जैसे हाल ही में भारत संचार निगम लिमिटेड, रेलवे, बैंकिंग, पेट्रोलियम, इस्पात, बीमा, रक्षा उपकरण आदि को निजी हाथों में सौंपने हेतु सरकार द्वारा तेजी से सक्रियता दिखाई जा रही है। निजीकरण के कारण सर्वाधिक हानि सामान्य जनता को उठानी पड़ रही है। उनके अधिकार क्षेत्र सीमित किए जा रहे हैं। सरकारी निरंकुशता के कारण मध्यवर्ग और निम्नवर्ग आर्थिक संकट से जूझ रहा है। पूँजीवादी व्यवस्था में लाभ के असमान वितरण के के कारण सर्वहारा वर्ग शोषण का शिकार हो रहा है।

सन् 1990 के बाद भूमंडलीकरण के नाम पर निजी क्षेत्रों को तेजी से बढ़ावा दिया गया। जिसका दुष्परिणाम आर्थिक संकट, बेरोजगारी, महँगाई, भ्रष्टाचार आदि के रूप में सामने आया है। निम्न व मध्यवर्ग के बीच ये सारे संकट एक गंभीर स्थिति पैदा कर रहे हैं। हिन्दी के अन्य रचनाकारों की भांति मंजूर एहतेशाम ने भी भूमंडलीकरण और उससे उत्पन्न अन्य समस्याओं पर भी विचार प्रस्तुत किया है। मंजूर एहतेशाम ने भोपाल व मुंबई शहर में हुए आर्थिक गतिविधियों के परिवर्तन से वहाँ की सामाजिक स्थिति व आम जनजीवन पर उसके नकारात्मक प्रभावों को गहराई के साथ प्रस्तुत किया है। उनकी कहानियों में निजीकरण के विस्तार तथा उसके प्रभावों का चित्रण देखने को मिलता है। 'चंदा' कहानी में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप निजी कारखानों व कंपनियों के विस्तार को दिखाया गया है। इसी तरह 'तमाशा' कहानी में भी कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की स्थिति को बड़ी मार्मिकता से चित्रित किया गया है।

निजीकरण के परिणामस्वरूप श्रम और मानदेय के बीच एक बड़ा अंतर सामने आया है। समय से अधिक काम करने के बावजूद आर्थिक तंगी मजदूर व कामगार वर्ग की समस्या बनकर उभरी है। मजदूरों की स्थिति को इस कहानी के एक अंश में इस प्रकार दिखाया गया है-"रह-रह कर दुर्घटनाएँ होती थी और अत्तू मियाँ कभी मामूली, कभी गंभीर रूप से जख्मी हो जाते थे। देखते-देखते उनका चेहरा इस लड़ाई की निशानियाँ से पट गया था। उन्होंने एक आँख गवा दी थी और दाहिने हाथ का अंगूठा खो दिया था। शादी के दस साल के अंदर ही वह अपाहिज, तीन बेटियों के बाप, जमीला को फिर से

बीड़ी का सूपड़ा थामने और छोटे बच्चों को कुरान पढ़ाकर गुजारा करने पर मजबूर छोड़कर, दुनिया से रुखसत हो गए थे।"[1] इस प्रकार आरा मशीन में काम करने वाले मजदूरों की व्यथा को इस कहानी में देखी जा सकती है। इसी प्रकार फर्नीचर की दुकान में काम करने वाले मजदूरों को 'बशीर खां मालिक मॉडर्न केनिंग आर्ट' कहानी में दिखाया गया है। बशीर खां को अपने यहाँ काम करने वाले मजदूर लड़कों के साथ सहानुभूति पूर्वक व्यवहार करते है। मंजूर की कहानियों में सरकारी जमीनों का अधिग्रहण कर प्राइवेट स्कूल. कॉलेज. अस्पताल. होटल इत्यादि खोले जाने का वर्णन भी मिलता है।

उनकी सभी कहानियों में आर्थिक संघर्ष को देखा जा सकता है। मध्य वर्ग के साथ-साथ निम्न वर्ग को भी बदलाव के साथ आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। तेजी से बढ़ते शहर, फैक्ट्रियाँ, मशीनें तथा अन्य संसाधनों के कारण लोगों के दैनिक जीवन में आए बदलाव को देखा जा सकता है। निजीकरण के कारण महँगी शिक्षा, चिकित्सा व अन्य सुविधाओं से वंचित निम्न वर्गीय समाज को भी उनकी कहानियों में देखा जा सकता है। इसके अलावा मध्यवर्ग में बड़े-बड़े होटलों, सिनेमाघरों के प्रति आकर्षण भी मंजूर ने अपनी कहानियों में दिखाया है। सड़क, रेल, यातायात के साधन आदि में आई तेजी को मंजूर ने औद्योगिक विकास का परिणाम माना है। साथ ही इसके दुष्परिणामों के प्रति चिंता भी व्यक्त की है। भोपाल में हुए गैस त्रासदी का जिक्र इनकी रचनाओं में बार-बार देखा जा सकता है।

5.2.3.मध्यवर्ग के समक्ष आर्थिक चुनौतियाँ-

पूँजीवाद ने समाज के प्रत्येक वर्ग में आर्थिक महत्त्व को बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इससे पूर्व भारतीय समाज अर्थ पर इतना केंद्रित कभी नहीं रहा। यहाँ वस्तु-विनिमय और आपसी सहयोग के माध्यम से लोग अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा किया करते थे। औद्योगीकरण के विकास के बाद मुद्रा का चलन आम लोगों में बढ़ा। किंतु पूँजी के असमान वितरण के कारण एक बड़ा वर्ग इससे वंचित रहा। यह वर्ग मध्यम व निम्न वर्ग के रूप में समाज में अपनी भूमिका निभाता रहा और अर्थ संकट से निपटने के लिए निरंतर संघर्ष करता रहा। 80 के दशक में जब भूमंडलीकरण का प्रभाव

[1] मंज़ूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 252

भारत में दिखाई देने लगा, उसके पश्चात् आर्थिक संकट और जटिल रूप में उपस्थित हुआ। 90 के दशक तक आते-आते भारत आर्थिक मंदी से जूझने लगा। भूमंडलीकरण की नीतियों, उसके दुष्परिणामों पर विचार करते हुए कमलनयन काबरा लिखते हैं-"क्या लाभ मिला है भारत के करोड़ों गरीबों को इस तरह भूमंडलीकरण का हिस्सा बनने से ? रोजगार में कमी आई है। निर्यात बढ़े हैं परंतु आयात उनसे भी ज्यादा तेजी से बढ़े हैं। हमारे लाखों कल-कारखाने बंद हो गए हैं। वहाँ से मजदूरों की छंटनी कर दी गई है अथवा उन्हें स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति (वी.आर.एस) के तहत अनौपचारिक क्षेत्र में अथवा बेरोजगारी में धकेल दिया गया है। अकेले सार्वजनिक क्षेत्र में 45 लाख नौकरियाँ घटाई गई है।"[1]

भारत में गरीबी का स्तर पहले से ही काफी निम्न रहा है। भूमंडलीकरण के इन नीतियों के कारण संगठित व असंगठित क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में आई कमी व निजीकरण के विस्तार से शिक्षा, स्वास्थ्य व अन्य बुनियादी चीजों की कीमत में बढ़ोत्तरी के कारण निम्न व मध्यम वर्ग बेहद प्रभावित हुआ है। भारत में गरीबी उन्मूलन को लेकर व्यापक विचार-विमर्श, सम्मेलन,गोष्ठियों व योजनाओं का शुभारंभ किया गया है, किंतु वास्तविकता यह है कि आज भी भारत का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहा है। कृषि को भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ मानी गई है, किंतु पिछले कुछ दशकों से इस क्षेत्र में भी भारी गिरावट दर्ज की गई है। लघु एवं कुटीर उद्योगों के विनाश से छोटे कस्बों व गाँवों से तेजी से पलायन बढ़ा है। किंतु शहरों में भी रोजगार की समस्या पूरी तरह समाप्त न हो सकी।

90 के दशक में वैश्विक आर्थिक मंदी के कारण भारत में भी आर्थिक गतिविधियों में शिथिलता देखी गई और वर्तमान में तो भारत की जीडीपी पिछले कई दशकों के निम्नतम स्तर पर पहुँच गई है। रुपया लगातार डॉलर के मुकाबले कम होता जा रहा है। लोगों की क्रय शक्ति कम हुई है। पिछले कई दशकों से भारत लगातार आर्थिक चुनौतियों से जूझ रहा है। इन आर्थिक चुनौतियों का सीधा-सीधा प्रभाव समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर देखा जा सकता है। इस प्रभाव को लेकर बौद्धिक वर्ग में भी खासी चिंता बनी हुई है। अन्य लेखकों की भांति मंजूर एहतेशाम ने भी इन आर्थिक चुनौतियों को अपनी चिंता का विषय बनाया है। मंजूर की कई कहानियाँ इस आर्थिक संकट को व्यक्त करती है। 'छोटी-

---

[1] कमलनयन काबरा, भूमंडलीकरण विचार, नीतियाँ और विकल्प, पृष्ठ 134

छोटी चीजें' कहानी में मध्यवर्ग के समक्ष उत्पन्न आर्थिक संकट को इस प्रकार दिखाया गया है-"मुन्ना पैर चलाना सीख रहा था। मैं और बीवी उसके लिए एक- एक बेबी वाकर खरीदना चाहते थे। हर बार कोशिश करने के बाद भी पैसे किसी दूसरे काम में उठ जाते थे। शायद सारी तनख्वाह राशन में ही खत्म होने लगी थी।"[1] इस कहानी में आर्थिक संकट के साथ साथ बढती हुई महँगाई को भी बखूबी दिखाया गया है। कहानी में पति और पत्नी दोनों ही काम करते हैं बावजूद इसके घर की आर्थिक आवश्यकताओं को बमुश्किल पूरा कर पाते हैं। बढ़ती हुई महँगाई के कारण उत्पन्न आर्थिक संकट को भी इस कहानी में देखा जा सकता है। इसी प्रकार परंपरागत पेशों के विनाश को 'तमाशा', 'एक पारंपरिक समस्या-प्रधान कहानी', 'चंदा' आदि कहानियों में देखा जा सकता है।

भारतीय समाज का एक बड़ा हिस्सा परंपरागत पेशों से जुड़ा रहा है। औद्योगीकरण के पश्चात् इस वर्ग के समक्ष बेकारी की समस्या व्यापक पैमाने पर उभर कर आई है। भारत में बेरोजगारी एक बड़ी समस्या रही है। तमाम परिवर्तनों के बावजूद आर्थिक तंगी और गरीबी में किसी भी तरह का सुधार नहीं आया है। भूमंडलीकरण के बाद वैश्विक आर्थिक मंदी ने भारत को गहरे तक प्रभावित किया है। वैसे तो बेरोजगारी की समस्या का कभी भी पूर्णतया समाधान न हो सका, किंतु निजीकरण और आर्थिक उदारीकरण के कारण रोजगार की अनिश्चितता और शोषणकारी व्यवस्था से सर्वहारा वर्ग खासा प्रभावित हुआ है। बेरोजगारी और उससे उत्पन्न आर्थिक चुनौतियों को 'लड़ाई' कहानी में इस प्रकार चित्रित किया गया है-"दरअसल मैं बेरोजगार था, और रोजगार छुटे भी यह दूसरा ही दिन था। वैसे तो यह कोई विशेषकर नई स्थिति नहीं थी। क्योंकि न चाहते हुए भी मैं अभी तक कितनी ही नौकरियाँ कर और छोड़ चुका था। काम करने वाले के अपने अंदाज और फरमाइशें होती हैं, मेरा अपना सोचने और काम करने का ढंग है। जब-जब इन दोनों में टकराव पैदा हुआ है, मैंने खुद को बेरोजगार पाया है।"[2] निजी कंपनियों में नौकरी की कोई निश्चितता नहीं होती है। मालिक अपनी आवश्यकता के अनुसार कामगारों को नियुक्त व निष्कासित करता है। जिसके कारण असुरक्षा की स्थिति सदैव बनी रहती है। इसके अलावा पारिश्रमिक भी न्यूनतम दिया जाता है। वर्तमान में निजीकरण की प्रक्रिया को सरकारों द्वारा तेजी से बढ़ावा दिया जा रहा है। जिसका दुष्परिणाम आम जनता को भुगतना पड़ेगा।

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 32

[2] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 123-124

पूँजीवाद के विकास के बाद छोटे व मझोले व्यापारियों के समक्ष बाजार में टिके रहने का संकट उत्पन्न हुआ है। अंधाधुंध बढ़ती आर्थिक प्रतिस्पर्धा और पूँजीपतियों की अति महत्वाकांक्षा के कारण प्रत्येक क्षेत्र में व्यापार व उद्योग धंधों से जुड़े कम पूँजी के लोगों के समक्ष चुनौतियाँ खड़ी हो गई है। इन चुनौतियों को मंजूर एहतेशाम ने 'तसबीह' कहानी में इस प्रकार वर्णित किया है-"फिर इन बढ़ी कीमतों और ग्राहकों के बाद भी, खुद उसे अपना धंधा पनपने के बजाय दिन-ब-दिन ठिठुरता क्यों लगता है? क्या यह सिर्फ उसका ख्याल ही है कि बीच दर्जे के व्यापारी धीरे-धीरे अपनी लागत ही खाने पर मजबूर होते जा रहे हैं? बड़े कारोबार वालों का धंधा तो और भी बढ़ता, उनके ऊँचे खर्चों के बावजूद, अलग ही नजर आता है जबकि खुद उसे दिन-ब-दिन गुजारा होना भी मुश्किल लगता है।"[1] इसी प्रकार मध्यवर्ग के समक्ष आर्थिक चुनौतियों को भी इस कहानी में देखा जा सकता है। यह समस्या अन्य क्षेत्रों में भी देखी जा सकती है। मशीनीकरण के युग में परंपरागत मशीनों व औजारों की अनुपयोगिता को 'चंदा' कहानी में दिखाया गया है। इस कहानी में भी बाज़ार में बने रहने के लिए आधुनिक मशीनों की आवश्यकता के महत्त्व को देखा जा सकता है। यह मशीनें काफी महँगी होती हैं। साथ ही इसे चलाने के लिए नए कारीगर की आवश्यकता होती है। जिस कारण भी मध्यवर्गीय कामगारों व व्यापारियों के समक्ष आर्थिक चुनौती खड़ी हो जाती है। इस प्रकार मंजूर एहतेशाम ने वर्तमान भारतीय समाज का चित्रण करते हुए उसके समक्ष उत्पन्न आर्थिक चुनौतियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। मंजूर ने विविध पहलुओं के माध्यम से विभिन्न वर्गों के आर्थिक संकट, पारंपरिक पेशे, बेरोजगारी व शोषण का विस्तार से चित्रण किया है।

5.3. राजनीतिक स्थिति-

भारतीय राजनीतिक की विशेषताओं और उसमें मुसलमानों की भूमिका व स्थान को लेकर पूर्व के अध्याय में विस्तार से चर्चा की गई है। साथ ही मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में अभिव्यक्त राजनीतिक चिंतन का भी विश्लेषण किया जा चुका है। मंजूर ने अपने राजनीतिक चिंतन में विभिन्न पार्टियों के चरित्र, उनकी विचारधारा, सांप्रदायिक स्थिति, भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था, लोकतांत्रिक शक्तियों की क्षीणता, भारतीय राजनीति में स्वतंत्रतापूर्व व पश्चात् मुसलमानों की भूमिका, उनकी उपेक्षा, मुस्लिम नेताओं के चरित्र व स्वार्थ को बड़े विस्तारपूर्वक अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। उनके

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 282-83

उपन्यासों की अपेक्षा कहानियों में राजनीतिक विश्लेषण व त्रासदी को कम जगह मिली है। उनकी अधिकतर कहानियाँ शहरी मध्यवर्गीय समाज की बदलती परिस्थितियों, समस्याओं, आर्थिक संकटों आदि पर केन्द्रित रहा है। मानवीय संबंधों की क्षीणता को बड़े ही मार्मिक ढंग से उनकी कहानियों में देखा जा सकता है। किन्तु कुछ ऐसी भी कहानियाँ हैं जिनमें राजनीतिक त्रासदी का चित्रण कम देखने को मिलता है। पुल पुख़्ता, बावड़ी, स. हरिश्चंद्र के जीवन की वह शाम, रिहाई आदि कहानियों में भारतीय राजनीति व अन्य समस्याओं पर विचार व्यक्त किया गया है। मंजूर की कहानियों में अभिव्यक्त राजनीतिक स्थिति का विश्लेषण निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर किया गया है-

5.3.1.भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था-

मंजूर एहतेशाम ने भारतीय राजनीति में बढ़ती निरंकुशता, तानाशाही, अफसरशाही, भ्रष्टाचार और बेईमानी को अपनी कहानियों में चित्रित किया है। इन समस्याओं को केंद्र में रखकर बावड़ी, पुल-पुख्ता कहानी लिखी गई है। 'बावड़ी' कहानी में मुस्लिम मुहल्ले के समीप एक पुरानी गंदे पानी से भरी बावड़ी रहती है। वह बावड़ी दलदल का रूप ले लेती है, जिसमें डूबने वाला व्यक्ति कभी जिंदा वापस नहीं निकलता है। आए दिन उस बावड़ी में बच्चों, जानवरों व बड़े-बूढ़ों की डूबकर मौतें हो जाया करती हैं। एक अर्से से यह सिलसिला चला आता है। मुहल्ले वाले अगर उसे भरने की कोशिश करते तो उन्हें बड़े दफ्तर के लोग पकड़ कर ले जाते हैं और उन्हें बड़ी मुश्किल से पैसा देकर अपनी जान छुड़ानी पड़ती है। मुहल्ले के लोग बावड़ी को पाटने के लिए छोटे वह बड़े सरकारी दफ्तरों का चक्कर लगाते हैं। कभी बाबू नहीं मिलता, तो कभी सूबेदार साहब बाहर गए होते हैं, इसी तरह उनकी फाइलें साल दर साल सरकारी दफ्तरों में पड़ी रहती है। वह इस दफ्तर से उस दफ्तर तथा इस अधिकारी से उस अधिकारी तक का चक्कर लगाते रहते हैं। उनकी समस्याओं को कहानी में इस प्रकार दिखाया गया है- "इस बार बड़े साहब से भेंट हो पाई- सबका अंदाजा था सूबेदार साहब के कहने की वजह से।" अर्जी उन तक पहुँच गई है, फैसला अभी नहीं हो पाया है। पूरी फाइलें निकलवाना और केस को समझना बहुत जरूरी था, नहीं तो कोई बड़े दफ्तर पर बावड़ी पूरे जाने के खिलाफ मुकदमा कर सकता है।"[1] इस प्रकार बड़े दफ्तर से उन्हें आश्वासन देकर वापस भेज दिया जाता है। कई माह बीत जाने के बाद भी कोई ठोस कदम नहीं उठाया जाता

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 49

और वापस फिर से किसी की मौत की खबर सुनाई देती है। लोग घरों के कूड़े से बावड़ी पाटने की योजना बनाते हैं। लेकिन उन्हें सख्त सरकारी हिदायत दी जाती है कि बावड़ी जैसी है, उसे उसी तरह बनाए रखने की जिम्मेदारी मुहल्ले वालों की होगी, अन्यथा उन पर कार्यवाही की जाएगी। इस प्रकार इस कहानी में सरकारी निरंकुशता तथा अफसरशाही को चित्रित किया गया है।

भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था भारतीय राजनीति की एक महत्त्वपूर्ण त्रासदी बन चुकी है। सरकार चाहे किसी भी पार्टी की हो, व्यवस्था में सुधार होना असंभव सा हो गया है। योजना और उसके कार्यान्वयन में की जाने वाली मनमानी व घोटालों को मंजूर ने 'राहत' कहानी में चित्रित किया है। इस कहानी में भोपाल गैस त्रासदी के बाद सरकार द्वारा पीड़ितों की सहायता हेतु सरकारी सहयोग प्रदान करने की योजना लागू की गयी। इस योजना में आमजनों से लेकर सरकारी अफसरों, नेताओं, डॉक्टरों व स्वास्थ्य विभाग के अन्य कर्मचारियों सभी ने अपने अपने स्तर पर घोटालेबाजी शुरू कर दी। जो लोग इसका त्रासदी से पीड़ित नहीं थे, वे भी अपना नाम पीड़ितों की सूची में जुड़वाने के लिए दफ्तरों के चक्कर लगाते हैं। इस त्रासदी के दौरान हुए घोटालों का वर्णन करते हुए मंजूर एहतेशाम लिखते हैं-"गैस दुर्घटना से वास्तव में पीड़ितों को छोड़कर, जिसका जितना मन और हौसला हुआ, इस राहतनामी लंगर से फैज उठाता रहा है। बड़े और तथा छुटभैये नेता, वकील, बेसनद डॉक्टर- सब यहाँ बट रहे करोड़ों की खैरात से मनचाहा हिस्सा वसूल कर रहे हैं, और करते रहेंगे।"[1] इसी प्रकार मंजूर की अन्य कहानियों में भी राजनीतिक अव्यवस्था, सरकारी तंत्र की उदासीनता, भ्रष्टाचार व शोषण का चित्रण यथास्थान देखने को मिल जाता है। सरकारी निरंकुशता के कारण मध्यवर्गीय जनता में निराशा उत्पन्न होने लगा है। उनके बीच सरकारों के प्रति उदासीनता देखी जा सकती है। आम जनता ने स्वीकार कर लिया है कि सरकार चाहे किसी की भी हो, सूरतेहाल नहीं बदलने वाली।

5.3.2.राजनीतिक उपेक्षा-

भारत में अल्पसंख्यक अधिकारों हेतु कुछ संवैधानिक प्रावधान किए गए हैं। यह प्रावधान अल्पसंख्यकों की भाषा, संस्कृति, धर्म व उनके शैक्षणिक अधिकारों की रक्षा हेतु

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 189

निर्धारित है। किंतु भारत में बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक के बीच के संघर्ष को निरंतर बढ़ता हुआ देखा जा सकता है। इस संघर्ष को राजनीतिक दलों द्वारा अधिक प्रश्रय दिया गया है। चुनाव जीतने हेतु राजनीतिक पार्टियों द्वारा एक बड़े धार्मिक वर्ग समूह को अपने पक्ष में करने हेतु, धार्मिक समूहों की उपेक्षा करना आम बात है। स्वतंत्रता के बाद भारत में कई सांप्रदायिक दंगे हुए। इन दंगों के प्रति सरकारी तंत्रों द्वारा काफी उदासीनता दिखाई गई। यही नहीं कुछ दंगों में तो सरकार स्वयं सक्रिय रूप से भागीदार रही। सन् 1984 का दिल्ली दंगा भारतीय राजनीति द्वारा समर्थित प्रथम दंगा रहा। इस दंगे में सिखों को मारने व विस्थापित करने हेतु सरकार ने दंगाइयों को खुला समर्थन दिया था। इस दंगे में लाखों बेकसूर लोगों की जानें गई। हजारों लोग बेघर हुए थे। सिख दंगे की इस त्रासदी को मंजूर एहतेशाम ने 'राहत' कहानी में याद किया है। इस कहानी में देश में बढ़ती राजनीतिक अस्थिरता, धार्मिक कट्टरता आदि का वर्णन मिलता है। देश के मौजूदा सूरतेहाल को कहानी में इस प्रकार व्यक्त किया गया है-"मैं अगर तेजी से पनपती अस्थिरता, धार्मिक कट्टरवाद और सांप्रदायिक दंगों से चिंतित था तो सरदार साहब पंजाब की दिन-ब-दिन बिगड़ती सूरतेहाल और शासन के नियंत्रण न बनाए रख पाने से दुखी और निराश थे।"[1]

मुसलमानों के प्रति उपेक्षा सरकारी नीतियों को 'पुल-पुख्ता' कहानी में देखी जा सकती है। इस कहानी में मुसलमानों की एक बस्ती जो कि तालाब के किनारे स्थित है। वहाँ का पुल टूटने की आशंका से तथा पूरा गाँव बह जाने के भय से लोग डरे हुए हैं। पुल काफी जर्जर स्थिति में है, किंतु शासन द्वारा उसकी मरम्मत नहीं कराई जाती है, जिसके कारण लोगों में चिंता बनी रहती है। पुल की मरम्मत न कराए जाने के पीछे बस्ती में मुसलमानों की आबादी को जिम्मेदार माना जाता है। मंजूर एहतेशाम कहानी में लिखते हैं-"सब सोची-समझी पालिसी है।.......इस पूरे इलाके को जहाँ वैसे भी ज्यादातर गरीब मुसलमान रहते हैं, खाली कराने का इससे अच्छा क्या बहाना हो सकता है। पानी सब कुछ बहाकर ले जाएगा और कल कोई सरकारी अफसर हमें किसी दूसरे इलाके में प्लाट एलाट कर देगा। कुछ नेता इस बात पर अफसोस का बयान दे देंगे कि हमारा सब कुछ,

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 183

घर-धंधा- सैलाब की नजर हो गया। लकड़ी के कारखाने जो शहर से बाहर निकालने की कोशिश हो रही है वह भी कामयाब हो जाएगी और मास्टर प्लान भी।"[1]

इसी प्रकार मंजूर ने देश में बढ़ती सांप्रदायिकता के प्रति चिंता व्यक्त की है। 'रिहाई' कहानी में देश की स्थिति पर विचार किया गया है। रोजमर्रा के जीवन में आए बदलाव व शहरी समाज के निरंतर कृत्रिमता की ओर बढ़ते जीवन तथा देश की वर्तमान स्थिति का वर्णन किया गया है। साथ ही एक तोते के माध्यम से देश में बढ़ती धार्मिक कट्टरता पर व्यंग्य किया गया है। यह पूरी कहानी एक तोते को केंद्र में रखकर लिखी गई है। कहानी में तोता जो कि धर्मनिरपेक्ष प्राणी है, किंतु समाज में बढ़ते धार्मिक पाखंड और जड़ता से वह भी प्रभावित होता है। रहमतुल्लाह उस तोते को अपने घर लाते हैं, उसे बोलना सिखाते हैं, तोते को कलमा रटवाया जाता है। जब तोता कलमा नहीं बोलता, तो उससे 'जय राम जी की' कहलवाने की कोशिश होती है। लेकिन तोता टे-टे ही बोलता है। तोता 'कलमा' और 'जय राम जी की' को छोड़कर बाकी सारी बातें दोहराता है। लेखक ने तोते के माध्यम से धार्मिक कट्टरता को नकारा है। इसी प्रकार मंजूर ने धार्मिक रूढ़ियों को नकारते हुए, देश में बढ़ती सांप्रदायिक नीतियों को रोकने हेतु एक सकारात्मक विचार रखा है। साथ ही राजनीतिक परिस्थितियों में सुधार लाने की आवश्यकता पर बल है।

5.4.धार्मिक स्वरूप-

मंजूर एहतेशाम ने मुस्लिम परिवारों को केंद्र में रखकर अधिकतर कहानियाँ लिखी हैं। इस कारण मुसलमानों के धार्मिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों, कर्मकांडों का भी वर्णन किया गया है। साथ ही धार्मिक रूढ़ियों, पाखंड, अंधविश्वास व अन्य मान्यताओं को लेकर एक सकारात्मक बहस भी देखी जा सकती है। मध्यवर्गीय समाज में धार्मिक मान्यताओं व विश्वासों में आई कमी को भी मंजूर ने अपनी कहानियों में रेखांकित किया है। साथ ही धर्मनिरपेक्षता की आवश्यकता पर भी विचार किया है। इस प्रकार मंजूर की कहानियों में धर्म के विविध स्वरूप रेखांकित किए गए हैं, इनका विश्लेषण निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 39

5.4.1.धार्मिक मान्यताएँ-

किसी भी समाज के आचार-विचार, खान-पान, वेशभूषा आदि को प्रभावित करने में धार्मिक मान्यताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। विभिन्न धर्म के लोग अपने-अपने धार्मिक कानूनों में बँधे होते हैं और उसी के अनुरूप आचरण करते हैं। हालांकि पूँजीवाद के आगमन के बाद समाज का विभाजन आर्थिक आधार पर किया जाने लगा है। उच्च वर्ग के विभिन्न धर्मों के लोगों की पहचान उसके व्यवहार आदि में एकतारूपता देखी जा सकती है। उसी प्रकार मध्यम व निम्न वर्ग की अपनी-अपनी सीमाएं व पहचान होती है। धार्मिक मान्यताओं का पालन करने वाला एक बड़ा हिस्सा भारत सहित पूरे विश्व में देखा जा सकता है। अन्य धर्मों की भांति भारतीय मुसलमानों की एक खास पहचान बनी हुई है। मुसलमान रोजा, नमाज, हज जकात जैसी मूलभूत इस्लामी सिद्धांतों के अलावा विभिन्न पर्व जैसे ईद, बकरीद, शबे बारात, मुहर्रम, ईद मिलादुन्नबी आदि को भी बड़ी शिद्दत से मनाते हैं। इसके अलावा कुरानख्वानी, मिलाद, जलसा, तकरीर, फातिहा जैसे कई ऐसे धार्मिक कार्य है, जो उनके जीवन का हिस्सा है। अतः मुस्लिम समाज का चित्रण करते समय इन सभी धार्मिक क्रियाकलापों का वर्णन विषय-वस्तु की विश्वसनीयता को तो बढ़ाता ही है, साथ ही मुस्लिम समाज की संरचना को भी समझने में मदद करता है।

रमजान को इस्लाम में पवित्र महीना माना गया है। इसमें पूरे महीने लोग उपवास करते हैं, जिसे ‘रोजा’ कहा जाता है। महीने के अंत में चाँद देखने के बाद ईद का पर्व मनाया जाता है। इसलिए ईद का चाँद काफी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस्लाम में हिजरी संवत की मान्यता है तथा चाँद के आधार पर महीने का निर्धारण किया जाता है। इन सब का विस्तारपूर्वक वर्णन मंजूर की कहानियों में देखा जा सकता है। इसके अलावा मुस्लिम मान्यता के अनुसार मृत्यु संस्कार तथा अन्य क्रियाकलाप का वर्णन ‘रमजान में मौत’ कहानी में देखा जा सकता है। मौत की तकलीफ को कम करने के लिए ‘सूरा यासीन’ पढ़ा जाता है। यह कुरान की एक आयत है। इसी प्रकार मरने के बाद इस्लाम में दफनाने की प्रथा है, जिसका वर्णन ‘खेल’ कहानी में किया गया है। कब्रिस्तान में शव को दफनाने से पहले उसे सामने रखकर मौलवी नमाज पढ़ाता है, जिसे जनाजे की नमाज कहते हैं। नमाज के बाद शव को कब्र में दफना दिया जाता है। उसके बाद फातिहा पढ़ा जाता है। इन सभी गतिविधियों को ‘खेल’ कहानी में चित्रित किया गया है।

मुस्लिम पर्व को मनाए जाने के कारणों व उसके उत्सव का वर्णन भी मंजूर की कहानियों में देखा जा सकता है। भारतीय मुसलमानों के यहाँ इस अवसर पर खास व्यंजन बनाए जाते हैं। प्रत्येक पर्व का एक खास व्यंजन होता है। इन व्यंजनों का वर्णन 'बशीर खां, मालिक मॉडर्न केनिंग आर्ट' कहानी में इस प्रकार किया गया है-"रहने को बशीर एक कोठरी के मकान में किराए से रहते हैं- बिल्कुल अकेले, लेकिन हर शब बारात को अपने हाथ से हलवा बनाते हैं और पास-पड़ोस के तमाम घरों में बाँटते हैं। मीठी ईद पर सिवईयाँ, शीर-खुरमा और मुहर्रम पर खिचढा, इसके अलावा रमजान में कुरान शरीफ के खत्म पर मस्जिद में रोशनी वही अपने खर्चे से कराते हैं, और कभी-कभी शबीना और महफिले मिलाद भी।"[1] इस कहानी में बकरीद मनाए जाने के कारणों से लेकर, उसके महत्त्व और वर्तमान में उसकी अप्रासंगिकता तथा कुर्बानी के नाम पर किये जाने वाले पाखंड को भी दिखाया गया है। सदका, जकात और फितरा आदि को दान में दिए जाने संबंधी इस्लामी नियम और कानून को 'तसबीह' कहानी में चित्रित किया गया है। रमजान के महीने में जकात देने की सख्त ताकीद की गई है। इस सम्बन्ध में साजिदा कहती है-"गरीबों और कम हैसियत लोगों का हक और खुदा का हुक्म तो हमें पूरा करना ही चाहिए। और जकात की तो यह फजीलत बयान की गई है कि जिस चीज पर अदा कर दी जाए, अल्लाह मियां उस पर आग, पानी, चोरी, डाका- सारे खतरे हराम फरमा देते हैं।"[2] इसके अलावा रमजान में पाबंदी के साथ रोजे रखना, नमाज पढ़ना, कुरान की तिलावत करना तथा अपने गुनाहों की माफी माँगना आदि कार्य बड़ी निष्ठा से पूरे किए जाते हैं, जिसका वर्णन इस कहानी में किया गया है। हज करना इस्लाम धर्म के बुनियादी सिद्धांतों में से एक है। इसलिए अधिकतर मुसलमानों की इच्छा होती है कि वह हज के लिए जाए। मंजूर ने रोजा, नमाज, हज, जकात आदि का वर्णन करते हुए मुसलमानों की धार्मिक आस्था का भी वर्णन किया है। मुस्लिम धर्म की मान्यताओं व धार्मिक विश्वासों का मुस्लिम समाज पर प्रभाव व उसके बदलते स्वरूप को मंजूर ने बखूबी चित्रित किया है।

5.4.2.धार्मिक मान्यताओं पर सवाल- यूरोप में रेनेसाँ के बाद से यह खास बौद्धिक व वैज्ञानिक चिंतन का प्रचार-प्रसार शुरू हुआ। जिसका प्रभाव पूरे विश्व में देखा गया। इस चिंतन ने पुरातन मान्यताओं को चुनौती देते हुए, तार्किकता पर बल दिया। यूरोपीय

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 56

[2] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 286

नवजागरण की एक खास विशेषता यह रही कि इसमें धार्मिक संरचना व उसके अस्तित्व को चुनौती देते हुए, पोप के वर्चस्व को खत्म करने का काम किया गया। ऐसे में पूरे विश्व में क्रमशः धार्मिक आडंबर व विश्वासों के प्रति लोगों में उदासीनता आई। धर्म की प्रासंगिकता को लेकर बौद्धिक जगत में विचार-विमर्श होने लगे और इसका परिणाम यह हुआ कि बौद्धिक जगत ने ईश्वर के मृत्यु की घोषणा तक कर डाली। मार्क्स ने भी समाज में धर्म की अनिवार्यता को नकारते हुए एक प्रगतिशील चिंतन की आधारशिला रखी। मार्क्स के विचारों का पूरी दुनिया पर प्रभाव पड़ा। उनके दर्शन को आधार बनाकर विभिन्न लेखकों, राजनीतिज्ञों, साहित्यकारों व अन्य बौद्धिक समाज ने विभिन्न आंदोलन व संगठनों की आधारशिला रखी। भारत में बीसवीं सदी में मार्क्स के विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यहाँ सन् 1925 में कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हुआ और 1936 में ‘प्रगतिशील लेखक संघ’ की स्थापना हुई। भारत के स्वाधीनता आंदोलन में इन दोनों की ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

स्वतंत्रता के बाद भी प्रगतिशील सोच-समझ रखने वालों ने मार्क्स के वैचारिक चिंतन को सराहा व उनके विचारों को अपना आदर्श बनाया। ऐसे प्रगतिशील सोच-समझ रखने वाले लेखकों, चिंतकों ने धर्म की प्रासंगिकता पर सवाल उठाया। हिन्दी में एक बड़ा लेखक वर्ग है, जो धार्मिक मान्यताओं को चुनौती देते हुए इसकी प्रासंगिकता को अस्वीकार करता है। मंजूर एहतेशाम भी ऐसे ही लेखकों की पंक्ति में खड़े पाए जाते हैं। उन्होंने धर्म को एक ऐसा कानून माना है, जिसे तत्कालीन परिस्थितियों में समाज में कानून व्यवस्था को बनाए रखने के लिए लागू किया गया था। धर्म की प्रासंगिकता और अप्रासंगिकता का सवाल बेहद विवादास्पद माना जाता रहा है। मंजूर एहतेशाम ने इसकी अप्रासंगिकता को विभिन्न तर्कों के माध्यम से सिद्ध करने का प्रयास किया है। उनके उपन्यासों में धार्मिक मामलों पर कई जगह लंबी बहस देखी जा सकती है। कहानियों में वैचारिक बहसों के लिए अवकाश कम होता है इसलिए इसमें संक्षिप्त रूप में इस मुद्दे पर विचार-विमर्श किया गया है। उनकी कहानियाँ धर्म की अप्रासंगिकता को केंद्र बनाकर लिखी गई है। ‘बशीर खां, मालिक मॉडर्न केनिंग आर्ट’ कहानी में बकरीद के अवसर पर कुर्बानी करने की परंपरा पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है। मंजूर ने अंधविश्वास और आडंबर का विरोध करते हुए, धार्मिक मान्यताओं के पीछे छिपे मंतव्य को समझने पर बल दिया है।

मंजूर एहतेशाम के वैज्ञानिक चिंतन संबंधी अवधारणा को 'कड़ी' कहानी में विस्तारपूर्वक देखा जा सकता है। यह कहानी न सिर्फ धार्मिक आडंबरों व मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगाता है, बल्कि धर्म संबंधी अवधारणा को ही चुनौती देता है। इस कहानी में मंजूर लिखते हैं-"धर्म अंधविश्वासों का ही दूसरा नाम है जिसने इंसान को दुख के अलावा कुछ नहीं दिया और निजात का रास्ता विज्ञान और वैज्ञानिक चिंतन में है। दुनिया 'कारण' और 'परिणाम' के नियमों का पालन करती है, लेकिन सोच की सही दिशा न अपनाने के कारण लोग अकसर भ्रमित होते हैं, औरों को भी करते हैं।"[1] मंजूर ने धर्म को अंधविश्वास का दूसरा नाम बताया है और ज्ञान-विज्ञान को शाश्वत सत्य बताया है। धर्म में तर्क की गुंजाइश नहीं होती है, यह मात्र विश्वासों पर आधारित होता है। मानव सभ्यता के इतिहास में धार्मिक वर्चस्व व संघर्ष की एक लंबी गाथा रही है। वर्तमान में भी समाज को विभाजित करने के लिए धर्म एक बड़े हथियार के रूप में प्रयुक्त किया जाता रहा है। वैज्ञानिक चिंतन के परिणामस्वरूप विभिन्न धार्मिक मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगे हैं और समाज को नई दिशा में सोचने-समझने हेतु बाध्य किया गया। मंजूर ने 'कड़ी' कहानी में खान, व्यास और सान्याल के आपसी बातचीत के माध्यम से धर्म और विज्ञान के बीच के अंतर्द्वंद को स्पष्ट किया है। सान्याल कहता है-"जीवन की कुंजी ज्ञान विज्ञान है और आसमानों पर फैला सामराज ध्वस्त हो चुका है।"[2] इसी प्रकार यह तीनों इस कहानी में धर्म की प्रासंगिकता पर एक लंबी बहस करते हैं। इस प्रकार के बहस को मंजूर की अन्य कहानियों में भी देखा जा सकता है।

मंजूर ने धार्मिक व्यवस्था को तोड़ने के लिए अंतर्जातीय विवाह को आवश्यक माना है। उनके अनुसार विवाह जैसी संस्था धार्मिक मतभेद को दूर करने में सहायक हो सकती है। इसके अलावा धार्मिक कट्टरता पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने 'रिहाई' नामक कहानी लिखी है। जिसमें एक तोते के माध्यम से व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्त्वपूर्ण बताया गया है। 'कौम' कहानी में अंतर्जातीय विवाह तथा धार्मिक कट्टरता का विरोध किया गया है। इस कहानी में अनिल फरीदा से विवाह करना चाहता है, किंतु धर्म की दीवार दोनों के बीच खड़ी हो जाती है। अनिल विभिन्न तर्कों के माध्यम से धार्मिक रूढ़ियों व बन्धनों को अस्वीकार करता है। वह कहता है- धर्म-वर्म का महत्त्व मेरी नजरों में इतना है नहीं। सिर्फ दुनिया को ही दिखाने की बात है तो मैं जैसा हिंदू वैसा

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 241

[2] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 243

मुसलमान। मैं किसी भावुकता में बहकर कुछ नहीं कह रहा।......लेकिन यह शुद्ध और निरा पाखंड है होगा। एक झूठा दिखावा, जिससे अगर कुछ देर के लिए किसी का कुछ बिगड़ने से बचता है तो मैं तैयार हूँ।"[1] इस प्रकार सामाजिक रूढ़ियों और बंधनों को चुनौती देते हुए अनिल अंतर्जातीय विवाह करने को तैयार होता है। मंजूर ने अन्य धार्मिक मामलों को चुनौती देते हुए तर्क-वितर्क व वैज्ञानिक विकास को महत्त्वपूर्ण माना है।

5.4.3.धार्मिक अंधविश्वास और पाखंड-

मंजूर एहतेशाम ने धार्मिक विकृतियों का चित्रण करते हुए समाज में वैज्ञानिक चिन्तन पर बल दिया है। धर्म समाज को नियंत्रित करने के लिए एक अचूक हथियार के रूप में प्रयुक्त किया जाता रहा है। धार्मिक सिद्धांतों में मानवीयता तथा उत्कृष्ट भावनाओं का समावेश करते हुए नैतिकता पर बल दिया गया है। प्राचीन समय में कबीलाई समाजों में बर्बरता को रोकने हेतु ईश्वरीय शक्ति व चमत्कारों पर विश्वास करने व सदाचार का पालन करने हेतु कुछ नियम-कानून बनाए गए थे। प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा हेतु नदियों, पहाड़ों, पेड़-पौधों व पशुओं को लेकर कई तरह के मिथक गढ़े गए, साथ ही उनमें ईश्वरीय शक्तियों का वास बताया गया। किंतु धीरे-धीरे धर्म जो कि समाज की व्यवस्था को बनाए रखने हेतु एक प्रमुख महत्त्वपूर्ण उपादान था, उसमें कई विसंगतियाँ उत्पन्न होने लगी। अंधविश्वास और धार्मिक पाखंड बढ़ने लगे और धीरे-धीरे श्रद्धा और भक्ति के स्थान पर आडंबर प्रमुख होते गए। मंजूर एहतेशाम ने धर्म के मूलभूत सिद्धांतों व धार्मिक कायदे कानून पर प्रगतिशील दृष्टि से विचार रखते हुए धार्मिक आडम्बरों पर भी विचार किया है। बकरीद के अवसर पर कुर्बानी करने की प्रथा को लेकर 'बशीर खां, मालिक मॉडर्न केनिंग आर्ट' नामक कहानी लिखी है। इस कहानी में मुसलमानों द्वारा हजरत इब्राहिम की कुर्बानी के पीछे छिपे त्याग की भावना को भूल कर उसके स्थान पर धार्मिक पाखंड को महत्त्व दिए जाने पर व्यंग्य किया है। कहानी में बशीर खां बकरों का खरीद-फरोख्त करता है। बकरीद के अवसर पर बकरे बेचकर मुनाफा कमाया करता है। कुर्बानी के नाम पर लोगों की बदलती मानसिकता को उसने इस प्रकार व्यक्त किया है-"अब कुरबानी भी कुरबानी नहीं, सिर्फ दिखावा होकर रह गई है। खाते-पीते, एस करते लोग मोटरों में बैठ-बैठकर हाट जाते हैं और उसी शानो-शौकत

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 145

से के साथ बकरे खरीदते हैं, जैसे, सुना है, एक जमाने में मालदार लोग अय्याशी के लिए गुलाम खरीदा करते थे। यह सबक सीखा कौम ने हजरत इब्राहिम की कुर्बानी से ! यह तरीका है खुदा और उसके रसूल की रजा और खुशी का !”[1] बकरीद पर बड़े और महँगे बकरे खरीदना समाज में वर्चस्व दिखावे से अधिक जुड़ गया है। लोग अपने खाने के लिए बकरे की कुरबानी और बाँटने के लिए पाड़े में नाम डलवा देते हैं। इसी तरह तीन हिस्सा बाँटने की बजाय कम बाँटने का प्रचलन भी बढ़ता गया है। मंजूर ने इस कहानी में बकरीद के अवसर पर होने वाले आडंबर को बखूबी चित्रण करते हुए, उसके पीछे छिपे मंतव्य जिसमें लोभ व मोह का त्याग तथा दान व सहयोग को महत्त्व देने के प्रयास को निरर्थक बताया है।

इसी प्रकार मंजूर ने ‘तसबीह’ कहानी में जकात व सदके के नियम व कानून का चित्रण किया है। इस कहानी में साजिदा जकात के लिए कुछ पैसे दान देना चाहती है, लेकिन उसका पति घर की खराब आर्थिक स्थिति का हवाला देते हुए उसे ऐसा करने से मना करता है। वह कहता है कि दुनिया का कोई ऐसा धर्म नहीं है जो आँख बंद करके कुएँ में कूदने के लिए कहता हो। साजिदा पाबंदी से रोजे-नमाज करती है। वह जकात देने के लिए अपने कान की बाली बेच देती है, जिस पर उसका पति बहुत नाराज होता है। वह धर्म को पारिवारिक दायित्व से बढ़कर नहीं मानता। उसका कहना है कि जब वह आर्थिक तंगी से जूझ रहा था, तब उसने नया काम शुरू करने के लिए अपनी जेवर गिरवी रखने के लिए उसे क्यों नहीं दिया? तब धर्म और इंसानियत कहाँ चली गई थी? इस प्रकार पूरी कहानी में धार्मिक रूढ़ियों से लड़ता हुआ साजिदा का पति एक मध्यवर्गीय समाज का प्रतिनिधित्व करता है। इस कहानी में आर्थिक संकट का भी वर्णन किया गया है। इसी प्रकार ‘कड़ी’ कहानी में भी धार्मिक रूढ़ियों को नकारते हुए समय के साथ बदलते परिवेश में समायोजित करने हेतु महत्त्व दिया गया है। इस्लाम धर्म में दैवीय शक्तियों के प्रति विश्वास को लेकर जिन व प्रेत की मान्यता भी रही है। ऐसा माना जाता है कि इनको दिव्य शक्ति प्राप्त होता है। इसी प्रकार शैतान की मान्यता भी इस्लाम में प्रचलित है। यह सभी अंधविश्वास सामाजिक व धार्मिक पिछड़ेपन की ओर संकेत करते हैं। मंजूर एहतेशाम ने मुसलमानों में प्रचलित इस मान्यता को ‘रमजान में मौत’ कहानी में इस प्रकार चित्रित किया है-“जिन- मेरा मतलब जिन्नातो से है। लोग नमाजे वजीफे पढ़कर जिनो को अपने कब्जे में कर लेते हैं। क्या कहते हैं उन्हें? मवक्किल!

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 51

मवक्किल जिसके कब्जे में हो उसकी हर ख्वाहिश पूरी करता है। हर काम करता है। किसी भी तरह का।”[1] जिन को लेकर ऐसी मान्यता है कि साधना करके उसे अपने वश में किया जा सकता है। जबकि शैतान स्वयं किसी व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाता है। इसी प्रकार कई अंधविश्वास इस्लाम धर्म के अनुयायियों में प्रचलित हैं। ताबीज पहनना, मरे हुए व्यक्ति का मजार बनाकर उसे पूजना, मरे हुए व्यक्ति की आत्मा की शांति हेतु फातिहा करना, झाड़-फूंक आदि मुसलमानों में खूब प्रचलित है और खास बात यह है कि भारतीय समाज में दूसरे धर्मावलंबी भी इस्लाम में प्रचलित इन कुरीतियों और अंधविश्वासों पर विश्वास करते हुए उसका अनुकरण करते हैं। भारत में सूफी मतावलंबियों का भी व्यापक प्रभाव रहा है। मध्यकाल में उनके जादुई करामातों की खूब चर्चा रही है। इसी प्रकार कई धार्मिक रूढ़ियाँ व अंधविश्वास लोक द्वारा ग्रहित हैं, जैसे उत्तर भारत में खाज-खिजिर, गाजी मियाँ की बारात आदि। मंजूर एहतेशाम इन सभी आडम्बरों का वर्णन करते हुए धार्मिक सुधार पर बल देते हैं। उनका मानना है कि धार्मिक सुधार 21वीं शताब्दी की प्रमुख माँग है। उसके बिना समाज में किसी भी तरह का बदलाव संभव नहीं है। धार्मिक रूढ़ियों और मान्यताओं में आई शिथिलता ही समाज और व्यक्ति को सचेत तर्कशील और प्रगतिगामी बना सकती है।

5.5.सांस्कृतिक स्वरूप-

भारतीय संस्कृति अत्यंत प्राचीन संस्कृति मानी जाती है। सदियों से विदेशी व्यापारियों, शासकों तथा पर्यटकों के लिए भारत आकर्षण का केंद्र रहा है। यहाँ कई देशों से विभिन्न संस्कृतियों के लोग आकर बसे हैं। भारत में सांस्कृतिक आदान-प्रदान की एक समृद्ध परंपरा रही है। भारत में मुसलमानों के आगमन के बाद एक बड़ा सांस्कृतिक परिवर्तन देखने को मिलता है। भारत में निवास करने वाले इस्लाम धर्मावलंबियों में मिली-जुली संस्कृति देखने को मिलती है। इसी प्रकार अंग्रेजों के आने के पश्चात पूरे भारतीय समाज में पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा, आचार-विचार आदि का प्रसार तेजी से हुआ है। भूमंडलीकरण के पश्चात सांस्कृतिक विनिमय को और अधिक गति मिली है। भारत का उच्च वर्गीय शहरी समाज काफी हद तक पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित देखा जा सकता है।

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 17

मंजूर एहतेशाम ने भारतीय समाज पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को अपनी कहानियों में बखूबी चित्रित किया है। उनकी कहानियों में उच्च व मध्यवर्गीय समाज का चित्रण करते हुए, उनके खान-पान, वेशभूषा, भाषा, रहन-सहन आदि को पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित दिखाया गया है। 'हरिश्चंद्र के जीवन की वह शाम' कहानी में हरिश्चंद्र एक मध्यमवर्गीय नौकरी पेशा युवक है। उसके घर में चार लड़कियों के बाद बेटे का जन्म हुआ है। वह बेटे के जन्म की खुशी में शाम को घर पर दोस्तों के साथ शराब की पार्टी का आयोजन करता है। शराब की पार्टी करना भारतीय संस्कृति का हिस्सा नही है। इस पूरे आयोजन का चित्रण करते हुए मंजूर एहतेशाम लिखते हैं-"इसे कहते हैं जश्न ! स. हरिश्चंद्र भीतर ही भीतर किसी कालीन की तरह खुलते जा रहे थे। सलाद थी, नमकीन थी, तली हुई फिश थी, शराब थी, यार थे और पीने का बहाना था। पहला पैग पलक मूंदते खत्म हुआ था।"[1] इस कहानी में भारतीय मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता और उसके रहन-सहन में अंतर को स्पष्ट देखा जा सकता है। हरिश्चंद्र भारतीय पुरुष प्रधान मानसिकता से प्रभावित हैं। चार बेटियों के बाद पुत्र रत्न की प्राप्ति से वह बेहद प्रसन्न हैं। जबकि उसका रहन-सहन, वेशभूषा पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होता है।

भारतीय परंपरा में 'अतिथि देवो भवः' की मान्यता रही है। अतिथि को देव स्वरूप मानकर उसका आदर-सत्कार किया जाता रहा है। हालांकि वर्तमान शहरी समाज में इस मान्यता को लेकर शिथिलता देखी जा सकती है। लोग बेहद व्यक्तिगत और एकांगी होते चले जा रहे हैं। बढ़ती महँगाई, व्यस्त जीवनशैली और महत्वाकांक्षा के कारण लोगों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों में कमी आई है। इसके बावजूद अभी भी अतिथि सत्कार भारतीय परंपरा का अंग बना हुआ है। यह परंपरा सभी धर्मों के लोगों में पाई जाती है। लोग अपने-अपने रीति-रिवाजों के अनुसार अतिथियों का सत्कार करते हैं। भारत में खानपान की परंपरा में भी काफी विविधता है। यहाँ जलवायु और उपलब्धता के आधार पर प्रत्येक प्रांत में कुछ खास व्यंजन बनाए जाते हैं। साथ ही शाकाहार व मांसाहारी के आधार पर भी खानपान में भिन्नता पाई जाती है। मुसलमानों के यहाँ अधिकतर मांसाहारी व्यंजन बनाए जाते हैं। तीज-त्यौहार तथा अन्य धार्मिक उत्सव पर कुछ खास व्यंजन बनाने की प्रथा है। हालांकि स्थानीयता के आधार पर इसमें भी भिन्नता देखी जा सकती है। मुसलमानों के यहाँ त्योहारों पर बनाए जाने वाले खास व्यंजनों तथा मेहमान नवाजी की रस्म को मंजूर की कहानियों में भी देखा जा सकता है। 'एक

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 69

पारंपरिक समस्या प्रधान कहानी' में हलीमन की विशेषताओं का वर्णन करते हुए मंजूर एहतेशाम लिखते हैं-"उसके घर आने वाले हर मेहमान का खुश होकर स्वागत होता था और जितना भी संभव हो सके, खातिर तवाजो भी। त्योहारों को वह पूरी मुहब्बत के साथ त्योहारों की परंपरा से मनाती थी, वह चाहे मुहर्रम पर खिचड़ा पकाना हो, बकरा-ईद पर पाए और मीठी ईद और शब-बारात पर सेवई या मीठा हलवा। इसमें पास-पड़ोस और बिरादरी वालों की दावतें भी शामिल रहती थी।"[1] भारत में प्रत्येक धर्म व जातियों के बीच इसी प्रकार हर्षोल्लास के साथ त्योहारों व परंपराओं का निर्वहन किया जाता है। हालांकि शहरी समाज में कुछ शिथिलता आई है। हिंदू धर्म में खानपान संबंधी नियमों में छुआछूत की भावना पाई जाती है, जबकि मुसलमानों में इस तरह का भेदभाव कम है।

भारतीय समाज में विवाह का इतिहास काफी पुराना रहा है। प्राचीन काल में बहुविवाह का प्रचलन अधिक रहा है। यहाँ पितृसत्तात्मक समाज के साथ-साथ मातृसत्ता का भी प्रचलन रहा है। इसी के आधार पर पैतृक संपत्ति का निर्धारण होता आया है। मुसलमानों में भी पैतृक संपत्ति के हस्तांतरण हेतु भारतीय सामाजिक मान्यताएँ ही मान्य है। इस्लाम के धार्मिक कायदे के अनुसार पिता की संपत्ति में पुत्री को भी अधिकार प्राप्त है, किंतु व्यवहारिक रूप से इसका पालन नहीं होता। पुरुष प्रधान समाज होने के कारण यहाँ सभी धर्मों में लैंगिक असमानता मौजूद है। भारत में विवाह हेतु कई पारम्परिक विधियाँ प्रचलित है किन्तु मुसलमानों में विवाह और तलाक के नियम इस्लाम की मान्यताओं के अनुरूप संचालित होते हैं। विवाह में होने वाली रस्मों में हिंदू और मुसलमानों में कुछ समानताएं भी देखी जा सकती हैं। इसके अलावा मृत्यु-संस्कार हेतु अलग-अलग विधियों व अनुष्ठानों का पालन किया जाता है। किंतु मृत्यु भोज की परंपरा मुसलमानों में भारतीय समाज से ग्रहित है। मुसलमानों के यहाँ वैवाहिक कार्यक्रम का वर्णन करते हुए मंजूर लिखते हैं-"रिश्ता पुख्ता हो जाने, या मँगनी की रस्म अदा हो जाने के बाद भी नाईन बुआ के जिम्मे कई काम होते। उबटना, मेहंदी, निकाह, बारात, वलीमा और दुल्हन वालों की तरफ से दी जाने वाली जुमे की दावतों (किसी

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 162-63

जमाने में छुट्टी के दिन यानी जुम्मे के दिन होने के कारण शायद इसे यह नाम मिला) का इजन 'न्योता' भी नाईन बुआ ही, खानदान के घर-घर लेकर जाती थीं।"[1]

मंजूर एहतेशाम ने मुसलमानों के विभिन्न वर्ग के लोगों के रहन-सहन व उनकी विशेषताओं का चित्रण किया है। समाज का चित्रण करते हुए उनके वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान आदि का यथार्थ चित्रण किया है। इसके साथ ही उनकी समस्याओं को भी दिखाया है। इसी प्रकार उच्च व मध्यम वर्ग की विशेषताओं को भी उनकी कहानियों में देखा जा सकता है। मंजूर में मुस्लिम समाज का चित्रण करते हुए विभिन्न वर्गों के पहनावे व उनके रीति-रिवाजों का चित्रण किया है। शहरी मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज की अपनी विशेषताएँ हैं। यह परंपरा और आधुनिकता दोनों के बीच सामंजस्य बिठाने का प्रयास करता है। इसके रहन-सहन में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता है। जबकि वैचारिक रूप से यह पारंपरिक मान्यताओं को आत्मसात किए हुए हैं। इस वर्ग के बीच धार्मिक मान्यताओं को लेकर काफी मतभेद देखे जा सकते हैं। इनके रहन-सहन का चित्रण करते हुए मंजूर लिखते हैं-"सूर्ख मलमल का कारचोबी कवर चढ़ा रुपहला पानदान, धूल से अटा, मुड़ा-तुड़ा फूल और कलियों की शक्ल का इतरदान, बड़ी सी मुरादाबादी तश्त और जग, प्लास्टिक की ट्रेज, प्याले और चमचे-धूल में असली रंगत खोए, चीनी के डोंगे, प्लेटें स्टेनलेस स्टील के चमचे..|"[2] यह सभी चीजें मुसलमानों के रहन-सहन में शामिल है। मुसलमानों के परंपरागत पेशों से बनी चीजों की प्रसिद्धि विश्वभर में है। पान, इत्र, विभिन्न प्रकार के बर्तन, पहने और सामान्य प्रयोग में लाए जाने वाले वस्त्र, उन पर की जाने वाली जड़ी व नक्काशी के काम, इमारतों की बनावट, भोजन बनाने व उन्हें सजाने की विधियाँ साथ ही दैनिक जीवन में प्रयोग की जाने वाली चीजे, बर्तन, भोजन, पेय पदार्थ इत्यादि की अपनी विशेषताएँ हैं। इनमें से कई विशेषताओं का प्रभाव भारत के अन्य धार्मिक समुदायों पर भी देखा जा सकता है। जबकि कई ऐसी भी विशेषताएं हैं जो भारतीय समाज से प्रभावित है। अन्य विशेषताओं की भांति सांस्कृतिक विविधता भारतीय मुसलमानों की विशेष पहचान है। प्रत्येक प्रांत, क्षेत्र, जलवायु, भाषा व भौगोलिक संरचना के अनुसार लोक, संस्कृति व पर्व का प्रचलन भारत में देखा जा सकता है। इन सभी लोग प्रचलित मान्यताओं को पूरा भारतीय समाज चाहे वह किसी भी धर्म व जाति का हो उसका पालन करता है। विभिन्न विशेषताओं के

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 268

[2] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 123

साथ भारतीय मुसलमान यहाँ की संस्कृति को आत्मसात करते हुए अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं। यह सांस्कृतिक समन्वय इतना गहन है कि यह कहाँ तक मुस्लिम संस्कृति का हिस्सा है और कहाँ तक भारतीय संस्कृति से प्रभावित या अनुग्रहित इसका निर्धारण करना दुरूह है।

इस प्रकार मंजूर एहतेशाम ने अपनी कहानियों के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय शहरी समाज की वास्तविक रूपरेखा प्रस्तुत किया है। उनकी कहानियों का विषय बेहद रोचक, प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण है। उनकी कहानियाँ वर्तमान व्यवस्था पर व्यंग्य करती हैं। भारतीय समाज के बदलती परिस्थितियों को रेखांकित करते हुए उन्होंने समाज व परिवार में आए परिवर्तनों को चित्रित किया है। मानवीय संबंधों में आई गिरावट उनकी चिंता का मुख्य केंद्र है। आर्थिक नीतियों पर विचार करते हुए उन्होंने भूमंडलीकरण, निजीकरण, आर्थिक उदारीकरण, औद्योगिक विकास, परंपरागत पेशों का विनाश, रोजगार के संकट, आर्थिक तंगी व बेरोजगारी आदि सभी मुद्दों पर अपनी चिंता व्यक्त की है। आर्थिक तंगी व बेरोजगार का संकट उनकी कहानियों में प्रमुखता से चित्रित किया गया है। इसी प्रकार वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों, उसमें आई अस्थिरता, सांप्रदायिक शक्तियों के बढ़ते प्रभाव, तानाशाही नीतियों व भ्रष्टाचार को भी मंजूर की कहानियों में प्रमुखता से देखा जा सकता है। भारतीय व मुस्लिम संस्कृति उनके रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, मान्यताएँ आदि जगह-जगह चित्रित किए गए हैं। मुसलमानों के धार्मिक कायदे कानून को भी उनकी कहानियों में जगह मिली है। इस प्रकार एक व्यापक फलक को रचती मंजूर की कहानियाँ विविध विषय को समाहित किए हुए है। उनकी कहानियाँ न सिर्फ विषयवस्तु की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि शिल्प की दृष्टि से भी बेजोड़ है। मंजूर की भाषा बेहद समृद्ध है, जो उनकी कहानियों को आकर्षक बना देती है। नई पीढ़ी के हिन्दी कहानीकारों में मंजूर एहतेशाम निश्चित रूप से बड़े व गंभीर लेखक के रूप में हमारे सामने उपस्थित है।

षष्ठम अध्याय

मंजूर एहतेशाम के कथा साहित्य में भाषा एवं शिल्प

षष्ठम अध्याय

मंजूर एहतेशाम के कथा साहित्य में भाषा एवं शिल्प

साहित्यिक कृतियों की जीवंतता उसके भाषिक संयोजन एवं शिल्पगत विन्यास पर निर्भर होती है। कोई भी विचार या तत्त्व, तब तक पाठक तक प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित नहीं हो सकता, जब तक उसमें भाषिक सौन्दर्य तथा काव्यात्मकता का सुनियोजन न हो। साहित्य में हमें भाषा का सृजनात्मक रूप ही देखने को मिलता है। जिसमें अर्थ की सघनता, अनुभव व कल्पना का अद्भुत मिश्रण, प्रवाहशीलता और भाषिक चमत्कार देखा जा सकता है। भाषा के बिना साहित्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। देश-काल, वातावरण, पात्रों का चरित्र-चित्रण, कथ्य और उद्देश्य के संयोजन में भाषिक कलात्मकता का विशेष महत्त्व होता है। श्यामसुंदर दास भाषा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखते हैं-"भाषा ऐसे सार्थक शब्द-समूहों का नाम है जो एक विशेष क्रम में व्यवस्थित होकर हमारे मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने और उसके द्वारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होते है।"[1]

साहित्यकार अपनी अनुभूति को जिस भाषा एवं शैली में प्रस्तुत करता है, उससे उसके शिल्प-विन्यास का निर्माण होता है। शिल्प-विन्यास के वाह्य रूप के लिए भाषा एवं शैली की आवश्यकता होती है। शिल्प शब्द अंग्रेजी के 'टेकनीक' का हिन्दी रूपांतरण माना गया है, जिसका अर्थ है किसी चीज के बनाने या रचने का ढंग या तरीका। कलाकार अपनी अनुभूतियों को जिस पद्धति के माध्यम से अभिव्यक्त करता है, उसे 'शिल्प' कहा जाता है। इस प्रकार शिल्प को किसी वस्तु के निर्माण की पद्धति कहा जा सकता है। शिल्प और शैली के बीच अंतर होता है। शैली के माध्यम से किसी विषय-वस्तु को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाया जाता है। शैली को परिभाषित करते हुए

[1] श्यामसुन्दरदास, साहित्यालोचन, पृष्ठ 316

श्यामसुंदरदास लिखते हैं- “किसी कवि या लेखक की शब्द-योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उसकी ध्वनि आदि का नाम ही शैली है।”[1]

विद्वानों ने शिल्प को शैली से अधिक व्यापक और वस्तु या कृति की आंतरिक संरचना का प्रतिफलन माना है। शिल्प की व्यापकता को वर्धा हिन्दी शब्दकोश के अनुसार देखे तो- “(साहित्य) किसी कथाकार या रचनाकार द्वारा अपनी रचनाओं में प्रयुक्त किया जाने वाला भावाभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग जो शैली से अधिक व्यापक माना जाता है।”[2] इस प्रकार शिल्प के अंतर्गत वे सभी उपादान आते हैं, जिनसे रचना के निर्माण की प्रक्रिया पूरी होती है, जैसे- शब्द प्रयोग, काव्य रचना, भाषा शैली, सांकेतिकता, अलंकार, बिंब, प्रतीक, चित्रात्मकता आदि। इन समस्त बिंदुओं के आधार पर हम किसी कृति या रचनाकार के साहित्यिक विशेषताओं को भाषिक सौन्दर्य के सन्दर्भ में देख सकते हैं। मंजूर एहतेशाम की रचनाओ में अभिव्यक्त शिल्पगत विशेषताओं का अध्ययन हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर करेंगे-

6.1.भाषागत वैशिष्ट्य-

मंजूर के कथा साहित्य में भाषा के कलात्मक प्रयोग देखे जा सकते हैं। उनकी भाषा रचना की विषय-वस्तु एवं वातावरण को सजीव रूप में प्रस्तुत करने में सफल है। वातावरण निर्माण, चरित्र-चित्रण, शब्दों का चयन, वाक्यों का संयोजन, अर्थ सघनता, व्यंग्यात्मकता, कथावस्तु को संप्रेषणीय और अनुभूतिपूर्ण बनाने में उन्होंने भाषा के विभिन्न रूपों का प्रयोग किया है। उनकी भाषा पात्रों की मनःस्थिति को सूक्ष्म स्तर पर अभिव्यक्त करने में सक्षम है। उनका कथा साहित्य सामाजिक यथार्थ से अधिक जुड़ता है, इसलिए उनकी भाषा में विविधता अधिक है। उनके कथा साहित्य में कहीं बोलचाल की भाषा दिखाई देती है, तो कहीं कठिन शब्दों का प्रयोग। मंजूर ने अपने उपन्यासों में अपनी बात कहने का पूर्ण अवकाश लिया है, जैसे- दास्तान-ए-लापता उपन्यास के बीच में दो बार पाठकों के बीच हस्तक्षेप करते हुए प्रस्तावना लिखा है। यह प्रस्तावना उपन्यास के विषय-वस्तु की व्याख्या भी करता है और उसे पूरे परिवेश को भी प्रस्तुत करता है, जो लेखक कथावस्तु के दौरान चित्रित नहीं कर पाया है। इसके अलावा उपन्यासों में भी लम्बे-लम्बे वैचारिक संवाद प्रस्तुत किये गये हैं। जिस कारण उनकी

---

[1] श्यामसुन्दरदास, साहित्यालोचन, पृष्ठ 313

[2] प्रधान सं० रामप्रकाश सक्सेना,वर्धा हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ 2762

भाषा में कहीं-कहीं इतने अधिक उतार-चढ़ाव मौजूद है कि सामान्य पाठक मूल कथावस्तु से संबंध-विच्छेद महसूस करने लगता है।

मंजूर एहतेशाम उत्तर-आधुनिकता के प्रभाव को भी अपनी रचनाओं में स्थान देते हैं। उत्तर-आधुनिकता से प्रभावित रचनाकारों के संबंध में रामचंद्र तिवारी लिखते हैं- "इनका गद्य जादुई यथार्थ का गद्य माना जाता है। इस गद्य में आधुनिक जीवन-यथार्थ की पहचान के साथ मिथक, इतिहास, स्वप्नलोक, रहस्य-रोमांच, सब कुछ तिलस्म के रूप में उपस्थित होता है। कहीं-कहीं कथा पात्रों में फ्रस्ट्रेशन, उन्माद, कुंठा, लाचार, घृणा और नपुंसक क्रोध भी देखा जा सकता है।"[1] इन विशेषताओं के आधार पर अगर मंजूर एहतेशाम की रचनाओं को देखें तो उनमें इतिहास, स्वप्नलोक, रहस्य, रोमांच और आधुनिक जीवन यथार्थ सब कुछ मिल जाएगा। इसके अलावा उन्माद, कुंठा, लाचार, घृणा, क्रोध हताशा आदि का चित्रण करते हुए पात्रों के मनोविज्ञान को सजीव रूप प्रदान किया है। उनकी भाषागत विशेषताओं का विश्लेषण हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर करेंगे-

6.1.1. देशज एवं विदेशी शब्दों का प्रयोग-

मंजूर के कथा साहित्य में विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया गया है। उनकी रचनाओं में अरबी-फारसी तथा अंग्रेजी के शब्दों का अधिक प्रयोग किया गया है। उन्होंने उच्चवर्गीय मुसलमानों के बीच प्रचलित उर्दू का प्रयोग किया है, जिसमें अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव को देखा जा सकता है। कहीं-कहीं संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भी देखने को मिल जाती है। तत्सम एवं तद्भव दोनों ही तरह के शब्दों का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं अरबी-फारसी के कठिन शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे- फ़ित्ना, कता, कलामी, आसेब, हसद, मुसल्लत, जर्फ़, कतबा, वसीला, हिज्रत, दहरिये, दार-उल-इस्लाम, दार-उल-हरब, दार-उल-कुफ्र, जहाँदीदा, फर्द, ताबीर, गोर्बाचोफ, दीगर, पोशिदा, अतिशपरस्त, तमस्खुर, मदाखलत, माउल्लिहम, आरास्ता-पेरास्ता, तजस्सुम, अफ़सरुल-अतिब्बा, जमाँ और मकाँ, बेनियाज़, फिरौन, हम्माल, रस्मुलखत, तजीमें, खत्ताती, हल्कए-तलम्मुज आदि।

[1] रामचंद्र तिवारी, हिन्दी गद्य का इतिहास, पृष्ठ 54

इसी तरह अंग्रेजी के शब्दों का भी खूब प्रयोग किया गया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है- एजीटेशन, एक्सट्रीमिस्ट, प्रोड्यूसर्स, सेल्फ कांट्रडिक्ट्री, ऐब्सोल्युट, टेड्स टू, सेल्फ कांट्रडिक्ट्री, डिसओन, काफ्काईस्क, मेटाफॉरिकल, मिनिएचर, पोट्रेचर, डायलेक्टिक्स, एडवेंचर, टारगेट, अनफेथफुल, केपिटलाइज, सेंटीमेंटल, ग्रेसफुल, इमोशनल, लेक ऑफ कॉमन सेंस, कम्युनिज्म, आइडेंटिटी, इनसाइक्लोपीडियाज, डायरेक्टरीज, मार्टगेज, फर्टिलाइजर्स, कारपोरेशन, विजिलेंस, एक्सप्लोरेशन आव् वन्ज इनर सेल्फ, एक्टिविटीज, डेलिगेशंस, रिप्रेजेंटेटिव आदि। मंजूर न सिर्फ अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किया है, बल्कि पूरे के पूरे वाक्य अंग्रेजी में लिखे हैं। कहीं-कहीं इन कठिन शब्दों या वाक्यों का अनुवाद भी दिया गया है, जैसे- “अब एक ख्वाब की ताबीर तो, इस वक्त, आप अपनी आँखों के सामने देख रहे हैं- द ड्रीम डेट टर्न्ड इनटू अ नाइट मिरर ! (वह ख्वाब जो दुःस्वप्न में बदल गया!) जबकि, द अदर डाइज एज अ ड्रीम ! (दूसरा, सपने के रूप में ही मर गया !)....”[1] इसी तरह वे दूसरी जगह लिखते हैं- “यू सी जेंटलमैन ! समथिंग ऑलवेज रिमेंस टूबी इन ! यह नौजवानों से बेहतर कौन बता सकता है। सॉरी जेंटलमैन! बट इट्स टाइम आई टेक युवर लीव। ऑल द बेस्ट, एंड इट्स बीन अ प्लेजर !”[2] इन दोनों उदाहरणों के माध्यम से हम देख सकते हैं कि मंजूर के लेखन में अंग्रेजी भाषा का कितना अधिक प्रयोग हुआ है।

मंजूर ने आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग भी किया है। कम पढ़े-लिखे या स्थानीयता का चित्रण करते हुए भोपाल क्षेत्र के आसपास बोली जाने वाली हिन्दी के स्थानीय स्वरूप का चित्रण किया है। ‘सूखा बरगद’ उपन्यास में इब्बू दादा कहते हैं- “अरे मैंने कित्ती देर पेले तुझे खली भिगोने को कहा था ! काँ रेता है तेरा दिमाग ! दारी बिल्कुल अपने मय्यों पे गई है ! जबान या लाठी, किसी का असर नहीं होता !”[3] इसी तरह ‘बशीर खां, मालिक मॉडर्न केनिंग आर्ट’ नामक कहानी में भी बशीर खां को स्थानीय बोली बोलते हुए दिखाया गया है- “तेरा दिमाग काँ रेता है?.... ऐसे नई चलेगा। हाथ याँ चलाते हो, आँखें हर सड़क पे आते-जाते पर लगी रहती है।...... नई काम में दिल लगता तो जाओ, गुल्ली डंडा खेलो, याँ काए को वक्त बर्बाद करते ओ ?

[1] मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृष्ठ 193

[2] मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृष्ठ 226

[3] मंजूर एहतेशाम,सूखा बरगद, पृष्ठ 25

कुछ सीख जाओगे तो कल तुमारे ई काम आएगा, नई तो ठेला धकाना!"[1] इसी प्रकार मंजूर ने स्थानीय बोलियों का प्रयोग करके कहानियों में स्वाभाविकता लाने का प्रयास किया है।

मंजूर ने मध्यवर्गीय समाज की जटिलता और उत्तर-आधुनिकता के दबाव को अपने उपन्यासों और कहानियों में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इसलिए उनकी भाषा में कहीं-कहीं थोड़ी जटिलता दिखाई देती है। उनकी भाषा शहरी लोगों के यहाँ बोली जाने वाली आम बोलचाल की भाषा है। बहुभाषिकता की दृष्टि से उनकी भाषा अपार निधि का भंडार है, लेकिन वह कहीं-कहीं साधारण पाठक के लिए बोधगम्य नहीं रह जाती। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि यह जटिलता उनके सभी उपन्यासों और कहानियों में व्याप्त है, और न ही हर प्रसंग में।

मंजूर ने हिन्दी के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग किया है, जैसे- स्वप्नद्रष्टा, तथाकथित, दुर्गति, मोहभंग, सिद्धांत, प्राथमिकता, आदर्श, आत्मनिर्भरता, पुनर्जागरण, स्मृति, आश्चर्यजनक, अभिशप्त, आत्मविश्वास, व्यक्तित्व, अनावश्यक, मध्यावधि, आत्मीयता, निरर्थक, वार्तालाप, अनुपस्थिति, तटस्थता, प्रतिध्वनि, सद्भावना, अपरिपक्व, यथार्थवाद, प्रवेशद्वार, परिस्थिति, विशेषताएं, महत्व आदि। हिन्दी के तत्सम शब्दों के अलावा मंजूर ने ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया है, कुछ उदाहरण इस प्रकार है- दालान, खपरैल, चिमटी, झाड़-झंकार, उबड़-खाबड़, पगडंडी, घास, गोबर, चिड़चिड़ाहट, गड़बड़ाता, तिलमिलाहट, बछड़े, तितर-बितर, पिछवाड़ा, चौराहा, कनखियाँ, कड़वाहट, गुस्सा, खिड़कियाँ, छाँव, धूप, ढकोसला, मिलावट, बचकाना, भूले-भटके, उजाड़ आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषाई दृष्टि से मंजूर की रचनाएँ कितनी अधिक समृद्ध है। उनके विचार किसी भाषा के मोहताज नहीं है। कबीर की भांति उन्हें जहाँ से भी शब्द लेने पड़े हैं, उन्होंने बेहिचक उसका प्रयोग किया है और अपनी बात को पाठक तक पहुँचाया है। इस प्रकार की भाषा के प्रयोग से मंजूर के कहानियों और उपन्यासों की संप्रेषणीयता में वृद्धि हुई है। आधुनिक हिन्दी कथाकारों में मंजूर कथ्य एवं भाषा की दृष्टि से विशेष रूप से महत्वपूर्ण बन जाते हैं। बहुभाषिकता मंजूर की एक बड़ी विशेषता है, जो उनको समकालीन रचनाकारों में विशेष बनाती है।

---

[1] मंजूर एहतेशाम, संपूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 51

6.1.2. आलंकारिक भाषा-

मंजूर एहतेशाम ने अपने कथ्य को आकर्षक और सजीव बनाने के लिए आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है। आमतौर पर अलंकार पद्य लिखने में प्रयोग किया जाता है, किंतु गद्य साहित्य में भी जगह-जगह भाषा में रोचकता लाने के लिए आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया जाता है। 'रमजान में मौत' नामक कहानी में उपमा अलंकार का उदाहरण इस प्रकार देखा जा सकता है- "सुहेला भाभी ने मजाक उड़ाती हुई-सी नजरों से मेरी तरफ देखा।.... दूर आसमान में चमक-सी फैली।"[1] इसी तरह आगे भी झिलमिलाती सी आँखें, राख का-सा रंग, अजीब-सी वीरानी, तंजिया-सी मुस्कुराहट आदि उपमानों को देखा जा सकता है। मंजूर ने जगह-जगह आलंकारिक भाषा-शैली का प्रयोग करते हुए विषय को सम्मोहक बना दिया है। उनके द्वारा प्रयुक्त आलंकारिक भाषा-शैली का एक उदाहरण इस प्रकार है- "तबला दिल की धड़कन-सा धड़का था और सारंगी ने सांस खींचकर अंगड़ाई ली थी। गुलबदन की देह धनुष-सी कस गई थी। उसकी कासनी रंग पोशाक झाड़ और फानूस की रोशनियों में शरीर की जुंबिश के साथ हर कदम पर रंग बदलती महसूस हो रही थी।"[2] इस उदाहरण में उपमा अलंकार व मानवीकरण अलंकार का सुंदर समायोजन किया गया है। उनकी रचनाओं में इस तरह के ही और भी कई उदाहरण देखें जा सकते हैं। रचना में ऐसे विधान से भाषा में चमत्कार तो उत्पन्न होता है साथ ही पाठक उस पूरे दृश्य में डूबकर आनंद लेता है इस तरह के आलंकारिक प्रयोग से भाषा से भाषा में भी काव्यात्मक आ जाती है। इस तरह का एक दूसरा उदाहरण हम देख सकते हैं- "उसके भरे-भरे बाजू कुछ ऐसे थे कि पोशाक पहने होने के बाद भी वह नंगी-नंगी सी लगती थी। जरी के भारी काम पर लशकारा मारती उसकी पिशवाज हर चक्कर के बाद ऊँची उठते-उठते कमर तक जा पहुँची थी। यूँ लगा था जैसे जुगनू का एक हाला रक्श में हो। लौ और गर्दिश तेज, और तेज होती गई थी। किरन से किरन में आग लगती चली गई थी। फिर नाचने वाली नजर आना बंद हो गई थी, सिर्फ नाच नजर आ रहा था। और जब वह (नाचती आकृति) यकायक रुक गई थी तो पिशवाज सुडौल टाँगों पर अमरबेल की तरह तिरछी होकर लिपटती चली गई थी।"[3]

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 9

[2] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 110

[3] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 109

इसी प्रकार और भी कई उदाहरण मंजूर के कथा साहित्य में दिखाई देते हैं, जहाँ अलंकारिक भाषा-शैली का प्रयोग किया गया है। अलंकार के प्रयोग से लेखक अपनी रचना का भाषिक सौंदर्य तो बढ़ाता ही है, साथ ही विषय-वस्तु को सुंदर बना देता है। कथा साहित्य में अलंकारिक भाषा का प्रयोग अधिकांशतः विषय-वस्तु का चित्रण करते समय प्रयोग किया जाता है। मंजूर ने भी नृत्य की भाव-भंगिमा को अभिव्यक्त करने के लिए इस शैली का प्रयोग किया है। इसके अलावा उनके वाक्यों में कहीं-कहीं अलंकार के उदाहरण देखने को मिलते हैं। मंजूर ने उपमा, रूपक, मानवीकरण आदि अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। अलंकारों का प्रयोग करके मंजूर ने अपनी भाषा को और अधिक सुंदर, आकर्षक व प्रभावी बनाया है।

6.1.3. प्रतीक-योजना-

रचनाओं में प्रतीक-योजना का विशेष महत्व होता है। प्रतीक व्यक्ति के अंतर्मन में निहित उन भावनाओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम है, जिसे साधारण शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। प्रतीक को अचेतन अवस्था की भाषा कहा जाता है। प्रतीक एक व्यापक और गूढ़ अर्थ को समाहित करने में सक्षम होता है। प्रतीकवाद की अवधारणा 19वीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशक के दौरान विकसित हुई। प्रतीकवाद को आदर्शवादी चिंतकों का विशेष समर्थन प्राप्त हुआ, क्योंकि इस विचारधारा के आगमन से रहस्यवाद और आध्यात्मिकता का विकास हुआ। प्रतीकवाद को परिभाषित करते हुए भागीरथ मिश्र लिखते हैं-“अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं की समानता या अप्रत्यक्षता के आधार पर जब कोई वस्तु या कार्य किसी वस्तु, भाव, विचार, क्रिया-कलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का संकेत या प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है।”[1]

आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रतीकात्मक शिल्प-विधान का प्रयोग बढ़ा है। विशेषकर नई कहानी आंदोलन के बाद से प्रतीक का प्रयोग कथा साहित्य में अधिक होने लगा है। कई बार पूरी की पूरी कहानी ही प्रतीकात्मक होती है और कई बार उसके शीर्षक, पात्र या किसी वस्तु का प्रयोग प्रतीक के रूप में होता है। प्रतीक विधान से भाषा का सौंदर्य बढ़ जाता है और अर्थ सौष्ठव भी। मंजूर ने अपने कई कहानियों और उपन्यासों में प्रतीकों का प्रयोग किया है। उनके बहुचर्चित उपन्यास ‘सूखा बरगद’ का शीर्षक

---

[1] भागीरथ मिश्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृष्ठ 220-21

प्रतीकात्मक है, जो भारतीय संस्कृति के पतन को दर्शाता है। 'अनेकता में एकता' भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है, जिसे सांप्रदायिक माहौल पैदा कर नष्ट किया जा रहा है। बरगद के विभिन्न शाखाओं की भांति विभिन्न भाषा, बोली, धर्म, जाति, परिधान, लोक-संस्कृति आदि को मिलाकर भारत रूपि एक विशाल वृक्ष का निर्माण होता है। जिसको अब धीरे-धीरे समाप्त किया जा रहा है। इसी प्रकार उनके 'रिहाई' नामक कहानी में तोता एक धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति का प्रतीक है। जिसे रहमतुल्लाह 'ला इलाह इलल्लाह' और 'नबी' कहना सिखाता है और बासित 'जय राम जी की' और 'सीता-राम' बोलना सिखाता है। लेकिन तोता इन दोनों वाक्यों को छोड़कर सभी बातों को दुहराता है। तोते को धार्मिक चीजों में कोई रुचि नहीं है। इसी प्रकार 'दास्तान-ए-लापता' उपन्यास में लापता होना अस्तित्वहीनता का प्रतीक है और उपन्यास का पात्र जमीर अहमद खान एक मध्यवर्गीय व्यक्ति का।

मंजूर के कहानियों के कई शीर्षक प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, जैसे- 'उदास चाँदनी' एक बेरंग जिंदगी का प्रतीक है। 'अंधेरे' में कहानी मध्यवर्ग की हताशा और अंधकारमय भविष्य का प्रतीक है। 'ठंडे बस्ते' अतीत की स्मृतियों का प्रतीक है। 'तमाशा' सांसारिक जीवन का प्रतीक है। मंजूर ने शीर्षक के अलावा कथावस्तु के भीतर भी प्रतीकों का प्रयोग किया है। मंजूर एहतेशाम ने अपनी भाषा में प्रतीकों के प्रयोग से अपनी कथा-साहित्य में भाषिक सौंदर्य को बढ़ाते हैं। उनकी प्रतीक योजना पाठक को गहनता से सोचने पर विवश करते हैं, साथ ही उनकी भाषा व विषय-वस्तु पाठक के मन में कौतुहल बनाये रखती हैं।

6.1.4. बिंब-विधान-

1912 के आस-पास एजरा पाउंड ने एक आंदोलन के माध्यम से 'बिम्बवाद' की अवधारणा को काव्य-जगत में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने का प्रयास किया। यह आंदोलन प्रतीकवाद के विरोध में कविता में स्पष्टता और संप्रेषणीयता बढ़ाने के उद्देश्य से शुरू किया गया था। बिम्बवाद की मूल अवधारणा कविता को सुग्राह्य बनाने के उद्देश्य से अग्रसर है। बिम्बवाद को परिभाषित करते हुए भागीरथ मिश्र ने जेम्स आर क्रूजर को उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "वस्तु, व्यक्ति, भाव, विचार, रूप, गुण आदि को इंद्रिय-गोचर या हृदयंगम बनाने के लिए जो स्पष्ट संप्रेषण अप्रस्तुत विधान के उपयोग की

प्रणाली है, उसे बिम्बवाद कहा जा सकता है।"[1] बिम्ब एक प्रकार से कवि द्वारा अपनी भावनाओं को पाठक तक पहुँचाने का एक माध्यम है। बिम्बवाद का संबंध मूर्तिकला से भी जोड़कर बताया गया है। कविता में बिंब योजना एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है। विशेषकर आधुनिक कविताओं में बिम्ब-योजना ज्यादा प्रचलित हुई है। इसी से प्रभावित होकर कथा साहित्य में भी लेखक अपनी जटिल भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए बिम्ब का प्रयोग करता है।

मंजूर एहतेशाम की रचनाओं में बिम्बों का सुंदर प्रयोग किया गया है। मंजूर ने अपने पात्रों की मनःस्थितियों को अभिव्यक्त करने के लिए सुंदर बिम्बों का सृजन किया है। उनके बिम्ब आकर्षक, स्पष्ट और अलंकृत होते हैं। उनके उपन्यासों और कहानियों में प्रयुक्त बिंबों के कुछ उदाहरण हम निम्न रूपों में देख सकते हैं-

1. "उनकी आँखों की तह में गुलमुहर की फूलों से लदी डालियों का अक्स यूँ सिमट रहा है, जैसे निकलते सूरज में आसमान पर शक्लें बदलती खुशनुमा बादलों की टुकड़ियाँ। मैंने उसके गले में बाहें डाल दी और हम दोनों गुलमुहर के नीचे सटकर बैठ गए।"[2]

2. "असद मियाँ के हलक से अजीब-सी आवाजें निकल रही थी और उनका मुँह फटकर खुल गया था। गर्दन और माथे की रगें खिचकर उभर आई थी और चेहरे पर नीलाहट दौड़ने लगी थी.... बिल्कुल वैसी ही नीलाहट जैसे बर्फ में दबे गोश्त में पैदा हो जाती है।"[3]

3. "मैं अपने भीतर टूटकर डूबते एक तारे के साथ अंधेरे में घुलता जा रहा था... उसी अंधेरे से खद्दर की आकृति बाहर आयी थी और उसके साथ-साथ मैं.... वह मुझे अलविदा कहकर रुखसत हो रही थी।"[4]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि मंजूर ने प्रतीक, उपमान, विशेषण और मानवीकरण का प्रयोग करके अत्यंत प्रभावशाली बिम्ब-योजना प्रस्तुत की है। इन बिम्बों में मानवीय अनुभूतियों, सुख-दुख, प्रेम, विरह, उलझन, भय, मृत्यु आदि का मार्मिक और

---

[1] भागीरथ मिश्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृष्ठ 225

[2] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 194

[3] मंजूर एहतेशाम, संपूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 18

[4] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 243

हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है। बिम्बवाद की विशेषता भी यही है कि साधारण शब्दों में गहन अनुभूतियों को सहजता से पाठक तक पहुँचाया जाए। पाठक की मानसिक स्थिति को समझाने के लिए प्रचलित माध्यमों का प्रयोग न करके बिम्ब के माध्यम से पूरी स्थिति या संवेदना को पाठक तक पहुँचाने का प्रयास करना। मंजूर एहतेशाम के शिल्प-विधान में बिम्बों का सुंदर प्रयोग किया गया है, जिसके कारण उनके भाषा की संप्रेषणीयता अधिक बढ़ गई है।

6.1.5. सांकेतिकता-

कथा साहित्य में सांकेतिक भाषा-शैली का प्रयोग कोई नया नहीं है। सांकेतिकता में कई बार व्यंग्य छिपा होता है, तो कई बार वह किसी गंभीर समस्या को इंगित करता है। सांकेतिकता के कारण कथा अर्थपूर्ण एवं प्रभावशाली बन जाती है। कई बार लेखक नितांत निजी संबंधों को अभिव्यक्त करने या किसी घटना का संकेत करने हेतु भी सांकेतिक भाषा-शैली का प्रयोग करता है। साठोत्तरी पीढ़ी के कथा साहित्य में सांकेतिकता का प्रयोग अधिक देखे जा सकते हैं। इस पीढ़ी के कथा-लेखन में सांकेतिकता का प्रयोग शिल्प का अनिवार्य अंग बन गया है।

मंजूर ने सांकेतिकता का प्रयोग विभिन्न संदर्भों में किया है। विशेष रूप से शारीरिक संबंधों का चित्रण करते समय सांकेतिक भाषा-शैली का प्रयोग अधिक किया जाता है, जिससे साहित्य में अश्लीलता से बचा जा सके। मंजूर के यहाँ भी शारीरिक संबंध को दर्शाते हुए सांकेतिकता का प्रयोग देखने को मिलता है। सईदा आपा की बेटी के अवैध संबंधों का चित्रण करते समय लेखक ने संकेत के माध्यम से उस पूरी घटना-प्रक्रिया को स्पष्ट किया है-“शाहिदा आपा? वह आदमी? अकेले घर में? मेरा दिमाग लपककर किताब के उन पन्नों पर चला गया। छी!! कैसी बेहुदी किताब थी ! वह सब फोटो- क्या और क्यों हो रहा था उन पन्नों पर? कहीं ऐसा भी कोई करता होगा? क्या शाहिदा आपा और वह आदमी इस समय वही सब.....? छी! छी!”[1] इस पूरी घटना-प्रक्रिया और उनके आपसी संबंधों को अभिव्यक्त करने के लिए सांकेतिकता का प्रयोग किया है। रशीदा के मन में वह पूरा दृश्य उभरने लगता है, जो उसने किताब के उन पन्नों में देखा था। उसके मन में घृणा का भाव उत्पन्न हो जाता है। इसी तरह मंजूर ने ‘कुछ दिन और’ उपन्यास में

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 29

राजू की पत्नी और रिजवी के साथ बनाए गए संबंधों को भी सांकेतिक रूप में प्रस्तुत किया है।

इसके अलावा विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों को दर्शाने के लिए सांकेतिकता का प्रयोग किया गया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में परवेज और सुहेल के आपसी बातचीत में कई ऐसे राजनीतिक, साहित्यिक व वैचारिक मुद्दों पर बहस होती है, जिसका संकेत मात्र उपन्यास में किया गया है, उसको विस्तार से प्रस्तुत नहीं किया गया है। कई ऐसे संगठनों की ओर संकेत करते हुए उनके बारे में जिज्ञासा उत्पन्न की गयी है। इसी तरह कई जगह गंभीर मुद्दों पर बात करते समय शेरो-शायरी या किसी कविता की पंक्ति का प्रयोग कर पूरी स्थिति को स्पष्ट कर दिया गया है। 'जश्न' कहानी के सभी पात्र सांकेतिक है, जैसे- 'ज' का सारा शरीर लोगों में बँट चुका है। सारी भीड़ खुशी और मस्ती में तालियाँ और सीटियाँ बजा रही है। अभी 'य' मिट्टी-भरे संदूक को 'ज' के खाली गढ़े में उलट देगा और हम सब मिलकर उसे जमीन में बराबर कर देंगे।"[1] इसी प्रकार के अन्य कई उदाहरण मंजूर की रचनाओं में देखे जा सकते हैं। मंजूर ने सांकेतिक शैली का प्रयोग करके अपनी भाषा और विषय-वस्तु को गंभीरता प्रदान की है।

6.1.6. नाटकीयता-

मंजूर एहतेशाम ने अपने कथा साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक अंतर्विरोधों का चित्रण करते हुए नाटकीयता का समावेश किया है। मंजूर ने अधिकतर मध्यवर्गीय समाज का चित्रण किया है, जो अपने अंतर्द्वंद्व और विसंगतियों को छिपाने के लिए झूठ और दिखावे का सहारा लेते हैं। ऐसे पात्रों के मनोभावों की अभिव्यक्ति करते हुए उनके व्यवहार में बनावटीपन स्वाभाविक रूप से आ जाता है, जिसे मंजूर ने नाटकीयता के साथ चित्रित किया है। 'कुछ दिन और' उपन्यास में राजू को मध्यवर्गीय विडंबना से पीड़ित दिखाया गया है। वह अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को खोना नहीं चाहता, इसलिए उसके चरित्र में दिखावा और झूठी मान-मर्यादा बनाए रखने का प्रयास दिखाई देता है। इसी प्रकार 'रमजान में मौत' कहानी में सुहेला भाभी के चरित्र का वर्णन करते हुए मंजूर ने नाटकीय परिवेश और बनावटीपन को दिखाया है। दास्तान-ए-लापता उपन्यास में जमीर अहमद खान का चरित्र एक वर्ग विशेष का चरित्र बन जाता है। डॉ० मगरमच्छ और उसकी बातचीत के दौरान पूरा नाटकीय परिवेश प्रस्तुत किया गया है।

[1] मंजूर एहतेशाम, संपूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 84

पहर ढलते उपन्यास में न केवल चरित्र बल्कि उसका पूरा वातावरण नाटकीय है। इस उपन्यास में परिवेशगत नाटकीयता को प्रस्तुत करने में मंजूर की भाषा-शैली की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उस महफिल की साज-सज्जा, चरित्र, घटनाएँ आदि में ही नही बल्कि पूरे शिल्प-विधान में भी नाटकीयता को देखा जा सकता है। यह पूरा उपन्यास एक स्वांग की तरह रचा गया है। इस उपन्यास के जिल्द पर लिखा गया है कि-"इस भुतहा नाटक में पाखंड, गुरुर, नफरत, ईर्ष्या, सूफियाना कलाम, इश्क, पछतावा, आँसू, फरेब, मक्कारी सभी के रक्स हैं। रात के एक हिस्से की कहानी के बाहर कितनी और रातें और दिन है जहाँ लेखक हमे ले जाता है, और फिर वापस ले आता है, वर्तमान में सक्रिय भूतों की बारात के बीचो-बीच।"[1] इसी प्रकार उनकी कहानियों में भी नाटकीय शैली का प्रयोग देखा जा सकता है। 'उदास चाँदनी' कहानी में नाटकीय शिल्प विधान का प्रयोग किया गया है। इसके अलावा अंधेरे में, एक पारंपरिक समस्या प्रधान कहानी, रिहाई, घेरा, जश्न, काला पुल आदि कहानी में भी नाटकीय तत्व देखे जा सकते हैं। उनके साहित्य में अभिव्यक्त नाटकीयता व्यक्ति और समाज की तमाम विसंगतियों को अभिव्यक्त करते हुए सहज रूप में आ जाता है। ये नाटकीय तत्व न केवल विषय-वस्तु को प्रभावी बनाते हैं, वरन् शिल्प को भी विशेष बना देते हैं। वे संवेदनशील और गंभीर से गंभीर विषय-वस्तु को भी नाटकीय शैली के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वह व्यंग्यात्मक भी बन जाती है और पाठक उस पर सोचने को भी विवश हो जाता है। मंजूर ने नाटकों की रचना अधिक नहीं की है, किन्तु नाटकीय तत्वों को शब्दों में पिरोने की कला उनके पास अद्भुत है।

6.1.7. काव्यात्मकता-

उपन्यासों को महाकाव्य का आधुनिक रूप माना गया है। इसमें विषय-वस्तु का विस्तार गद्य लेखन के माध्यम से किया जाता है। गद्य लेखन को लेकर व्याकरणिक दृष्टि से कई शर्ते व सुझाव दिए गए हैं। द्विवेदी युग को हम गद्य के परिष्कार का युग मानते हैं। गद्य के विकास के संदर्भ में उपन्यासों की बड़ी भूमिका रही है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार-"उपन्यास गद्य का पहला बड़ा अविष्कार है। गद्य में अर्थ और अनुभव की विविक्ति जितनी और जैसे बढ़ती गई उपन्यास की सामर्थ्य भी उतना ही बढ़ती गई।"[2]

[1] मंजूर एहतेशाम, पहर ढलते, जिल्द से

[2] रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी गद्य: विन्यास और विकास, पृष्ठ 99

जैसे-जैसे हिन्दी साहित्य समृद्ध होता गया, वैसे-वैसे व्याकरणिक नियमों में भी शिथिलता और परिवर्तन होता गया। कविता में जहाँ मुक्त छंद की लोकप्रियता बढ़ी, वहीं गद्य में भी भाषिक स्तर पर परिवर्तन होने लगे। विशेषकर कथा साहित्य, गद्य के परिमार्जित और परिष्कृत स्वरूप के आग्रह पर नहीं टिक सका। परिणामस्वरूप गद्य में नवीन शैली, शिल्प के साथ-साथ काव्यात्मक स्वरूप का भी विकास हुआ।

मंजूर ने भी अपने कथा साहित्य में काव्यात्मक गद्य का प्रयोग किया है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में बिम्ब, प्रतीक, फैंटेसी, लयात्मकता और संगीतबद्धता का प्रयोग करते हुए काव्यात्मक स्वरूप प्रदान किया गया है। 'बशारत मंजिल' उपन्यास में तवाइफों की जिंदगी का वर्णन करते हुए मंजूर लिखते हैं-"जिंदगी की असलियत तो तब शुरू होती थी जब मुजरा खत्म होता था: साज खामोश, आवाज गुम और रोशनियाँ गुल। महज हाँफने की आवाज। सीने में आती-जाती साँस की जुंबिश। सूरज की रोशनी फैलने का डर, जिसमें सारे चेहरे और नक्श, अपनी असली हालात में दिखते हैं। उजाले से मुँह फेरकर, तकिए में सिर दिये, सोने की कोशिश: दोबारा, रात के अँधेरे, रोशनियों, राग, आवाजों का इंतजार। एक न खत्म होने वाला इंतजार।"[1] इसी तरह मंजूर ने अपने उपन्यासों में जगह-जगह शेरो-शायरी का प्रयोग किया है। यह शायरी उन मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुए हैं, जिसका वर्णन लेखक गद्य में न करके कविता के माध्यम से संकेत कर देता है। मीर, गालिब, इक़बाल के शेर उनकी भाषा में काव्यात्मकता को बढ़ाते हैं। मंजूर ने शेरो-शायरी की पंक्तियाँ प्रयुक्त करके अपने भाषा को काव्यात्मक स्वरूप प्रदान किया है। चंपा, चमेली और गुलबदन के कोठे का वर्णन करते हुए संगीत और नृत्य का भी वर्णन किया गया है। चमेली कहती है- "एक नगमा, एक लय, एक जानदार थिरकन: जिंदगी मौत की माती नही, मौत खुद जिंदगी में शामिल है।"[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि मंजूर के गद्य व्याकरणिक नियमों से जकड़े हुए न होकर, कविता की तरह स्वच्छन्द हैं। जिसमें लेखक अपनी आवश्यकतानुसार शब्दों का चयन करता है। वाक्यों को पूरा करने की अनिवार्यता भी उनके गद्य में नहीं दिखाई देती।

---

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 115

[2] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 114

6.2. शैलीगत वैविध्य-

'शैली' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'स्टाइल' का हिन्दी रूपांतरण है। किसी भी विषय-वस्तु को प्रस्तुत करने के ढंग को 'शैली' कहते हैं। शैली का शाब्दिक अर्थ- चाल, ढंग, प्रणाली, रीति, प्रथा, वाक्य रचना आदि के विशिष्ट प्रयोग से है। शैली द्वारा रचनाकार की अपनी कृति में विभिन्न पहलुओं को जोड़कर उसे विशिष्ट और विलक्षण बनाता है। शैली में मूलतः भाषा की संरचना, अभिव्यक्ति की विधि, शिल्प संयोजन आदि का समावेश होता है। शैली को संप्रेषण का प्रभावशाली विधि माना जाता है। भारतीय काव्यशास्त्र में शैली के प्रयोग को लेकर कोई स्पष्ट परंपरा नहीं मिलती। शैली के स्थान पर 'रीति' का प्रयोग किया गया है। साहित्य जगत में शैली की अवधारणा का विकास या शैली शब्द का प्रयोग पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में देखने को मिलता है।

प्रत्येक रचनाकार का लिखने का अपना एक विशेष ढंग होता है। लेखक किसी भी विषय-वस्तु, घटनाक्रम एवं वातावरण को अपनी भाषा क्षमता के आधार पर एक विशिष्ट ढंग से प्रस्तुत करता है। कथा साहित्य में शैली का विशेष महत्व होता है। रचनाकार अपने विचारों एवं अनुभवों से कथा को प्रस्तुत करता है। इस प्रस्तुतीकरण में कभी वह सीधे सपाट तरीके से विषय-वस्तु का वर्णन करता है, तो कभी अतीत की स्मृतियों में खो जाता है। कभी-कभी रचनाकार 'मैं' की भूमिका में होता है तथा पात्रों से संवाद स्थापित करता है। इस प्रकार वह विभिन्न तरीके अपनाता है, जिससे उसके रचना-प्रक्रिया में एक विशिष्ट शैली का निर्माण हो जाता है। शैली कई प्रकार की होती है। मंजूर एहतेशाम ने भी अपनी रचनाओं में विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। उनके रचनाओं में अभिव्यक्त शैलियों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण हम निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर करेंगे-

6.2.1. वर्णनात्मक शैली-

हिन्दी कथा साहित्य में वर्णनात्मक शैली का ही अधिक प्रयोग होता है। विषय-वस्तु को विस्तार देने, पात्रों का चरित्र-चित्रण करने, घटनाओं का उल्लेख, वातावरण का निर्माण, काल विशेष को दर्शाने में वर्णनात्मक शैली का विशेष महत्व होता है। वर्णन के माध्यम से कथाकार अपने कथावस्तु में विश्वसनीयता लाने का प्रयास करता है। वर्णन कई प्रकार से किए जाते हैं। कभी वे सामान्य होते हैं, तो कभी सांकेतिक। इसी तरह कभी

विवरणात्मक होते हैं, तो कभी प्रभावात्मक। वर्णन साहित्य का अनिवार्य तत्व होता है। इसके अभाव में कोई भी कहानी, उपन्यास, निबंध तथा अन्य गद्य विधाओं का सृजन करना मुश्किल होता है। वर्णनात्मक शैली का प्रयोग सरल, सहज भाषा में किया जाता है। इस शैली के माध्यम से ही रचनाकार पाठक के मन में आकर्षण, सम्मोहन व आह्लादन पैदा करता है। वर्णन काल्पनिक भी हो सकता है और यथार्थपरक भी। मंजूर ने अपने कथा साहित्य में वर्णनात्मक शैली का अधिक प्रयोग किया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में फफू के घर का वर्णन इस प्रकार किया गया है-"फफू की इबादतगाह, रहने या सोने का जो एक कमरा था, उनकी सारी जरूरत की चीजें- कपड़ों का टीन का काला संदूक, कुछ किताबें, हद कि पीने के पानी की सुराही तक उसी में रहती थी। एक पलँग था- आराम करने को, और एक लकड़ी की चौकी, नमाज और इबादत के लिए। पलँग के नीचे ही उनका कपड़ों वाला संदूक रखा रहता था।"[1]

मंजूर ने इसी प्रकार अन्य संदर्भों को प्रस्तुत करते हुए इस शैली का प्रयोग किया है। प्राकृतिक दृश्य का वर्णन करते हुए उन्होंने सम्मोहक वर्णन किया है। वे किसी भी विषय को विस्तार से प्रस्तुत करते हुए मार्मिक दृश्य अंकित करते हैं। एक दृश्य इस प्रकार है-"एकदम अँधेरा था। सड़क की रोशनियाँ गायब और आसमान घने बादलों से उठा हुआ था। खामोशी और दूर आगे कहीं अंधेरे में किसी उचान से पानी के गिरने की आवाज़। सड़क उधड़ी हुई थी और रह-रहकर हमारे पैर गिट्टियों और पत्थरों से टकरा रहे थे। पानी की बूँदे तेज हो गयी थीं। राजू मुझे घसीटकर ऊपर लिए जा रहे थे। इसी पहाड़, इसी घाटी के बाजू में कई सौ फीट नीचे तालाब था। दूर शहर बसा हुआ था।"[2]

मंजूर ने पात्रों का चरित्र-चित्रण करते हुए भी इस शैली का प्रयोग किया है। वे किसी भी पात्र की वेशभूषा, शारीरिक बनावट, हाव-भाव, क्रिया-कलाप को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि उस व्यक्ति विशेष का पूरा चित्र सजीव रूप से पाठक के मन में अंकित हो जाए। इसी प्रकार वातावरण का चित्रण करते समय भी शब्दों की सुंदर योजना प्रस्तुत करते हैं। किसी मकान या कमरे के वातावरण को चित्रित करते समय बड़ी बारीकी से हर एक छोटी-बड़ी चीजों को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि पाठक के समक्ष उसका पूरा दृश्य उभर जाता है।

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 23

[2] मंजूर एहतेशाम, कुछ दिन और, पृष्ठ 79

मंजूर ने ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण करते समय भी वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। वे घटनाओं को सिर्फ इतिहास के रूप में प्रस्तुत नहीं करते बल्कि उस पूरे परिवेश को भी चित्रित करते हैं, जिस काल-खंड में यह घटना घटित हुई होती है। इसके लिए वे पात्रों की सृजन, उनके विचार, वेशभूषा, बातचीत का लहजा आदि को यथार्थपरक ढंग से चित्रित करते हैं। इस शैली का चित्रण करते समय उनकी भाषा में कहीं से भी बोझिलता या उबाऊपन का आभास नहीं होता है। उनके वाक्य रोचक होते हैं व भाषा सरल व सरल होती है। कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता, लेकिन अंग्रेजी के शब्द जरूर प्रयुक्त हुए हैं, लेकिन वे आसानी से समझे जा सकते हैं।

6.2.2. विश्लेषणात्मक शैली-

विश्लेषणात्मक शैली में लिखी गई रचना के केंद्र में कोई न कोई विचार होता है। इसे तर्क प्रधान शैली भी कहते हैं। रचनाकार द्वारा किसी एक विचार का तर्कपूर्ण विवेचन एवं विश्लेषण इस शैली में किया जाता है। तार्किक बहुलता के कारण कभी-कभी रचनाकार अपने मूल विषय-वस्तु से हटकर दूसरी दिशा में चला जाता है। जिसके कारण कभी-कभी रचना का कथानक काल्पनिक लगने लगता है। विश्लेषणात्मक शैली के कई रूप होते हैं। जिनमें यथार्थपरक, मनोवैज्ञानिक, आदर्शात्मक, बौद्धिकता से युक्त विश्लेषण आदि महत्वपूर्ण होते हैं। अस्तित्ववाद से प्रभावित रचनाओं में विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग करते समय चरित्र की विशेषता पर विशेष जोर दिया जाता है। इस शैली में मनुष्य के आंतरिक मनोभाव की अभिव्यक्ति सूक्ष्मता के साथ संभव हो पाती है। रचनाकार पात्रों के द्वंद्व, अंतर्विरोध और मानसिक उलझनों का विश्लेषण करता है। हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के लेखन में इस शैली का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। आधुनिक कथा साहित्य में जीवन की जटिलताओं और संघर्षों का चित्रण करते हुए विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग बढ़ा है। स्त्री रचनाकारों ने भी इस शैली को मनोवैज्ञानिक संदर्भ में प्रयुक्त किया है।

मंजूर ने अपनी रचनाओं में राजनीतिक मुद्दों पर बात करते हुए विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। भारत में कम्युनिस्ट विचारधारा के क्षीण होने के कारणों की समीक्षा करते हुए अली हुसैन साहब रशीदा को बताते हैं-"आज हम लोग कहाँ हैं ? कम्युनिस्ट होते हुए भी पहले मुसलमान हैं या हिंदू ! क्यों हैं? क्योंकि अपनी औलाद के

वजूद का मसला सबसे पहले हमारी आँखों के सामने है।"[1] वे स्वतंत्रता से पूर्व के कम्युनिस्टों को याद करते हैं, जो देश के लिए अपने प्राण त्याग देते थे। उनके अन्दर लड़ने का जज्बा था, किंतु स्वतंत्रता के बाद कम्युनिस्टों के व्यवहार में भी परिवर्तन आने लगा। अब लोग अपने राजनीतिक व आर्थिक हितों की ओर ज्यादा उन्मुख हुए हैं। स्वतंत्रता पश्चात् बढ़ती हुई सांप्रदायिक स्थितियाँ भी इसके लिए काफी हद तक जिम्मेदार रही हैं। इस प्रकार वे भारत में कम्युनिस्ट पार्टी के चरित्र में आये बदलाव का विश्लेषण करते हैं।

धार्मिक मुद्दों पर बात करते हुए भी मंजूर ने विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। इस्लाम में बनाए गए नियमों की व्याख्या करते हुए उसके पीछे निहित उद्देश्यों को तर्कबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया है। शाह वलीउल्लाह ने 18वीं शताब्दी में इस्लाम धर्म के मूल सिद्धांतों की व्याख्या करते हुए धार्मिक व सामाजिक सुधारवादी आंदोलन चलाया था। इस आंदोलन का वर्णन करते हुए मंजूर ने उनके विचारों को विश्लेषणात्मक शैली में इस प्रकार प्रस्तुत किया है-"इस्लाम मनुष्य के स्वभाव को समझते हुए माल, दौलत और संपत्ति में उसके मालिकाना हक स्वीकार करता है, लेकिन कुछ नियमों के पालन के साथ-साथ। सूद लेना हराम है क्योंकि यह बिना मेहनत हासिल की गई दौलत है, जो गरीबों को और गरीब करके, मुट्ठी भर लोगों की संपत्ति बनाने में सहायक होती है। जमाखोरी करके मुनाफा कमाने की मनाही है। इसी तरह पूँजीवाद को बढ़ावा देने वाली बातों का पर सख्त पाबंदी है। पुरखों से मिलने वाली संपत्ति पर शर्तें लागू होती हैं। जकात, सदका, खैरात की हिदायत कि शरमाया एक जगह इकट्ठा न होने पाये।"[2]

इस प्रकार मंजूर ने धार्मिक मुद्दों पर बात करते समय तर्क के साथ धार्मिक सिद्धांतों की व्याख्या एवं विश्लेषण किया है। इसके अलावा हज करने और बकरीद पर जानवरों की कुर्बानी देने की प्रथा को भी तर्कपूर्ण ढंग से खारिज किया है। इस्लाम में सूअर का गोश्त हराम माना गया है। इसके कारणों की समीक्षा करते हुए मंजूर ने हराम और हलाल के पीछे निहित मंतव्य को भी स्पष्ट किया है। इसी प्रकार राजनीतिक व सांप्रदायिक नीतियों पर विचार प्रस्तुत करते समय भी इस शैली का प्रयोग मंजूर द्वारा किया गया है। मंजूर ने विभाजन से पूर्व व पश्चात् के बदलते हुए राजनीतिक परिवेश एवं उसके कारणों का भी विश्लेषण प्रस्तुत किया है। गाँधी जी के विचारों व सिद्धांतों की

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 161

[2] मंजूर एहतेशाम,बशारत मंजिल, पृष्ठ 31

आवश्यकता एवं उसके महत्व को भी रेखांकित किया गया है। खिलाफत आंदोलन के दौरान भारत में हुए विभिन्न आंदोलनों का जिक्र करते हुए वे लिखते हैं- "इस अफसोस के साथ कि हिंदुस्तानी लोग, तुर्कों के साथ, खिलाफत से बड़ा सच, कि मजहब नहीं मुल्क अव्वल था, नहीं सीख पाए। तुर्को ने तो वर्तमान असलियत को समझते हुए खुद को पुरानी अर्थहीन प्रथाओं से मुक्त कर लिया लेकिन हिंदुस्तानी मुसलमानों के नेता उन्हीं मुद्दों को लेकर उनका भावनात्मक शोषण करने में लगे हुए थे। इसके बावजूद उन्हें उम्मीद थी कि भारतीय मुसलमानों को भी जल्द ही असलियत समझ में आ जाएगी और वह किसी के साथ हाथों में खिलवाड़ नहीं बनेंगे। यही उम्मीद उन्हें ऐसे हिंदुओं से थी जो उस समय अलगाव की राजनीति कर रहे थे।"[1]

इस प्रकार मंजूर ने कई ऐसे मुद्दों पर बात करते हुए उसका विवेचन-विश्लेषण किया है। उन्होंने इस शैली का प्रयोग मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के रूप में भी किया है। पात्रों के मनोभाव, उनके आपसी बातचीत, चिंताओं और उलझनों का चित्रण करते समय मनोवैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसके अलावा कई ऐसे पारिवारिक संबंधों, विघटन के कारणों, पात्रों के चरित्र को रेखांकित करते हुए मनोविश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस शैली के प्रयोग से मंजूर की शिल्पगत वैविध्य तो बढ़ा ही है, साथ ही कथागत समृद्धता और गंभीरता में भी वृद्धि हुई है।

6.2.3. संवादात्मक शैली-

आधुनिक कथा साहित्य में संवाद शैली विशेष रूप से प्रचलित है। इसे वार्तालाप शैली या नाटकीय शैली भी कहा जाता है। नाटक की भांति इसमें दो पात्रों का आपस में संवाद होता है। कहानी तथा उपन्यास में भी प्रायः बीच-बीच में इस शैली का प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से विषय-वस्तु रोचक व वास्तविक प्रतीत होने लगती है। इसमें रचनाकार दृश्य एवं परिस्थितियों का निर्माण इस प्रकार करता है कि पाठक उस दृश्य का स्वयं अनुभव कर सके। यद्यपि नाटक में अभिनयकर्ता की भाव-भंगिमा और मंच की साज-सज्जा कुछ इस प्रकार से की जाती है कि वह पूरे परिवेश व परिस्थिति को अभिव्यक्त कर सके, जिसे नाटककार अपने नाटक का मूल उद्देश्य बनाता है। इसमें संवादों के माध्यम से कथावस्तु का विस्तार किया जाता है। संवाद शैली का प्रयोग करके मंजूर ने भी अपने उपन्यासों के विषय-वस्तु को रोचक और प्रभावशाली बनाया है। उनके

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 166

कथा साहित्य में इस शैली का प्रयोग जगह-जगह किया गया है। उनके संवादों में नाटकीयता के पुट भी विद्दमान है। उदहारण रूप में हम इस प्रकार देख सकते हैं-

'कितने पैसे?' किसी पुरुष की आवाज।

'साढ़े पाँच रूपये।' दूसरी आवाज।

'रीगल टॉकीज से यहाँ तक साढ़े पाँच रूपये? क्या अंधेर है! औरत की आवाज थी।"[1]

इस संवाद में बातचीत करने वालों की तरफ संकेत मात्र किया गया है और जब उनकी बातचीत खत्म हो जाती है, तब उन पात्रों के बारे में बताया गया है। इस संवाद में पूरा दृश्य पाठक के समक्ष उपस्थित हो जाता है, जो राजू और उसकी पत्नी के मध्य होते हैं। इस तरह के अन्य कई संवाद उनकी रचनाओं में प्रस्तुत किये गये है। जिससे इनकी रचनाएँ चलचित्र की भांति पूरी घटना को प्रस्तुत करने में सक्षम हो पाते हैं।

सूखा बरगद उपन्यास में भी संवादात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। रशीदा और कुसुम की आपसी बातचीत को इसके उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है-

"कुसुम!" मैं जाने क्यों डर जाती है- ऐसा न हो कहीं कुछ गड़बड़ हो जाए।"

मेरी बात पर वह खिलखिलाकर हँस देती।- "गड़बड़ हो तो हो जाए,"

वह सिर झटक कर कहती- "मुझे क्या होगा ?"

"क्या तुम लोग अकेले ही घूमते फिरते हो?" मैंने पूछा था।

हाँ! इसमें क्या हुआ"

"रात को भी?"

हाँ! दस ग्यारह बजे तक भी। क्यों?"[2]

इस प्रकार इन दोनों के बीच एक लंबा संवाद प्रस्तुत किया गया है। संवाद शैली का प्रयोग मंजूर के कथा साहित्य में प्रायः मिलता है, इसके प्रयोग से कथा में

---

[1] मंजूर एहतेशाम, कुछ दिन और, पृष्ठ 9

[2] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 46

प्रवाहशीलता व सरसता आ जाती है। मंजूर ने अपने उपन्यासों के साथ-साथ कहानियों में भी इस शैली का भरपूर प्रयोग किया है। सूखा बरगद उपन्यास में इसका एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है- "अब्बू मैंने इठलाकर कहा था, आप यूँ ही तारीफ कर रहे हैं। यही गोश्त अम्मी पकाती हैं तो कितना मजेदार होता है।"

"अरे अम्मी को छोड़ो," अब्बू धीरे से हँसे थे- "उनके तो खानदान में सब ही खाना पकाना जानते हैं। तुम्हारे मामू को ही ले लो।"

"मामू बातें तो हमेशा ऐसी करते हैं," मैं बोली थी, "जैसे बहुत कुछ पकाना आता हो। उनके हाथ का पकाया हुआ कुछ आपने भी खाया अब्बू?"

अब्बू हँसने लगे थे।"[1]

मंजूर ने विभिन्न संदर्भों को प्रस्तुत करते हुए पात्रों के आपसी बातचीत को संवाद शैली में प्रस्तुत किया है। उनके संवाद बहुत बड़े-बड़े नहीं होते। वे बीच-बीच में पात्रों के मनोभाव और भाव-भंगिमाओं को भी रेखांकित करते रहते हैं, जिससे पात्र उस पूरे दृश्य का आनंद ले सके।

6.2.4. पूर्वदीप्त शैली-

इस शैली में पात्र अतीत की घटनाओं का चित्रण करता है। इसमें वर्तमान के साथ-साथ भूत की घटनाओं, स्मृतियों व भावनाओं का वर्णन किया जाता है। अपने वर्तमान को जीते हुए जब कोई पात्र अपने अतीत का वर्णन पात्र करने लगता है, तो उसे पूर्वदीप्त शैली कहा जाता है। यह अंग्रेजी के फ्लैश बैक का हिन्दी रूपांतरण है। पूर्वदीप्त शैली वास्तव में लेखन की एक टेकनिक है। जिसके माध्यम से रचनाकार अपने विषय-वस्तु को प्रामाणिक और रोचक बनाता है। इस शैली का प्रयोग दो प्रकार से होता है- एक जहाँ से कथा प्रारंभ होती है वहाँ से और दूसरा उपन्यास में प्रभावान्विति हेतु। इस शैली में वर्णनात्मक शैली की अपेक्षा विषय का विस्तार कम हो पाता है। इसमें कल्पना का उपयोग भी एक सीमा तक ही किया जाता है। यह शैली संस्मरणात्मक होती है। हिन्दी में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'शेखर एक जीवनी' इस शैली के बड़े उदाहरण हैं।

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 53

मंजूर की रचनाओं में भी पूर्वदीप्त शैली का प्रयोग किया गया है। 'बशारत मंजिल' उपन्यास इसी शैली पर आधारित है। इसमें कथावाचक अपने पूर्व की पीढ़ियों को याद करते हुए कहानी कहता है। इस उपन्यास में स्वतंत्रतापूर्व की घटनाओं और स्वतंत्रता सेनानियों को भी याद किया गया है। साथ ही 'बशारत मंजिल' से जुड़े उन सभी किरदारों का चित्रण किया गया है। जो वर्तमान में जीवित नहीं। अपनी पुरानी स्मृतियों को शब्दबद्ध करते हुए कथावाचक कहता है- "क्या अतीत के साये से उस प्रकार पिंड छुड़ाया जा सकता है जैसे कुछ लोग भूत-प्रेत उतरवाकर दोबारा सामान्य जीवन बिताने लगते हैं? वह क्या था जिसने जिंदगी भर मुझे बशारत मंजिल से बाँधकर रखा? जो आखिरकार मुझे खींच कर बताशों वाली गली ले गया? और जो आज भी, भूलने की तमाम कोशिशों के बावजूद, शायद मेरे जिंदा रहने की अकेली वजह बना हुआ है?"[1] इस उपन्यास में पूर्वदीप्त शैली प्रभावशाली प्रयोग किया गया है। 'मदरसा' उपन्यास में भी इस शैली का प्रयोग दिखाई देता है। साबिर जब अपने मामू से मिलता है तो वे उसे अतीत की स्मृतियों को याद करते हुए, उसके पिता के बारे में बताते हैं। इसी प्रकार साबिर अपनी पत्नी के साथ संबंध-विच्छेद की घटना को याद करता है। वह अपनी पूर्व प्रेमिका को भी याद करता है। अपने पैतृक निवास स्थान पर जाने के बाद खानदान वाले जब उसके पिता से जुड़ी यादों को साझा करते हैं, इसके अलावा वह अपने नानी जान को याद करते हुए भी अतीत में चला जाता है। इन सभी घटनाओं का वर्णन करते हुए लेखक ने पूर्वदीप्त शैली का प्रयोग किया है।

मंजूर की कहानियों में भी पूर्वदीप्त शैली का प्रयोग देखने को मिलता है। उनकी कई कहानियाँ इसी शैली में लिखी गई है। जबकि कुछ कहानियों में बीच-बीच में इस शैली का प्रयोग किया गया है। 'तमाशा' कहानी में पूर्वदीप्त शैली का प्रभाव देखने को मिलता है। इस कहानी की शुरुआत कुछ इस प्रकार होती है-"याद करता हूँ तो कोई किस्सा-कहानी लगता है: खुद से बहुत दूर और अविश्वसनीय सा। यह कमाल वक्त के पास है कि असलियत को किस्से कहानी में तब्दील कर दे। खुद सकीना आपा भी तो अपनी आँखें मटका कर ऐसा ही कुछ कहा करती थीं कि सब तमाशा है। लेकिन उनकी तमाशे की परिभाषा, अपने वक्त और जमाने के लिहाज से, क्या रही होगी, अंदाजा लगाना मुश्किल है।"[2] इस पूरी कहानी में कथावाचक इसी तरह वर्तमान में रहते हुए

---

[1] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 249

[2] मंजूर एहतेशाम, संपूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 247

अतीत की घटनाओं को याद करता है। इस दौरान विभिन्न रोचक किस्से प्रस्तुत किए जाते हैं, उन तमाम चरित्रों को याद किया जाता है। यह एक गरीब मजदूर परिवार की कहानी है, जिसका अतीत जितना संघर्ष में रहा है, उसका वर्तमान भी उसी संघर्ष से गुजर रहा होता है और भविष्य में भी किसी सकारात्मक बदलाव की उम्मीद नहीं दिखाई देती। इसीलिए शकीला आपा इस पूरे जीवन को तमाशा कहती हैं। जिसमें शादी होती है, बच्चे पैदा किए जाते हैं और फिर वे भी उसी तरह से संघर्ष करने लगते हैं, जैसे कि उनकी पिछली पीढ़ी करती आयी है।

मंजूर ने 'भोपाल का बेगम दरबार' कहानी में भी पूर्वदीप्त शैली का प्रयोग किया है। यह कहानी भोपाल शहर के उस दौर को चित्रित करती है, जब भोपाल रियासत हुआ करता था। लेखक ने भोपाल शहर के अतीत और वर्तमान की तुलना करते हुए, मुसलमानों के जीवन में आए बदलाव को चित्रित किया है। इस कहानी की शुरुआत कुछ इस प्रकार होती है-"यह मेरी उस उम्र की याद है जब मुझे लगता था कि दुनिया मेरे ही साथ और मेरे ही लिए बनी है: हम जहाँ रहते थे, शहर की फसील के बाहर बसे उस हिस्से का नाम छावनी वलायतियान था। आमतौर पर वहाँ निम्न मध्यम वर्ग के उन पठानों के परिवार बसते थे जो कभी भूतपूर्व रियासत की सेना में सिपाही रह चुके थे।"[1] इस प्रकार कथा शुरू होकर भोपाल की बेगम दरबार और उनकी विरासत को याद करती है।

इसके अलावा मंजूर के अन्य कहानियों और उपन्यासों में भी इस शैली का उदाहरण देखने को मिलता है। मंजूर ने इस शैली का सुंदर प्रयोग करते हुए अपने भाषा को प्रभावोत्पादक बनाया है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में भाषिक सौन्दर्य को विभिन्न शैलियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। उन शैलियों में पूर्वदीप्त शैली एक महत्त्वपूर्ण शैली के रूप में देखी जा सकती है।

6.2.5.आत्मकथात्मक शैली-

आत्मकथात्मक शैली का तात्पर्य होता है कि इसमें कथावस्तु प्रथम पुरुष के रूप में प्रस्तुत की जाए। इसमें 'मैं' शैली में कहानी का पात्र पूरे अंतर्वस्तु, घटनाओं का चित्रण करता है। इस शैली में लिखे गए उपन्यास और कहानियों में लेखक के अपने अनुभव,

[1] मंजूर एहतेशाम, संपूर्ण कहानियाँ, पृष्ठ 263

विचार या पृष्ठभूमि का विश्लेषण किया जाता है। इसमें चरित्र पर ज्यादा जोर दिया जाता है। इस शैली में लिखे गए उपन्यास और कहानियों में कहानी का कोई भी पात्र लेखक का स्थान ग्रहण कर लेता है और फिर आत्मकथा की भांति वह पूरे घटनाक्रम को प्रस्तुत करता है। आत्मकथात्मक शैली को 'मैं' शैली या 'आत्मपदीय' शैली भी कहा जाता है। मंजूर एहतेशाम के कई उपन्यास व कहानियाँ 'मैं' शैली में लिखी गई हैं। 'सूखा बरगद' उपन्यास में रशीदा द्वारा पूरी कथावस्तु को प्रस्तुत किया गया है। रशीदा इस उपन्यास में 'मैं' की भूमिका निभाती है। वह उपन्यास के शुरू से लेकर अंत तक उन तमाम घटनाओं को इस प्रकार बताती है मानो अपनी आत्मकथा कह रही हो। वह इस कथावस्तु को प्रस्तुत करते हुए कहती है-"घटनाक्रम में बंध कर इस तरह धीरे-धीरे आगे बढ़ने के बाद जब मै रुककर पीछे की ओर देखती हूँ तो लगता है कई महत्वपूर्ण बातें कहे और अनकहे के बीच कहीं छूट गयी है।"[1] उपन्यास की कथावस्तु रशीदा और सुहेल के बचपन से शुरू होकर युवावस्था तक जाती है। इस दौरान रशीदा के जीवन में जितने भी प्रसंग आते हैं उन सबका चित्रण किया गया है। रशीदा के साथ-साथ उसके पूरे परिवार की कथा भी इसमें बताई गई है।

'दास्तान-ए-लापता' में कथावाचक नेपथ्य में है। वह किसी पात्र की भूमिका में नहीं दिखाई देता, किंतु जमीर अहमद खान के जीवन में आने वाली कठिनाइयों को क्रमबद्ध रूप में कहता है। इसके अलावा लेखक स्वयं बीच-बीच में अपने जीवनानुभव को प्रस्तुत करता है। उपन्यास के बीच में दो बार प्रस्तावना लिखकर लेखक ने स्वयं 'मैं' की भूमिका भी निभाई है। इसी प्रकार 'मदरसा' उपन्यास में भी साबिर नईम की जीवन गाथा को भी आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। जबकि 'बशारत मंजिल' उपन्यास में कथावाचक स्वयं अपनी आत्मकथा बताता है। किंतु तीन पीढ़ियों की कथा को प्रस्तुत करने में यह शैली सीमित हो जाती है। यह उपन्यास आत्मकथात्मक कम जीवनी अधिक बन जाती है। जिसमें संजीदा सोज और स्वतंत्रता संघर्ष का वातावरण अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है। कथावाचक कहता है-"वह अजनबी बिस्तर जिस पर मैं नींद के लिए करवटें बदल रहा था किसी पल मेरी परिचित दुनिया में तब्दील हो गया था और मैं उस 'बशारत मंजिल' में पहुँच गया था जिसकी बुनियादों पर मौजूदा खंडहर खड़ा था।"[2] इस उपन्यास में कथावाचक उन तमाम परिस्थितियों और घटनाओं को

---

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 50

[2] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 243

बताता है जो बशारत मंजिल में रहने वालों के साथ घटित होती है। इस उपन्यास में आत्मकथात्मक शैली के साथ-साथ पूर्वदीप्त शैली का भी प्रयोग किया गया है। कथावाचक अपने जीवन में घटित पूर्व की घटनाओं को आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत करता है ऐसे में इन दोनों ही शैलियों का प्रयोग एक साथ किया गया है। उपन्यास के अंत में उपसंहार लिखा गया है, जिसमें कथावाचक कहता है-"मैं जो लिखने बैठा था, वह शायद इतना ही था: जमानों पर फैला, एक खानदान और उसके सदस्यों का किस्सा। सारी कहानियों की जो एक कहानी होती है, उसे कह सकने की उम्मीद और आस में। यह मेरे लिए थका डालने वाला काम साबित हुआ है, और खुद मुझे यह भी नहीं मालूम कि मैं इसमें कहाँ तक कामयाब हो सका हूँ।"[1] इस उपसंहार में कथावाचक ने इस पूरी घटना को लिखे जाने के कारणों को भी बताया है तथा उन तमाम पात्रों के वर्तमान का भी संक्षेप में जिक्र किया है।

मंजूर की कहानियों में भी आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। इन कहानियों की कथावस्तु, पात्रों का चरित्र-चित्रण, समस्या, घटना आदि को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, जैसे किसी व्यक्ति के जीवन में घटित कोई घटना हो। जबकि इन कहानियों में निहित मूल्य किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं होते, वे एक बड़े जीवन फलक को रचते हैं। जिनमें मानवीय करुणा और व्यथा भरी होती है। आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई उनकी कहानियों में 'रमजान में एक मौत', 'छोटी-छोटी चीजें', 'पुल पुख़्ता', 'एक फिल्मी पोस्टर के हवाले से', 'उदास चाँदनी', 'रात', 'तलाफी', 'रिश्ता', 'तमाशा' आदि को देखा जा सकता है। इन कहानियों में जीवन के विभिन्न पहलुओं का वर्णन देखने को मिलता है। लेखक ने एक कथावाचक के माध्यम से 'मैं' शैली में कथा को प्रस्तुत किया है। कई बार इन कहानियों का कथावाचक कहानी को प्रस्तुत करने में स्वयं का चित्रण नहीं कर पाता है और वह उन पात्रों और घटनाओं पर अधिक केंद्रित होता है, जिनके बारे में वह कहानी बता रहा होता है, फिर भी उन कहानियों की शैली आत्मकथात्मक ही होती है। मंजूर के कुछ कहानियों तथा उपन्यासों में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग गौण रूप में भी प्रयुक्त हुआ है, जैसे कथा के बीच में कहीं-कहीं कोई पात्र कथावाचक नहीं होता, किंतु कथा लेखक के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है, ऐसे में लेखक स्वयं कथावाचक की भूमिका में होता है।

---

[1] बशारत मंजिल, मंजूर एहतेशाम, पृष्ठ 249

6.2.6. व्यंग्यात्मक शैली-

साठोत्तरी कहानी और उपन्यास यथार्थ के अधिक निकट होते हैं। इसमें उन तमाम विसंगतियों और विद्रूपताओं का चित्रण किया जाने लगा, जिसमें एक निम्न व मध्यमवर्गीय व्यक्ति जूझता है। साथ ही सामाजिक व राजनीतिक त्रासदियों को भी। ऐसे जीवनानुभव को अभिव्यक्त करने के लिए कभी-कभी लेखक व्यंग्यात्मक भाषा-शैली का प्रयोग करता है। मंजूर ने भी धार्मिक पाखंड का विरोध करते हुए प्रायः इस शैली का प्रयोग किया है। जैसे- 'दास्तान-ए-लापता' उपन्यास में दुल्हन चची धार्मिक कर्मकांड का विरोध करते हुए हज की परम्परा पर व्यंग्य करती है- "शैतान को पत्थर मारने को पागल हुए जा रहे हैं यह समझ के कि बस, यही असली शैतान है। बहकाया होगा उसने किसी पैगंबर को मगर तुम ऐसे कौन से पीर-पैगंबर हो जो शैतान अपना कीमती वक्त तुम पर बरबाद करेगा।"[1] इसी प्रकार वे मुल्ले-मौलवियों के धार्मिक पाखंड पर व्यंग्य करते हुए कहती हैं- "अरे कोई पूछे इन लंबी दाढ़ी वालों से कि कमबख्तों! यह शैतान होता क्या है? यह तुम्हारी दुम होता है, दारों यह तुम खुद होते हो!"[2] इसके अलावा हज के दौरान 'संगे अस्वद' नामक काले पत्थर को चूमने और काबा के चारों ओर चक्कर लगाने के दौरान लोगों का एक दूसरे को कुचल कर आगे बढ़ना आदि दृश्यों का वर्णन करते हुए व्यंग्यात्मकता देखी जा सकती है। मंजूर गंभीर विषयों को प्रस्तुत करते समय भी कई बार व्यंग्य का सहारा लेते हैं। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान सेनानियों के आपसी मतभेद को प्रस्तुत करते हुए, उनके वैचारिक संघर्ष को प्रस्तुत किया है। इस वैचारिक संघर्ष के परिणामस्वरुप सांप्रदायिक गतिविधियों में भी वृद्धि हुई और लोगों के आपसी संबंध खराब होने लगे, इन तमाम परिस्थितियों को प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं- "लोगों का आपसी एतमाद उठना शुरू हो गया था, फफू अक्सर ठंडी सांस लेकर कहती- और यह आने वाली तमाम खराबियों की जड़ थी। बैकग्राउंड में जो म्यूजिकल आर्केस्ट्रा बजना शुरू हुआ था वह दिन-ब-दिन ऊँचे से ऊँचा होता गया था और लोगों के कान उसकी आवाजों के लिए बहरे होते गए थे।"[3] मंजूर एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए सभी की बातों को सुनना और उसके विचारों को जानना आवश्यक मानते हैं।

---

[1] मंजूर एहतेशाम, दास्तान-ए-लापता, पृष्ठ 42

[2] मंजूर एहतेशाम, दास्तान ए लापता, पृष्ठ 40

[3] मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, पृष्ठ 190

मंजूर ने पति-पत्नी के आपसी नोकझोंक को चित्रित करते हुए भी व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में अब्दुल वहीद धार्मिक शिक्षा को गैर जरूरी मानते हैं लेकिन उनकी पत्नी धर्म के प्रति विशेष श्रद्धावान है। बच्चों को धार्मिक शिक्षा दिए जाने पर वे पत्नी को चिढ़ाते हुए कहते हैं-"तुम्हारी तो खैर बीत गई," कभी-कभी अब्बू अम्मी से चुटकी लेते- "इन मासूम बच्चों ने क्या बिगाड़ा है जो इन्हें खराब कर रही हो!"..... "बिगाड़ लो, बिगाड़ लो" वह मुझे अपना सिर ओढ़नी से ढांपे और सुहेल को टोपी लगाए फफू के यहाँ से अपने-अपने सिपारे बगल में दबाए लौटते देखकर छेड़ते- "समझदार बच्चे हैं, ज्यादा बहकावे में नहीं आएँगे। चुटकी बजाते दोनों को ठीक कर लूँगा।"[1] इस प्रकार मंजूर ने विभिन्न मुद्दों पर व्यंग्यात्मक भाषा-शैली को अपनाकर भाषा में रोचकता लाने का प्रयास किया है।

मंजूर पात्रों के अनुकूल भाषा का चयन करते हुए विषय-वस्तु को प्रभावोत्पादक व विचारशील बनाते हैं। उनके पास विस्तृत शब्द भंडार है। वे हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी, संस्कृत, देशज व अंग्रेजी के शब्दों का आवश्यकतानुरूप प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा में एक विशेष आकर्षण है। उन्होंने कहीं भी सायास शब्दों को नहीं पिरोया है। स्वभाविकता उनकी भाषा की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हुए वे भोपाल के आसपास बोली जाने वाली हिन्दी के पुट को अपनी भाषा में शामिल करते हैं। चूँकि उनकी कथावस्तु का केंद्र भी भोपाल ही रहा है, अतः स्थानीयता का प्रभाव आना स्वभाविक ही है। इससे उनकी भाषा में सरसता तो आ ही जाती है, साथ ही वह रोचक भी हो जाती है।

विभिन्न रचनाकारों की भांति मंजूर की भी अपनी एक विशेष शैली है। उनकी शैली विषयानुरूप और वैविध्यपूर्ण है। उन्होंने वर्णनात्मक, विचारात्मक, पूर्वदीप्त, व्यंग्यात्मक, आत्मकथात्मक आदि शैलियों का प्रयोग किया है। उनके भाषा एवं शैलीगत वैविध्य के कारण उनकी कथावस्तु रोचक, प्रवाहपूर्ण, स्वाभाविक, अर्थपूर्ण तथा व्यंग्यात्मकता को प्रस्तुत करने में समर्थ है। पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने में उनकी भाषिक क्षमता बेजोड़ है। उनकी भाषा में अर्थ प्रतिपादन करने की जबरदस्त शक्ति है। यही कारण है कि मंजूर की रचनाएँ न सिर्फ वैचारिक स्तर पर बल्कि कलात्मक रूप में भी उतनी ही समृद्ध है।

[1] मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृष्ठ 31

उपसंहार

उपसंहार

संसार विचित्रताओं से भरा पड़ा है। मनुष्य अपने साधारण से जीवन को असाधारण बनाने की प्रबल महत्वाकांक्षा पाले निरंतर संघर्षशील है। मनुष्य की असीमित इच्छाओं को संयमित करने हेतु तरह-तरह के आदर्शों की स्थापना की गयी। धर्म का विधान भी व्यक्ति की इच्छाओं और उसकी पाशविक प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर, समाज में सामंजस्य बिठाने हेतु रचा गया एक ऐसा ही सृजनात्मक प्रयास रहा है। धर्म द्वारा समाज में मानवीय गुणों की स्थापना की गयी। प्राचीन काल में समाज की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने हेतु धर्म एक प्रमुख माध्यम रहा है। किंतु कालांतर में यह सृजनात्मक प्रयास अति बौद्धिकता के कारण कृत्रिमता से लैस होकर अपने स्वभाव के बिल्कुल विपरीत हो चुका है। आज धर्म पूरी वैश्विक राजनीति का केंद्र बन चुका है। धर्म को पूरे विश्व में संकट का विषय बना दिया गया है। बड़े-बड़े सामूहिक नरसंहार, आतंकवादी गतिविधियाँ, भौगोलिक सीमाओं का निर्धारण, देशों व राज्यों का विभाजन, सरकारों की वैश्विक व घरेलु नीतियाँ, सत्ता व शक्ति का विस्तार, सांप्रदायिकता के साथ-साथ संपूर्ण प्राकृतिक व भौतिक संसाधनों को अपने नियंत्रण में लेने हेतु धर्म सबसे प्रभावी व महत्त्वपूर्ण हथियार बन चुका है। धर्म के मूल सिद्धांतों को त्याग कर इसके माध्यम से उन तमाम नकारात्मक प्रवृत्तियों को जागृत किया जा रहा है, जिसके समन हेतु धर्म की उत्पत्ति हुई थी।

धर्म का इतिहास हजारों वर्ष पुराना रहा है। इस दौरान अनेक सभ्यताएँ बनी व नष्ट हुई, लेकिन मानव समाज आज भी पूरी तरह सभ्य नहीं हो पाया। मानव सभ्यता के इतिहास में धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। किन्तु वर्तमान में धर्म के आधार पर ही अंतरराष्ट्रीय व राष्ट्रीय मुद्दे तय किए जा रहे हैं। ये मुद्दे केवल राजनीति तक ही सीमित नही हैं बल्कि ये समाज के आंतरिक संरचना को भी प्रभावित करने में सक्षम है। आज धर्म मनुष्य का पहचान बन चुका है। अगर भारतीय शासन व्यवस्था व उसकी नीतियों पर गौर किया जाए, तो यहाँ भी धर्म पूरी सक्रियता के साथ उपस्थित दिखाई देता है। बल्कि यूँ कहें कि उसका भरपूर दुरूपयोग किया जा रहा है। भारत में धर्म को आधार बनाकर बहुसंख्यक बनाम अल्पसंख्यक की राजनीति पिछले कुछ दशकों से अपने चरम पर है। अन्य अल्पसंख्यक धार्मिक समुदायों की अपेक्षा मुसलमान यहाँ बड़ी संख्या में

निवास करते हैं। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जनता के ध्रुवीकरण हेतु कई राजनीतिक पार्टियों ने मुसलमानों को खलनायक के रूप में प्रस्तुत कर समाज में विभेदीकरण उत्पन्न किया है। इन तमाम नीतियों व व्यवस्थाओं तथा विभिन्न मिथ्या आरोपों के कारण आम आदमी का जीवन किस हद तक प्रभावित हुआ है? उसकी मूल समस्याएँ इन नीतियों से किस प्रकार भिन्न है? वह समाज में किन चुनौतियों का सामना कर रहा है? तथा एक आम आदमी की जरूरतें क्या-क्या है? इन तमाम बातों के विश्लेषण करने हेतु इस शोध-विषय का चयन किया गया।

किसी भी समाज का निर्माण विभिन्न इकाइयों से मिलकर होता है। समाज की सुनिश्चित परिकल्पना हेतु विभिन्न इकाइयों के मध्य आपसी समन्वय व संतुलन आवश्यक होता है। परिवार, पड़ोस, विद्यालय, आजीविका के साधन, धर्म, भाषा, संस्कृति व सभ्यता आदि से मिलकर समाज की नींव खड़ी होती है। प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं। इन विशेषताओं के अध्ययन हेतु मुख्य रूप से सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक आदि दृष्टिकोण अपनाया जाता है। इसी को आधार बनाकर प्रस्तुत शोध विषय का विश्लेषण किया गया है। मुसलमानों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक स्थितियों की समीक्षा करते हुए मैंने पाया कि यह वर्ग सभी स्तरों पर अन्य समुदायों की अपेक्षा काफी उपेक्षित तथा पिछड़ा हुआ है। भारत का मुसलमान इस्लाम धर्म का अनुयायी होने के साथ-साथ यहाँ की मजबूत जातिवादी व्यवस्था से भी जकड़ा हुआ है। पूरे भारतीय मुसलमानों को अशराफ, अजलाफ व अरजाल जैसे तीन मोटे श्रेणियों में बाँटने के बावजूद यह विभाजन यहीं खत्म नहीं होता, बल्कि इसके अन्य रूप विभिन्न जातियों तथा उपजातियों के रूप में मौजूद हैं। मुस्लिम समाज में सिर्फ ऊँच-नीच की ही भावना नही पाई जाती, बल्कि अछूत की अवधारणा भी विद्यमान है। इन जातियों व उपजातियों का विभाजन का अधिकांशतः पेशों पर आधारित है। भारत के प्रत्येक प्रांत में अलग-अलग जातिगत संगठन पाए जाते हैं। आंतरिक विषमताओं के साथ-साथ धार्मिक आधार पर भी मुसलमानों के साथ भेदभाव किया जाता है। भारतीय समाज में मुसलमानों को बहुत सम्मानजनक स्थान प्राप्त नहीं है। शैक्षणिक रूप से भी इनकी स्थिति चिंताजनक है।

आधुनिक भारतीय इतिहास पर नजर डालें तो, विभाजन एक बड़ी दुर्घटना के रूप में दिखाई देता है। वैसे तो इस घटना की पूरी पृष्ठभूमि राजनीति से जुड़ी रही है, लेकिन इसका सामाजिक, आर्थिक स्तर पर बेहद गहरा प्रभाव देखा गया। सांप्रदायिक

गतिविधियों के बढ़ने के कारण समाज में नफरत, हिंसा व दंगों में निरंतर बढ़ोत्तरी के कारण समाज धार्मिक आधार पर संगठित व संकुचित होता गया। लोग अपने-अपने धार्मिक समुदायों के बीच रहने में ज्यादा सुरक्षित महसूस करने लगे। राजनीतिक पार्टियों ने भी सांप्रदायिक स्थितियों व घटनाओं को समाप्त करने हेतु कोई ठोस कदम नहीं उठाया। इसके विपरीत चुनाव जीतने हेतु धार्मिक व जातिगत संगठनों से मिलकर अपना राजनीतिक हित साधने लगे। चुनावी समीकरण बनाने व बिगाड़ने में धर्म व जाति के आधार पर लामबंदी शुरू हुई। 80 का दशक आते-आते देश में सांप्रदायिक व फासीवादी ताकतों का तेजी से उभार हुआ। परिणामस्वरूप मुसलमानों का विरोध भी किया जाने लगा, जो धीरे-धीरे नफरत, वैमनस्य और हिंसा में तब्दील होती गई। गाँव-गाँव में मुसलमानों के खिलाफ पर्चे बाँटे गए। बाद में सोशल मीडिया के माध्यम से इसमें और अधिक सक्रियता लायी गयी। मुसलमानों की एक ऐसी छवि गढ़ी गई कि समाज में उसे अपराधी, देशद्रोही, म्लेच्छ तथा विकास विरोधी के रूप में पहचान मिली है।

वर्तमान में सांप्रदायिकता भारतीय समाज के लिए एक बेहद संवेदनशील मुद्दा बन चुका है। मुसलमानों को पाकिस्तान समर्थक, आतंकवादी, देश विरोधी बताकर समाज में नफरत फैलाया गया है। सांप्रदायिक दंगे विभाजन से पूर्व भी होते रहे हैं, किंतु विभाजन के पश्चात् इनकी संख्या में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है। राजनीतिक पार्टियों ने भी तुष्टीकरण की नीति को अपनाते हुए मुसलमानों के लिए कोई ठोस सकारात्मक कदम नहीं उठाया है। भारतीय राजनीति में धीरे-धीरे मुसलमानों की भूमिका व नेतृत्व में भी कमी आई है। यही नहीं आर्थिक रूप से भी मुसलमान अन्य धार्मिक समुदायों की अपेक्षा काफी पिछड़ा हुआ है। भारत का मुसलमान अधिकांशतः परंपरागत व्यवसायों से जुड़ा रहा है। औद्योगिकरण के पश्चात् पारंपरिक पेशों का पतन शुरू हुआ, जिस कारण उन्हें बड़ी संख्या में बेरोजगारी का सामना करना पड़ा। भारत में मुसलमानों का लगभग 80% हिस्सा निम्न सामाजिक-आर्थिक वर्ग से संबंधित है। इसके अलावा भूमिहीनता भी इस वर्ग की एक बड़ी समस्या रही है। भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है, किंतु कृषि क्षेत्र में मुसलमानों की भागीदारी बेहद कम रही है। यही नहीं रहने हेतु पर्याप्त स्थान न होने के कारण वह न केवल भू-संकट से वरन् स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से भी जूझ रहा है। स्वास्थ्य, शिक्षा और जागरूकता की कमी के कारण मुसलमानों का एक बड़ा हिस्सा निम्न स्तर का जीवन जीने को विवश है।

भारत का मुसलमान धार्मिक स्तर पर तो इस्लाम की बुनियादी मान्यताओं को आत्मसात किए हुए हैं, किंतु सांस्कृतिक स्तर पर इसमें कई विविधताएँ मौजूद है। शिया और सुन्नी के रूप में इस्लाम धर्म के अनुयायी विश्वभर में फैले हुए हैं, लेकिन इन दोनों ही वर्गों में कई अन्य उपवर्ग भी मौजूद हैं। भारत में देवबंदी, बरेलवी, अहले हदीस, शिया आदि पंथ मुख्य रूप से देखे जा सकते हैं। इन सभी पंथों में धार्मिक मान्यताओं को लेकर थोड़े मतभेद हैं। इसके अलावा सूफी-संतों की एक समृद्ध परंपरा भारत में देखी जा सकती है। सांस्कृतिक स्तर पर भी मुसलमानों में कई विविधताएँ मौजूद हैं। चित्रकला, स्थापत्य कला, शिल्पकला व हस्तकला के अद्भुत नमूने मुसलमान कारीगरों द्वारा पेश किए गए हैं। खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन तथा व्यवहार में सांस्कृतिक आदान-प्रदान से भी विशिष्टता उत्पन्न हुई है। प्रत्येक प्रांत की भाषा व संस्कृति को आत्मसात करते हुए, भारत के विभिन्न धार्मिक समुदायों की भांति भारतीय मुसलमानों में भी विविधता देखी जा सकती है।

किसी भी समाज का अध्ययन करने से पूर्व वहाँ के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश को जानना बेहद आवश्यक होता है। इसलिए मुसलमानों के संबंध में अध्ययन करते हुए उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण इस शोध प्रबंध की अनिवार्यता थी। जिसका सैद्धान्तिक विश्लेषण करते हुए मुसलमानों की विशिष्टता, विभिन्नता तथा समानता को प्रस्तुत करते हुए हिंदी कथा जगत में मुसलमानों की उपस्थिति का विश्लेषण भी किया गया है। जिससे कि साहित्य जगत में मुसलमानों की उपस्थिति का पता लगाया जा सके। इस अध्ययन के दौरान मैंने पाया कि भारतेंदु व द्विवेदी युग में रचित कथा साहित्य में मुस्लिम समाज प्रसंगवश ही दिखाई देता है। वास्तव में इस युग के रचनाकारों का मुख्य उद्देश्य मुस्लिम समाज का चित्रण करना नहीं रहा है। प्रेमचंद ने मुस्लिम समाज के प्रति थोड़ी सहानुभूति जरूर व्यक्त की है। उनके कहानियों तथा उपन्यासों में मुस्लिम समाज की वास्तविक अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। प्रेमचंद के समकालीन अन्य रचनाकारों ने भी कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार मुस्लिम समाज को दर्शाया है।

स्वतंत्रता के पश्चात् सांप्रदायिक दंगों व विभाजन को आधार बनाकर कई महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखे गए, किंतु इन उपन्यासों में भारतीय मुसलमानों की उस पीड़ा का चित्रण नही किया गया है, जिसको झेलने के लिए वह अभिशप्त हो चुका है। भारतीय मुसलमानों के बीच फैली असमानता, गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, आर्थिक संकट,

स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं की ओर हिंदी लेखकों में सर्वप्रथम गुलशेर खां शानी ने व्यवस्थित रूप से पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया। इसके पश्चात् कई बड़े रचनाकारों ने हिंदी पाठकों के बीच मुस्लिम समाज को प्रस्तुत किया। इन रचनाकारों में मेहरुन्निसा परवेज, बदिउज्जमाँ, अब्दुल बिस्मिल्लाह, असगर वजाहत, मंजूर एहतेशाम, नासिरा शर्मा, भगवानदास मोरवाल, अनवर सुहेल आदि प्रमुख रहे हैं। मुस्लिम समाज को विषय-वस्तु के रूप में प्रस्तुत करने को लेकर हिंदी चिंतकों के बीच सामान्य चर्चा रही है कि अधिकांश मुस्लिम रचनाकारों द्वारा ही मुस्लिम समाज का चित्रण किया गया है, जबकि हिंदू लेखकों ने मुसलमानों की समस्याओं के बारे में कम ही लिखा है।

इस शोध-प्रबंध में मैंने हिंदी कथा साहित्य में अभिव्यक्त मुस्लिम समाज का विश्लेषण करते हुए उन सभी रचनाकारों की विशेषताओं को भी रेखांकित किया है। जिनकी रचनाओं में मुस्लिम समाज के सन्दर्भ में गहराई से चिन्तन किया गया है। गुलशेर खां शानी ने बस्तर में निवास करने वाले निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज का चित्रण किया है। उन्होंने मुसलमानों के बीच व्याप्त जातिगत असमानता, आर्थिक चुनौतियाँ, ग्रामीण व आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, उनके जीवन-संघर्ष, उनमें फैले अंधविश्वास आदि को बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है। जबकि राही मासूम रजा ने मुसलमानों के बीच व्याप्त जातिगत और समानता की भावना के साथ-साथ शिया सुन्नी के भेद, उनके आपसी मतभेद, सांप्रदायिकता, नफरत, दंगे, राजनीतिक दलों द्वारा मुसलमानों की उपेक्षा, धार्मिक मान्यताएँ तथा सांस्कृतिक विशेषताओं को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। मेहरुन्निशा परवेज ने मुस्लिम स्त्रियों की समस्याओं पर विशेष रुचि दिखाई है। इसी प्रकार नासिरा शर्मा ने भी मुस्लिम स्त्रियों को केंद्र में रखकर अपने कथा साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार की है। नासिरा की विशेषता यह है कि उन्होंने न केवल भारतीय समुदाय की स्त्रियों को अपनी रचनाओं में जगह दी है, बल्कि मध्य एशिया के देशों की स्त्रियों की भी समस्याओं, वहाँ के कानूनों, उनकी मान्यताओं और रहन-सहन को हिंदी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

उच्चवर्गीय मुसलमानों के रहन-सहन, जमीदारी प्रथा समाप्त होने के बाद उनके समक्ष उत्पन्न आर्थिक संकट, रोजगार की समस्या, विभाजन के पश्चात् बदलते हुए राजनीतिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य में उत्पन्न चुनौतियाँ, सांप्रदायिकता आदि को असगर वजाहत की रचनाओं में विस्तार से देखा जा सकता है। जबकि निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज को साहित्य के केंद्र में लाने में अब्दुल बिस्मिल्लाह की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

शानी के पश्चात् बड़े फलक पर निम्नवर्गीय मुसलमानों की समस्याओं को उठाने वाले रचनाकारों में हमें अब्दुल बिस्मिल्लाह ही दिखाई देते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में निवास करने वाले मुसलमान सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से बेहद कमजोर हैं। इस क्षेत्र के अधिकांश मुसलमान हस्तशिल्प से जुड़े हुए हैं। मशीनीकरण, बाजारीकरण के दौर में छोटे कारीगरों व श्रमिकों को सर्वाधिक नुकसान उठाना पड़ा है। अब्दुल्ल बिस्मिल्लाह ने बनारस, मिर्जापुर, इलाहाबाद के क्षेत्रों में रहने वाले मुसलमानों की आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक चुनौतियों को बारीकी से प्रस्तुत किया है।

स्वतंत्रता के पश्चात् देश में सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के बीच एक आम मुसलमान की इच्छा, आकांक्षा, आवश्यकता तथा उसकी विशेषताओं को दरकिनार करते हुए उसे एक खास पहचान देकर उलझाया जा रहा है। हिंदी कथा साहित्य में मंजूर एहतेशाम एक ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने इस विषमता को न सिर्फ महसूस किया, बल्कि पूरे हिंदी जगत को उस पर सोचने को विवश किया है। मध्यप्रदेश के भोपाल शहर में एक साधारण से परिवार में जन्म लेने वाले मंजूर एहतेशाम 80 के दशक में तेजी से बदलते हुए भारतीय परिवेश को मुस्लिम समाज के परिप्रेक्ष्य में 'सूखा बरगद' उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। बेहद परिपक्वता के साथ लिखा गया यह उपन्यास लेखकों-आलोचकों के मध्य चर्चा का केंद्र रहा है। उपन्यास का शीर्षक, विषय-वस्तु, पात्र, घटनाएँ सभी का विश्लेषण आकर्षण का केंद्र रहा है।

बदलते परिवेश के साथ मुसलमानों के जीवन में भी व्यापक बदलाव आया है। अन्य समुदायों की भांति मुसलमानों के बीच भी एक खास किस्म का मध्य वर्ग उभर कर सामने आया है। विभाजन के पश्चात् देश में तेजी से बदलती हुई राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियों के कारण समाज में भी व्यापक बदलाव हुए है। औद्योगिक विस्तार के साथ-साथ शहरों की ओर पलायन में भी बढ़ोत्तरी हुई है। देश में तेजी से बढ़ती जनसंख्या ने भी कई प्राकृतिक, भौगोलिक, राजनीतिक व भौतिक संसाधनों के समक्ष चुनौती खड़ी कर दी है। परिणामस्वरूप पारिवारिक विखंडन, रोजगार का संकट, मानवीय मूल्यों में कमी, अकेलापन, घुटन, निराशा और असंतोष आदि समस्याएँ उभर कर सामने आयी हैं। इन सभी समस्याओं को मुस्लिम समाज के केंद्र में रखकर लिखने वाले लेखकों में मंजूर एहतेशाम सर्व प्रमुख रहे हैं। समाज की बदलती परिस्थितियों के बीच शहरों में निवास करने वाले मुसलमानों के समक्ष उत्पन्न संकट, उनकी समस्याएँ, चुनौतियाँ तथा बदलते संबंधों को मंजूर ने बेहद मार्मिकता के साथ चित्रित किया है।

शहरों में पारिवारिक विघटन एक आम समस्या बन चुकी है। जिसे मंजूर ने कुछ दिन और, दास्तान-ए-लापता, बशारत मंजिल तथा मदरसा उपन्यास में दिखाया है। अंतर्जातीय विवाह की समस्या को मदरसा उपन्यास में देखा जा सकता है। समाज में बढ़ते हुए आर्थिक दबाव के कारण पारिवारिक संबंधों में कमी आई है। मानवीय संबंधों में आई कमी को मंजूर एहतेशाम ने बड़ी शिद्दत से महसूस किया है। तमाम विसंगतियों की ओर संकेत करते हुए लेखक ने मनुष्य के आंतरिक सुख तथा प्रेमपूर्ण संबंधों को महत्त्वपूर्ण माना है।

समाज में फैले नफरत, लोभ, महत्वाकांक्षा, संसाधनों का संचय, भागदौड़ भरी जिंदगी के बीच जीवन के वास्तविक सुख व आनंद में निरंतर कमी आई है। प्रत्येक व्यक्ति भौतिक सुख-संसाधनों के पीछे तेजी से भाग रहा है। दास्तान-ए-लापता उपन्यास में जमीर अहमद खान एक ऐसा व्यक्ति है, जो जीवन के इस रेस का हिस्सा नहीं बन पाता। वह समाज में अपने अस्तित्व की तलाश करता है। अंग्रेजी में जब इस उपन्यास का अनुवाद होता है तो इसे 'ए टेल ऑफ मिसिंग मैन' नाम दिया जाता है। एक ऐसा व्यक्ति जो गुम हो गया है। सवाल यह है कि वह गुम क्यों हो गया है? क्योंकि वह झूठ नहीं बोलता, बेईमानी नहीं कर सकता, इसलिए वह इस बाजारवादी दौर का हिस्सा नही बन पाता। वह खुद को पिछड़ा हुआ महसूस करने लगता है।

भारतीय राजनीति में मुसलमानों की बड़ी भागीदारी रही है। चाहे सन् 1857 की क्रांति हो या फिर अंग्रेजी हुकुमत के खिलाफ स्वाधीनता आंदोलन सबमें मुसलमानों की बड़ी भागीदारी रही है। बशारत मंजिल उपन्यास के माध्यम से मंजूर ने स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान मुसलमानों की भूमिका को स्पष्ट किया है। मुसलमानों के बीच गाँधी जी की लोकप्रियता को भी दिखाया गया है। भारत विभाजन का जिम्मेदार मुसलमानों को ठहराया जाता है। मंजूर ने इस बात का खंडन करते हुए उपन्यास में विभाजन विरोधी मुस्लिम स्वतंत्रता सेनानियों की याद दिलाई है। आजादी के बाद भारतीय राजनीति से धीरे-धीरे मुसलमानों की सहभागिता कम हुई है। सांप्रदायिक ताकतों के उभार के कारण मुस्लिम उम्मीदवारों को पार्टियों द्वारा नजरअंदाज किया जाता है। केवल उन्हीं स्थानों पर मुस्लिम उम्मीदवारों को प्रत्याशी बनाया जाता है, जहाँ पर मुस्लिम मतों की संख्या अधिक होती है। राजनीतिक दुष्प्रचार के कारण भी मुसलमानों की सामाजिक उपेक्षा अधिक होती है। साथ ही नेताओं के चरित्र में भी परिवर्तन देखा जा सकता है। वह जनता

के सार्वजनिक हितों से दूरी बनाये हुए है। सूखा बरगद उपन्यास में इन परिस्थितियों को व्यक्त किया गया है। सुहेल भारतीय समाज में मुसलमानों को उनके धार्मिक पहचान से इंगित किए जाने को लेकर दुखी है। वह बढ़ती हुई सांप्रदायिकता को सामाजिक समरसता के लिए खतरनाक मानता है। अब्दुल वहीद जो कि इस उपन्यास में एक आदर्शवादी पात्र है, वे अपने प्रगतिशील विचारों से सुहेल और रशीदा को धार्मिक रूढ़ियों व सांप्रदायिक विचारों से दूर रखते हुए, उन्हें आधुनिक शिक्षा से जोड़ते हैं। साथ ही अपने और देश के बेहतर भविष्य की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित भी करते हैं। इस उपन्यास में मुसलमानों की राजनीतिक व सामाजिक उपेक्षा के प्रति भी चिंता व्यक्त की गयी है।

मंजूर ने वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ देश में बौद्धिक उन्नति पर भी जोर दिया है। उन्होंने मुस्लिम समाज में व्याप्त धार्मिक रूढ़ियों व मान्यताओं का चित्रण करते हुए वर्तमान में उनमें संशोधन की आवश्यकता महसूस की है। बदलते हुए परिवेश के साथ इन पुरातन मान्यताओं पर पुनर्विचार करते हुए, मुसलमानों की उन्नति हेतु आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था से जुड़ने पर बल दिया है। मंजूर ने एक सजग रचनाकार की भांति मुस्लिम समाज में व्याप्त गतिरोध को समाप्त कर प्रगतिशील दृष्टि अपनाने पर बल दिया है। उन्होंने सूखा बरगद तथा बशारत मंजिल उपन्यास में इन धार्मिक मान्यताओं व रूढ़ियों का विरोध किया है। उनकी कहानी 'जिक्रे खलील उर्फ दास्तान-ए-फाख्ता' में बकरीद पर कुर्बानी करने की परंपरा को रुढ़िवादी बताया है। साथ ही वर्तमान में कुर्बानी के नाम पर फैले पाखंड को भी दिखाया है। इसी प्रकार तसबीह कहानी में बदलते परिवेश के साथ धार्मिक मान्यताओं में शिथिलता लाने की आवश्यकता महसूस की है।

मुसलमानों के सांस्कृतिक स्वरूप को भी उनके कथा साहित्य में विस्तार से जगह मिली है। मंजूर ने निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज में के प्रति विशेष सहानुभूति रखी है। शहरों की तंग गलियों वाले मुहल्लों में विभिन्न संसाधनों के अभाव में जीवन व्यतीत करने वाले मुस्लिम समाज की तरफ कम ही रचनाकारों की नजर पड़ी है। शहरों में स्थिति मुस्लिम मुहल्ले तमाम मूलभूत सुविधाओं से वंचित रहते हैं। इन मुहल्लों में रहने वाले एक उपेक्षित जीवन व्यतीत करने पर विवश हैं। इनकी समस्याएँ इतनी जटिल हैं जिसका आकलन करने हेतु बेहद धैर्य और सहानुभूति की आवश्यकता होती है। सूखा बरगद उपन्यास में मंजूर ने इन गली-मुहल्लों में निवास करने वाले लोगों की समस्याओं

को रेखांकित किया है। बावड़ी, चंदा, तमाशा तथा एक पारंपरिक समस्या प्रधान कहानी में भी इस वर्ग की समस्याओं को देखा जा सकता है। बावड़ी तथा चंदा कहानी में मुसलमानों की सरकारी तथा प्रशासनिक उपेक्षा तथा उनके द्वारा किये जाने वाले सौतेले व्यवहार को दिखाया गया है।

उच्चवर्गीय मुस्लिम समाज के रहन-सहन व उनके जीवन-शैली को पहर ढलते उपन्यास में देखा जा सकता है। बदलते हुए परिवेश के साथ उत्पन्न आर्थिक चुनौतियों पर भी मंजूर ने चिंता व्यक्त की है। उनके पूरे कथा साहित्य में आर्थिक तंगी व रोजगार के संकट को एक बड़े मुद्दे के रूप में चित्रित किया गया है। पारंपरिक व्यवसायों के विनाश तथा मशीनीकरण के युग में लघु एवं कुटीर उद्योग को हुई हानि को तमाशा तथा एक पारंपरिक समस्या प्रधान कहानी में देखा जा सकता है। शिक्षित तथा अशिक्षित मुस्लिम स्त्रियों के समक्ष रोजगार के संकट को सूखा बरगद उपन्यास में सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है।

मंजूर ने स्वतंत्रता के पश्चात् तेजी से बदल उभरते हुए मध्यवर्ग को अपने कथा साहित्य में विशेष स्थान दिया है। देश के बदलते हुए आर्थिक परिदृश्य, भूमंडलीकरण, उदारीकरण व पूँजीवाद के बढ़ते प्रभाव से मुसलमानों में भी मध्यवर्ग का विस्तार हुआ है। यह वर्ग शहरों की ओर तेजी से पलायन कर रहा है। शिक्षा तथा नौकरी के लिए संघर्षरत है। उसके विचारों में बौद्धिकता का समावेश है। वह धार्मिक रूढ़ियों तथा मान्यताओं से तेजी से कट रहा है। वह बदलते हुए दौर में धार्मिक शिक्षण संस्थानों की जगह आधुनिक शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों के महत्त्व से परिचित है। समय के साथ लोगों की आवश्यकताएँ बदली है। लोग जान चुके है कि बदलती परिस्थितियों के साथ समायोजित करने के लिए हमें पुरातन रूढ़िवादी मान्यताओं से बाहर निकलकर नए जीवन मूल्यों को आत्मसात करना होगा। मंजूर के कथा साहित्य में इन सभी विचारों का समावेश दिखाई देता है।

हिंदी कथा साहित्य में मंजूर एहतेशाम की ख्याति उनके उपन्यास सूखा बरगद के माध्यम से अधिक मिली है। किंतु उनके सभी उपन्यास और कहानियाँ अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं। उनके लेखन का विषय बेहद प्रासंगिक, संवेदनशील, आवश्यक तथा विचारणीय है। इस देश में मुसलमान समाज का एक बड़ा हिस्सा रहा है। वर्तमान में राजनीतिक लाभ के लिए इस वर्ग को विभिन्न आरोपों-प्रत्यारोपों के माध्यम से एक

निश्चित ढांचे में बाँधकर खास पहचान दी जा रही है। इस कार्य में मीडिया की बड़ी भूमिका देखी जा सकती है। मीडिया द्वारा मुसलमान के नाम पर दाढ़ी,टोपी, पजामा-कुर्ता तथा बुरका पहने हुए, धार्मिक रूप से कट्टर, पिछड़ा तथा समाज विरोधी छवि पेश किया जा रहा है। जबकि राजनीति तथा मीडिया द्वारा निर्मित इस छवि से अलग मुसलमानों का एक बड़ा हिस्सा शहरों में मध्यवर्ग के रूप में भी विद्यमान है। ये मुसलमान राजनीति तथा मीडिया से दूर हैं। इनकी समस्याएँ तथा चुनौतियाँ अलग हैं। हिंदी लेखकों ने मुसलमानों की विभिन्न समस्याओं को रेखांकित किया है किन्तु यह वर्ग साहित्य में भी लगभग उपेक्षित ही रहा है। हालाँकि मध्यवर्ग को साहित्य में व्यापक जगह मिली है। किन्तु इस वर्ग की चुनौतियों को मुस्लिम समाज के परिप्रेक्ष्य में कम ही प्रस्तुत किया गया है। यह वर्ग मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं से तो जूझ ही रहा है साथ ही मुसलमान होने का दोहरा अभिशाप झेल रहा है। ऐसे में मंजूर एहतेशाम एक ऐसे रचनाकार के रूप में सामने आते हैं, जो इस वर्ग को साहित्य के केंद्र में लाने का प्रयास करते हैं। मंजूर की रचनाओं में मुस्लिम समाज की समस्याओं को व्यापक स्तर पर देखा जा सकता है। इन्होंने भारतीय मुसलमानों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, भाषिक, सांप्रदायिक तथा सांस्कृतिक आदि विभिन्न पहलुओं को अपने कथा साहित्य में शामिल किया है।

साहित्य में जितना महत्त्व विचारों का होता है, उससे कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण स्थान भाषा को प्राप्त है। कहन की शैली ही एक सामान्य सी उक्ति को साहित्य की श्रेणी में खड़ी कर सकती है। भाषाई कौशल साहित्य का प्राण होता है। साहित्य लेखन की विभिन्न शैलियाँ होती हैं। प्रत्येक साहित्यकार इन विभिन्न शैलियों तथा अपने भाषिक क्षमता के आधार पर शिल्प का निर्माण करता है। साहित्यकार की यह निजी विशेषता होती है कि वह अपने विचारों को कितने प्रभावी रूप में पाठक के समक्ष प्रस्तुत कर पाता है। मंजूर की भाषिक क्षमता बेजोड़ है। उन्होंने विभिन्न शैलियों का प्रयोग करते हुए अपने विषय-वस्तु को आकर्षक तथा प्रभावी बनाया है। उनके पास हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी के शब्दों का एक व्यापक शब्द भंडार है। कथ्य तथा पात्र के अनुसार भाषा का चयन उनके साहित्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

इस शोध-प्रबंध में मुस्लिम जीवन यथार्थ के एक व्यापक और संवेदनशील समस्या के रूप में चिन्तन के केंद्र में रखते हुए मंजूर एहतेशाम के कथा साहित्य के माध्यम से विश्लेषण किया गया है। मंजूर एहतेशाम के लेखकीय व्यक्तित्व को प्रस्तुत करते हुए,

भारतीय मुसलमानों की समस्याओं, स्थितियों तथा विशेषताओं का सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है। इस शोध-प्रबंध में हिंदी कथा साहित्य में मुस्लिम समाज की उपस्थिति तथा मुस्लिम समाज पर लिखने वाले रचनाकारों की विशेषताओं को भी रेखांकित किया गया है। मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों तथा कहानियों का अलग-अलग अध्यायों में विश्लेषण करते हुए उनकी विशेषताओं को भी प्रस्तुत किया गया है। मंजूर एहतेशाम की भाषिक क्षमता और कौशल को भी इस शोध-प्रबंध में शामिल करते हुए उनके कथा साहित्य का सांगोपांग विवेचन-विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ-

1. मंज़ूर एहतेशाम, कुछ दिन और, राजकमल प्र० नई दिल्ली,पहला संस्करण 2015
2. मंज़ूर एहतेशाम, दास्तान-ए-लापता, राजकमल प्र० नई दिल्ली पहला संस्करण 2010
3. मंज़ूर एहतेशाम, पहर ढलते, राजकमल प्र० नई दिल्ली,पहला सं०2007
4. मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं० 2012
5. मंजूर एहतेशाम, मदरसा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं० 2011
6. मंज़ूर एहतेशाम, सम्पूर्ण कहानियाँ, राजकमल प्र० नई दिल्ली,पहला संस्करण 2013
7. मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय सं० 2014

सहायक ग्रन्थ-

1. अनुज शर्मा, इस्लामिक संस्कृति एवं विचार, विश्व भारती पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह, जहरवाद, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1987
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह, झीनी झीनी बीनी चदरिया, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, छठी आवृत्ति 2014

4. अब्दुल बिस्मिल्लाह, बरखा रचाई, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009
5. अब्दुल बिस्मिल्लाह, ताकि सनद रहे, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण 2014
6. अब्दुल बिस्मिल्लाह, मुखड़ा क्या देखे, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम सं० 1996
7. अब्दुल बिस्मिल्लाह, रैन बसेरा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 1993
8. अब्दुल बिस्मिल्लाह, शादी का जोकर, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम सं० 2013
9. अली अनवर, मसावात की जंग, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001
10. असगर वजाहत, डेमोक्रेशिया, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण 2013
11. असगर वजाहत, मैं हिन्दू हूँ, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण 2006
12. असगर वजाहत, सात आसमान, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996
13. इरफ़ान हबीब, इतिहास और विचारधारा : अनुवादक रमेश रावत, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, प्रथम हिंदी संस्करण 2005
14. एस एल दोषी, आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धांत रावत पब्लिकेशन जयपुर संस्करण 2016
15. कमलनयन कावरा, भूमंडलीकरण विचार, नीतियाँ और विकल्प, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली संस्करण 2018
16. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, राजपाल एंड संस दिल्ली, संस्करण 2016

17. कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पहला सं० 2015

18. गुलशेर खां शानी, काला जल, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, नई दिल्ली, संस्करण 1981

19. गुलशेर खां शानी, चर्चित कहानियाँ, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम सं० 1995

20. गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति 2010

21. ज्यां द्रेज, अमर्त्य सेन, भारत और उसके विरोधाभास, अनुवादक अशोक कुमार राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2018

22. डॉ० राहुल मिश्र,आठवें दशक के बाद हिन्दी कथा साहित्य, ग्रन्थ केतन, दिल्ली, प्रथम सं० 2009

23. दूधनाथ सिंह, आखिरी कलाम, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2013

24. नामदेव, भारतीय मुसलमान : हिंदी उपन्यासों के आईने में, अनामिका पब्लिकेशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009

25. नामवर सिंह, कहानी नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, संस्करण 2012

26. नासिरा शर्मा, अजनबी जजीरा, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, प्रथम संस्करण 2012

27. नासिरा शर्मा, पत्थर गली, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण 1986

28. नासिरा शर्मा,राष्ट्र और मुसलमान : किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016

29. नासिरा शर्मा, सबीना के चालीस चोर, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण 1997

30. प्रेमचन्द, कर्मभूमि, सरस्वती प्रेस बनारस

31. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, प्रकाशन-शारदा निकेतन, वाराणसी द्वितीय संस्करण 1982

32. भागीरथ मिश्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी नवम सं० 2018

33. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1973

34. मधुरेश, हिंदी कहानी का विकास सुमित प्रकाशन संस्करण 2016

35. मुशीरुल हसन, भारत में राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक राजनीति, अनुवादक-गोपाल प्रधान, ग्रन्थ शिल्पी प्रा० लि० दिल्ली, प्रथम सं० 2008

36. मेहरुन्निसा परवेज, गलत पुरुष, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस नई दिल्ली, प्रथम सं०1978

37. मेहरुन्निसा परवेज, टहनियों पर धूप, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1977

38. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला, तृतीय सं० 2006

39. यशपाल, झूठा सच, भाग दो, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद

40. रफीक जकारिया,सरदार पटेल तथा भारतीय मुसलमान, अनुवादक विश्वनाथ सचदेव, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पहला संस्करण 1998

41. रविंद्र कुमार, आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, अनुवादक-आदित्य नारायण सिंह, ग्रंथ शिल्पी नई दिल्ली प्रथम हिंदी संस्करण 1997
42. रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि-1, सहित्य सेवा प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 2009
43. रामचंद्र तिवारी, हिन्दी का गद्य-साहित्य, विश्विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, अष्टम संस्करण 2012
44. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2017
45. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय: लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण 2017
46. रामविलास शर्मा, प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, तेरहवां संस्करण 2016
47. रामस्वरूप चतुर्वेदी हिंदी गद्य: विन्यास और विकास लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 1996
48. राही मासूम रजा, असंतोष के दिन, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986
49. राही मासूम रजा, आधा गाँव, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, उन्नीसवां संस्करण 2017
50. राही मासूम रजा, ओस की बूंद, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1970
51. राही मासूम रजा, टोपी शुक्ला, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1984
52. विजयदेव झारी, हिंदी कहानी में इस्लाम, राष्ट्रिय हिंदी साहित्य परिषद,दिल्ली प्रथम संस्करण 2013
53. विजयबहादुर सिंह, उपन्यास : समय और संवेदना, वाणी प्रकाशन दिल्ली, प्रथम सं० 2007

54. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली संस्करण 2008
55. विपिनचन्द्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद भारत हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, संस्करण 2009
56. वीरभारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2006
57. श्यामसुन्दरदास बी०ए०, साहित्यालोचन प्रकाशक रामचंद्र वर्म्मा साहित्यकार रत्न माला कार्यालय काशी, सं०-1988
58. शेखर बंदोपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक, आधुनिक भारत का इतिहास, अनुवादक नरेश नदीम ओरियंट ब्लैकस्वान प्रा०लि० हैदराबाद, संस्करण 2013
59. सच्चर कमेटी रिपोर्ट, जस्टिस राजिंदर सच्चर 2006
60. सुभाष चंद्र, सांप्रदायिकता, साहित्य उपक्रम, संस्करण 2012
61. सुवास कुमार, गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम, प्रथम सं० 2010
62. सं० अभय कुमार दुबे, भारत में राजनीति : कल और आज, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली तीसरा सं० 2010
63. सं० इम्तियाज अहमद,भारत के मुसलमानों में जाति व्यवस्था और सामाजिक स्तरीकरण: ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, प्रथम हिंदी संस्करण 2003
64. सं० गरिमा श्रीवास्तव, उपन्यास का समाजशास्त्र- संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं० 2006
65. सं० गिरिराजशरण, साम्प्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 1986
66. सं० नंदकिशोर नवल, साहित्य का उद्येश्य (लेख), प्रेमचन्द, पुस्तक- हिन्दी साहित्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं० 2003
67. सं० नन्दकिशोर नवल, हिन्दी साहित्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली,संस्करण 2003

68. सं० नरेंद्र मोहन, विभाजन भारतीय भाषाऔं की कहानियाँ, खण्ड एक, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पहला संस्करण 2009

69. सं० मनोज सिन्हा, समकालीन भारत एक परिचय, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड हैदराबाद, पहला संस्करण 2012

शब्द कोश-

1. प्रधान सं० रामप्रकाश सक्सेना, वर्धा हिंदी शब्दकोश 2013 महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा
2. हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली, अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण

पत्र-पत्रिकाएँ-

1. आलोचना पत्रिका, संपादक नंददुलारे वाजपेई, वर्ष 5 अंक 1 जनवरी 1957
2. पक्षधर (त्रैमासिक) पत्रिका, सं० विनोद तिवारी, वर्ष : 04, अंक : 09
3. प्रतिमान पत्रिका, प्रधान संपादक- अभय कुमार दुबे, संपादक- आदित्य निगम, रविकांत, राकेश पाण्डेय, वाणी प्र० नई दिल्ली, जनवरी-जून, 2014, वर्ष 2 खंड 2 अंक 1
4. हंस पत्रिका : सं० राजेन्द्र यादव, वर्ष 1, अंक 1, अगस्त 2003

वेबसाइट-

1. manjoorehtesham.revolvy.com
2. http://heritagetimes.in/mishra-on-shah/ date- 17/10/2019

परिशिष्ट

तालिका 4.1 : जनसंख्या के अनुपात में आयु समूहों में साक्षरता दर- 2004-05

आयु वर्ग	हिन्दू			मुस्लिम	अन्य अल्पसंख्यक
	सामान्य	अन्य पिछड़ा वर्ग	अनु० जाति-जनजाति		
6-13 वर्ष	90.2	80.8	74.7	74.6	88.5
14-15 वर्ष	95.7	87.5	80.0	79.5	91.9
16-17 वर्ष	95.0	85.2	78.6	75.5	91.3
18-22 वर्ष	91.4	76.9	65.0	70.5	85.8
23 वर्ष और ऊपर	74.0	50.6	36.5	46.1	67.0
कुल	80.5	63.4	52.7	59.9	75.2

[1]

तालिका- 8 : मुसलिम जातियों में शैक्षिक आकांक्षाएँ

जाति	प्राथमिक	माध्यमिक	महाविद्यालय	वृत्तिक	तकनिकी	अनिश्चित	योग (प्रतिदर्श =155)
उच्च	18.9	47.3	17.5	8.1	4.1	4.1	100 (74)
उच्च-मध्य	38.6	32.3	6.5	12.9	--	9.7	100 (31)
निम्न-मध्य	5.9	29.4	23.6	5.9	17.6	17.6	100 (17)
निम्न	33.3	36.4	18.0	--	--	12.3	100 (33)

[1]

[1] सच्चर कमेटी रिपोर्ट : तालिका 4.1, पृष्ठ सं० 49

सारणी 5: धार्मिक समूहों का रोजगार के प्रकार के अनुसार प्रतिशत 1999-2000

	मुस्लिम	हिन्दू	ईसाई	अन्य सभी धामिक समूह
नियमित वेतन वाला-रोजगार	27	43	54	40
स्वरोजगार	52	37	22	39
अनियमित मजदूरी	15	14	13	14

स्रोत : NSSO रिपोर्ट नं०468 [2]

सारणी 5.11- असंगठित क्षेत्र के मुस्लिम कामगार और विनिर्माण क्षेत्र में विकास

उद्योग समूह	मूल्य संवर्धन की विकास दर		रोजगार की विकास दर		श्रम उत्पादकता की विकास दर	
	1989-95	1994-01	1989-95	1994-01	1989-95	1994-01
तम्बाकू उत्पाद	-4.3 (7.1)	5.0 (7.7)	-8.8 (2.1)	7.7 (-1.9)	4.1 (5.1)	-2.7 (9.6)
कपड़ा	-2.9 (6.4)	6.3 (2.9)	-2.4 (-0.3)	-0.2 (0.2)	-0.5 (6.8)	6.4 (2.7)
पोशाक	6.2 (27.0)	14.4 (2.2)	1.5 (17.3)	14.4 (3.7)	4.7 (9.7)	-0.1 (-1.5)
मोटर वाहन एवं पुर्जे	-1.8 (9.1)	16.5 (11.3)	3.0 (3.5)	9.4 (4.3)	-4.8 (5.6)	7.1 (7.0)
इलेक्ट्रिकल मशीनरी	NA (9.7)	21.7(5.3)	-6.3 (2.5)	18.6 (-0.8)	NA (7.2)	3.1 (6.1)
कुल	-1.0 (8.3)	6.9 (6.9)	-1.7 (2.1)	2.2 (0.7)	0.8 (6.1)	4.8 (6.2)

नोट : कोष्ठक के आंकडे संगठित क्षेत्र में विकास दर को दर्शाते हैं। [3]

स्रोत : उन्नी एवं रानी (2004)

[1] सं० इम्तियाज अहमद, भारत के मुसलमानों में जाति व्यवस्था और सामाजिक स्तरीकरण, पृष्ठ सं० 216

[2] सं० राजेन्द्र यादव, हंस पत्रिका, वर्ष 1, अंक 1, अगस्त 2003, सारणी 5, पृष्ठ संख्या- 43

[3] सच्चर कमेटी रिपोर्ट, पृष्ठ- 93

युक्त प्रान्त के प्रत्येक शहर से मुस्लिम प्रतिनिधियों की कुल संख्या,1886-1901

शहर	संख्या	कुल मुस्लिम प्रतिनिधियों का प्रतिशत	शहर	संख्या	कुल मुस्लिम प्रतिनिधियों का प्रतिशत
देहरादून	1	2	इलाहाबाद	76	13
सहारनपुर	1	2	आजमगढ़	5	8
मुजफ्फरनगर	2	3	मिर्जापुर	6	1
मेरठ	6	1	बनारस	24	1
अलीगढ	19	3	गाजीपुर	4	7
नैनीताल	2	3	बस्ती	1	2
अल्मोड़ा	3	5	लखनऊ	355	60
मुरादाबाद	5	8	बाराबंकी	1	2
बरेली	5	8	सीतापुर	1	2
शाहजहापुर	7	1	खीरी	4	7
आगरा	19	3	फैजाबाद	4	7
फरुखाबाद	11	2	गोंडा	2	3
कानपुर	24	4	रायबरेली	1	2
फतेहपुर	1	2	प्रतापगढ़	5	8
बाँदा	1	2			

[1]

[1] मुशीरुल हसन, भारत में राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक राजनीति, पृ० संख्या- 47

जुदागाना इंतखाब के नतीजे

प्रान्त	कुल सीटें	कुल मुस्लिम सीटें	मुस्लिम लीग द्वारा 1937 में जीती गयी सीटें	मुस्लिम लीग द्वारा 1946 में जीती गयी सीटें
1	2	3	4	5
असम	108	34	10	31
बंगाल	250	119	39	114
बिहार	152	40	0	34
बंबई	175	30	18	30
सेन्ट्रल प्रोविंस	112	14	5	13
मद्रास	215	29	10	29
नार्थ वेस्ट फ्रंटियर	50	36	0	17
उड़ीसा	60	4	0	4
पंजाब	175	86	1	75
सिंध	60	34	0	28
यूनाईटेड प्रोविंस	228	66	26	54
कुल जोड़	1585	491	109	427

[1]

तालिका-1 1971-2009 के बीच राष्ट्रीय चुनावों में मुसलमानों का मतदान व्यवहार

पार्टी	1971	1996	1998	1999	2004	2009
कांग्रेस	59	36	32	40	36	38
भाजपा/जनसंघ	----	2	6	7	7	4
बसपा	लागू नहीं	1	2	2	3	6
वामदल	17	15	7	10	9	11
सपा	लागू नहीं	8	24	10	15	6
अन्य	24	38	29	31	30	35

[2]

[1] अली अनवर, मसावात की जंग, पृष्ठ संख्या-115

[2] सं० अभय कुमार दुबे, प्रतिमान पत्रिका, जनवरी-जून, 2014, वर्ष 2 खंड 2 अंक 1, पृष्ठ संख्या- 150

ISSN No. 2348-6163

साहित्य-सेतु

अप्रैल-जून, 2019

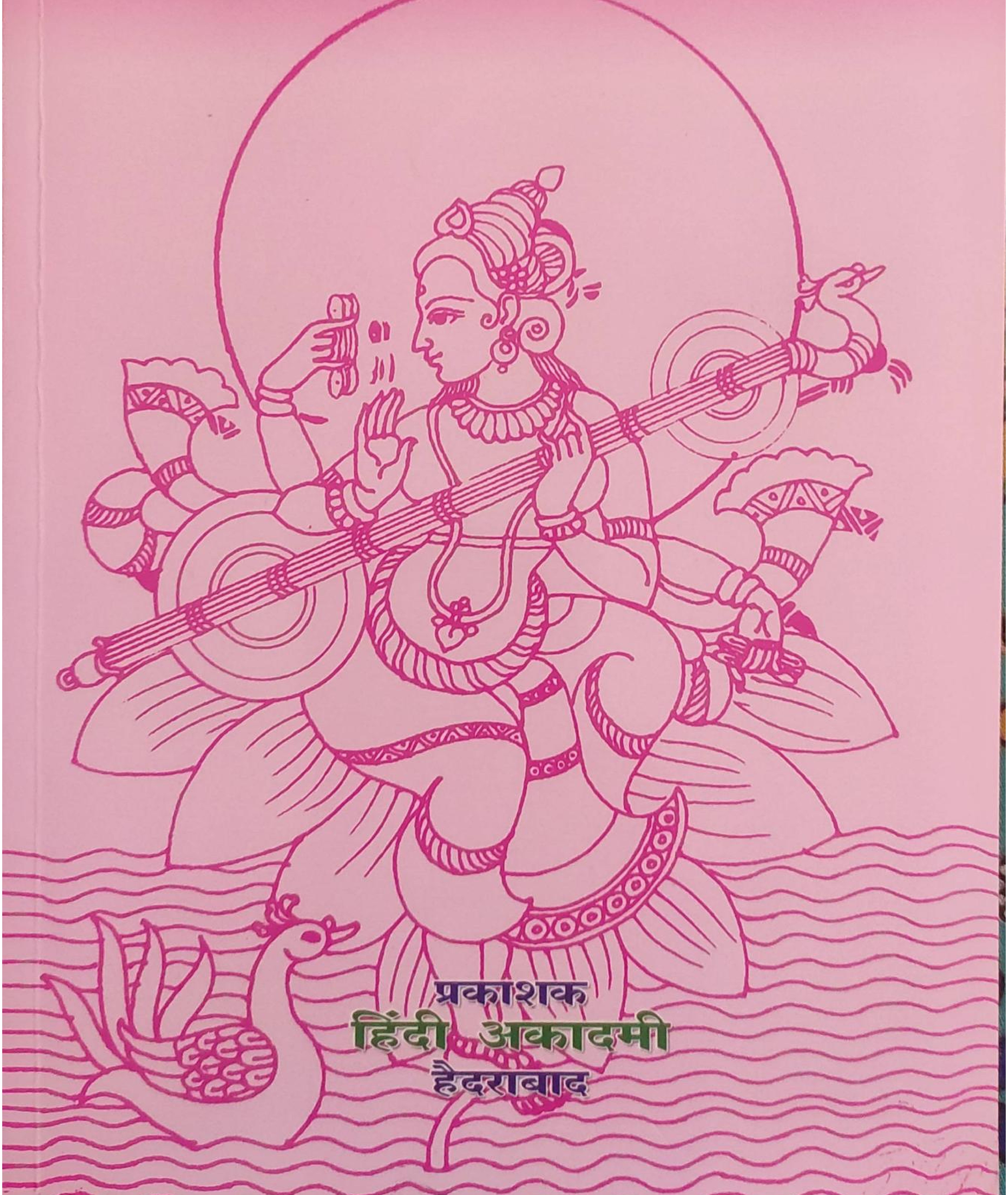

प्रकाशक

हिंदी अकादमी

हैदराबाद

Scanned by TapScanner

साहित्य-सेतु

त्रैमासिक

वर्ष : 5 ◆ अंक : 19 ◆ अप्रैल-जून 2019 ई.

संपादक
डॉ. घनश्याम
निदेशक
हिंदी अकादमी

परामर्शमंडल
डॉ.एम.वेंकटेश्वर
डॉ.बी.सत्यनारायण
डॉ.शुभदा वांजपे
डॉ.अनिता गांगुलि
डॉ.बी.कृष्ण
डॉ.ऋषभदेव शर्मा

सह संपादक
श्रीमती पी.उज्ज्वला वाणी

प्रकाशक
हिन्दी अकादमी
हैदराबाद

* Hindi Academy, Hyderabad -
As per the Xth Schedule the Gazette of India Extraordinary Part-II S.N.50 Dated 01.03.2014.

Scanned by TapScanner

विषय-क्रम

पृ.सं.

5 संपादकीय

आलेख

8 भविष्य में हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं का संबंध - डॉ.एम.वेंकटेश्वर

13 सरस्वती नदी तटीय प्रांत : मानव सभ्यता का विकास
(आधुनिक हिन्दी महाकाव्य कामायनी के संदर्भ में)
- प्रो.माणिक्यांबा 'मणि'

17 स्त्री जीवन के संकट को उकेरती शिवमूर्ति की कहानियाँ
- नीलेश ठाकुर

24 हिन्दी दिवस या हिन्दी बस!
- प्रो.हरीशकुमार शर्मा

28 एक गधे की आत्मकथा: गधे का मानवीय मूल्यों पर व्यंग्य
- शिल्पा शर्मा

33 'वेणु गोपाल की काव्य-भाषा'
- बर्नाली नाथ

36 दया प्रकाश सिन्हा के नाटकों में साम्प्रदायिकता
- डॉ. नसरीन जान

41 विमर्शों के दौर में 'आलोचना' पत्रिका
- इमरान अंसारी

45 'मन:स्ताप की आस्वाद-कथा'
- लोकेश कुमार

48 'सृष्टि पर पहरा' में प्रस्तुत दार्शनिकता
- डॉ.मोहम्मद जमील अहमद

55 मंजूर एहतेशाम की रचनाओं में बदलते जीवन मूल्य - खुशबू

60 अब्दुल बिस्मिल्लाह कृत 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में बुनकरों की संघर्ष चेतना
- डॉ. वाजदा इशरत

63 डॉ. दिनेश चमोला का समकालीन हिन्दी काव्य में अवदान
- कुमारी. सलमा असलम

68 सिनेमा और समाज का अन्तः सम्बन्ध - हिमांशु राय

Scanned by TapScanner

मंजूर एहतेशाम की रचनाओं में बदलते जीवन मूल्य

- खुशबू

जैसे-जैसे समाज का विकास होता गया, वैसे-वैसे मानव जीवन में जटिलताएं आती गयीं। पहले जहाँ साहित्य दुःख-सुख तक ही केन्द्रित रहा, अब वह मानव मन के सूक्ष्मतम स्तर तक प्रसारित होता चला गया। अब साहित्य में मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा आदि मनोभावों का उल्लेख होने लगा। हिन्दी में सर्वप्रथम प्रेमचंद ने कहानी तथा उपन्यास के भाव पक्ष को मानवीय अनुभूतियों की गहराई तक ले जाने का प्रयास किया है। साहित्य को कल्पना लोक से यथार्थ के धरातल पर खड़ा करने में उनकी रचनात्मक भावधारा की विशेष भूमिका रही है। उनकी संवेदनाएं किसान, मजदूर, दलित, स्त्री तथा शोषित वर्ग के प्रति विशेष रूप से जुड़ती है। ईदगाह, कफन, पूस की रात, गोदान आदि में भाव पक्ष की प्रबल अभिव्यक्ति दिखाई देती है। 'हजारी प्रसाद द्विवेदी' साहित्य की संवेदनशीलता पर जोर देते हुए लिखते हैं- ''मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूं। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षता से न बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को पर-दुख कातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।''[1] हिन्दी का आधुनिक साहित्य इन्हीं मानदंडों को आधार बनाकर, प्रेमचंद की रचना-परम्परा में आगे बढ़ता दिखाई देता हैं।

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में भाव-पक्ष के साथ साथ बुद्धि-पक्ष की प्रबलता देखी जा सकती है। इस युग में विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित लेखकों ने मानव जीवन को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से व्याख्यायित किया है। विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात जीवन में आयी जटिलताओं और उससे उत्पन्न मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को विभिन्न साहित्यकारों द्वारा दिखाने का प्रयास किया है। साहित्य में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन के प्रभाव से मनुष्य में उत्पन्न भय, निराशा, ऊब, अजनबीयत, कुंठा, बेकारी आदि संवेदनाएं साहित्य में प्रमुखता से दिखायी जाने लगी। इसके साथ उत्तर-आधुनिकता, भूमंडलीकरण, बाजारीकरण आदि के बढ़ते दबाव को लेकर भी लेखकों ने चिंता व्यक्त की है। हिन्दी साहित्य में इन समस्याओं के साथ ही विभाजन, दंगे, सांप्रदायिकता, गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, सरकारी तंत्र की निरंकुशता, भ्रष्ट शासन व्यवस्था, स्त्री, दलित, आदिवासी तथा अल्पसंख्यक समाज से जुड़ी समस्याएँ, पारिवारिक सम्बन्धों तथा मानवीय मूल्यों में आ रही गिरावट आदि अनेक स्तर पर हो रहे परिवर्तनों को पूरी गम्भीरता और संवेदना के साथ दिखाया गया है। समाज में हो रहे इन परिवर्तनों को साहित्यकारों ने अभिव्यक्त किया है। उनके द्वारा भावनात्मक स्तर पर मनुष्य को अपने नैतिक व मानवीय मूल्यों के प्रति सतर्क करने, उनके प्रति अपनी सहानुभूति बनाये रखने का सर्जनात्मक प्रयास अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। विभाजन के बाद भारतीय मुसलमानों की मनःस्थिति को बड़ी सूक्ष्मता के साथ मंजूर एहतेशाम ने अपनी रचनाओं में दिखाया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास का पात्र 'सुहेल' मुसलमानों के प्रति फैली

Scanned by TapScanner

नफरत, नेताओं द्वारा उग्र एवं आक्रामक भाषणबाजी, समाज, राजनीति तथा नौकरियों में धर्म के आधार पर मुसलमानों के साथ होने वाले भेदभाव, विश्वविद्यालयों की राजनीति, दंगे और साम्प्रदायिकता के माहौल से इतना खिन्न हो जाता है कि वह पढ़ाई छोड़ देता है। उसके मानसिक द्वन्द्व, कुण्ठा, निराशा तथा दुःख को मंजूर ने गहरी संवेदना के साथ व्यक्त किता है। इसके साथ ही उत्तर आधुनिकता के बढ़ते दबाव को मंजूर ने अपने उपन्यास 'दास्तान-ए-लापता' में 'जमीर अहमद खान' के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है। जमीर अहमद खान आज के बदलते दौर के साथ अपना सामंजस्य नहीं बना पाता। उसे छल-कपट और चालाकी नहीं आती इसलिए उसका कारोबार भी हाथ से निकल जाता है। वह अपनी माँ की मृत्यु तथा अपने साथ तथा आसपास घटित घटनाओं को भूलना चाहता है। उसकी पत्नी उससे नाराज होकर बच्चों के साथ मायके चली जाती है। वह अपने दुःख और उलझन के कारण खुद को रोगी महसूस करने लगता है और डॉक्टर को दिखाने के लिए जाता है। डॉक्टर कई जाँच करवाता है लेकिन कोई रोग निकलकर सामने नहीं आता। उसे डॉक्टर पर हँसी आती है क्योंकि वह जिस बीमारी से ग्रसित है उसका कोई डॉक्टरों के पास कोई इलाज ही नहीं है। मनुष्य के दुःख, उलझन, अकेलेपन, निराशा, भय, अजनबीयत की मेडिकल साइंस में भला क्या दवा हो सकती है? ये सभी समस्याएं तो उत्तर आधुनिकता से उत्पन्न समस्याएं हैं। आज विकास और मुख्यधारा के.नाम पर जीवन को इतना जटिल बना दिया गया है कि मानवीय तथा पारिवारिक सम्बन्धों को निभाना भी एक चुनौती बन गया है।

पारिवारिक सम्बन्धों में आए परिवर्तन को मंजूर ने अपने कई कहानियों तथा उपन्यासों में दिखाया है। 'रमजान में मौत' कहानी में 'सुहेला' अपने बीमार पति 'असदमियाँ' की परवाह न करते हुए सज-संवर अपने बेटे को साथ लेकर ईद की खरीदारी करने निकल पड़ती है। असद मियाँ जिस 'फ़लक मंजिल' में रहते हैं, उसी मंजिल में उनकी माँ, बहन, भाई, पत्नी बच्चे सब रहते हैं। सब चाँद देखने और ईद की तैयारी करने में व्यस्त रहते हैं। इधर असद मियाँ अकेले कमरे में तड़फड़ाते हुए जीवन की आखिरी साँस ले रहे होते हैं और किसी को खबर तक नहीं। उनका छोटा बच्चा दौड़-दौड़ कर यह सूचना सब तक पहुँचाता है। मंज़ूर की यह कहानी पात्रों के माध्यम से पूरी दुनिया में हो रहे परिवर्तन को भी बयाँ करती है। यह वह दौर था जब भारत में भी परिवारों का विखंडन शुरू होने लगा था। बाजारीकरण के प्रभाव से मनुष्य को उपभोक्ता बनाये जाने की शुरुआत भी इसी दौर में दिखाई देती है। मंजूर अपने चिन्तन में इन सभी बदलावों को देख रहे थे।

पारिवारिक सम्बन्धों में आयी गिरावट के साथ-साथ वैवाहिक सम्बन्धों में विच्छेद तथा पारिवारिक विघटन की स्थिति पर भी मंजूर ने अपने उपन्यासों तथा कहानियों में गहरी चिंता व्यक्त की है। हमारे समाज में स्त्री के सम्मान, स्वतंत्रता और सुरक्षा को लेकर कभी भी संवेदनशील नहीं रहा है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों के शोषण की परम्परा भी काफी पुरानी है। यह परम्परा हमारे समाज में आज भी जारी है। अंतर सिर्फ इतना आ गया है कि आज की पढ़ी-लिखी आत्मनिर्भर स्त्रियाँ इस शोषण के विरोध में खड़ी होने लगी हैं। मंज़ूर के कई उपन्यासों में जैसे 'कुछ दिन और', 'दास्तान-ए-लापता', 'मदरसा' में स्त्रियाँ अपने पति के अत्याचार तथा कायरतापूर्ण रवैये से तंग आकर अलग रहने का निर्णय लेती हैं।

हिन्दी साहित्य में 70 के आसपास 'स्त्री विमर्श' का जो रूप दिखाई देता है। उसका प्रभाव

Scanned by TapScanner

मंजूर पर भी साफ-साफ दिखता है। समाज में बराबरी का हक, शिक्षा का अधिकार, समानता, स्वतंत्रता जैसे मुद्दों पर मंजूर भी इस विमर्श के साथ खड़े दिखते हैं। मंजूर के यहाँ इसका प्रभाव पढ़े-लिखे तथा मध्यवर्गीय स्त्री पात्रों पर अधिक दिखाया है, जबकि उनके निम्नवर्गीय स्त्री पात्र प्रायः जीवन से संघर्ष करते ही दिखाई देते हैं। भारतीय समाज में तेजी से आ रहे परिवर्तन के फलस्वरूप स्त्रियों में आये स्वाभिमान व आत्मनिर्भरता को वे अपने सभी उपन्यासों में दिखाते है। 'मदरसा' उपन्यास में एक सिक्ख परिवार की लड़की 'पिंकी' अपने परिवार के विरुद्ध जाकर अपने पसन्द के एक मुस्लिम युवक से विवाह करती है। विवाह के पश्चात् वह नौकरी करने लगती है और अपने मेहनत के बल पर वह काफी तेजी से प्रमोशन करके ऊँचा पद प्राप्त करने में सफल होती है। बाद में अपने पति के उदासीन रवैये के कारण अलग रहने का निर्णय लेती है। इसी प्रकार माँ और बेटे के सम्बन्धों में आ रहे परिवर्तन को भी मंजूर ने 'मदरसा' उपन्यास के माध्यम से दिखाया है। बाजारीकरण के इस दौर में एक माँ को कैसे अपने बेटे से अधिक जायदाद प्यारा हो जाता है। उसकी माँ जब उसे कारोबार शुरू करने के लिए अपने दूसरे पति यानि उसके सौतेले पिता, जिसे अब तक वह अपना सगा पिता जानता था, उसके जायदाद में हिस्सा देने के लिए मना कर देती है तो उसे काफी सदमा पहुँचता है। वह अपने असली पिता की तलाश में निकल पड़ता है तब वह देखता है कि उसके पिता के जमीन पर रिश्तेदारों ने पहले से ही कब्जा कर रखा है। इसी उधेड़बुन में उसका परिवार बिखर जाता है। 40 की उम्र में ही उसे इस दुनियाँ का इतना अनुभव हो जाता है कि उसे दुनियाँदारी से नफरत होने लगती है। इसी तरह 'बशारत मंजिल' उपन्यास में विघटित पारिवारिक तथा नैतिक मूल्यों पर गहरी संवेदना व्यक्त की है।

मंजूर ने निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज का चित्रण करते हुए उनके दुख-सुख, समस्याओं तथा स्थिति को संवेदनात्मक ढंग से दिखाया है। 'सूखा बरगद' उपन्यास में सईदा और उसके पांच बच्चों को छोड़कर उसका पति भाग जाता है। सईदा अपने परिवार का खर्च चलाने के लिए लोगों के घर नौकरानी का काम करने लगती है। घर पर उसकी लड़कियां बीड़ी बनाती हैं, ताकि कुछ पैसा घर आ सके। लेकिन महंगाई के दौर में उनके परिवार का गुजारा काफी मुश्किल से होता है। ऐसे में वह बेटियों की शिक्षा और शादी का इंतजाम नहीं कर पाती। इसी तरह फफ्फू के चरित्र के माध्यम से अकेले जीवन बिताने वाली स्त्री के संघर्ष को देखा जा सकता है। पति और बेटे के असामयिक निधन के बाद अपना खर्च चलाने के लिए वह मुहल्ले के बच्चों को धार्मिक शिक्षा देती है और मस्जिद के सफाई का काम करती है। बमुश्किल अपना गुजारा करने वाली फफ्फू संकरी सी गली में एक टूटे फूटे, लकड़ी के फर्रे से बने संकरे मकान में रहती है। अकेले में पति और बेटे को याद कर रोती और बच्चों को पढ़ाते समय चिड़चिड़ाना उनके जीवन की नियति बन चुकी थी। उसी गली में रहने वाले सलाम दादा, इब्बू दादा, हव्वा बुआ की पारिवारिक स्थिति, गरीबी, रहन-सहन तथा समस्याओं को दिखाया है। इब्बू दादा की बेटी कल्लो और पत्नी के बारे में मंजूर लिखते हैं- "कल्लो को घर के काम-काज में हाथ बंटाने से इतनी भी फुरसत नहीं थी कि वह फफ्फू के घर पढ़ने भी आ पाए। गन्दे, फटे कपड़े पहने, कभी बर्तन साफ करती, कभी भैंस के आगे पुले खोलती। कल्लो की माँ को टी.बी. थी और वह उस अँधेरी सीलन में बसी कोठरी में पड़ी-पड़ी खांसती रहती थी।"[2] इस प्रकार मंजूर ने निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज को प्रस्तुत किया हैं।

Scanned by TapScanner

'पहर ढलते' उपन्यास में उच्चवर्गीय मुस्लिम समाज के लोगों के चरित्र, रहन-सहन तथा महत्त्वाकांक्षाओं को दिखाया है। उपन्यास में नवाब साहब के घर रात में एक पार्टी रखी गयी है, जिसमें शहर के अमीर और ओहदेदार लोगों को बुलाया गया है, उनमें मंत्री, कैप्टन, व्यापारी, अफसर तथा अन्य लोग भी शामिल हैं। मनोरंजन के लिए कव्वाली का आयोजन किया गया है। असल में उस पार्टी में सब अपने सियासी फायदे के लिए आये हुए हैं लेकिन सब कव्वाली सुनने का नाटक करते हैं। लेखक ने एक-एक करके सबके नकली चेहरे को बेनकाब किया है। एक दृश्य है जब भरी महफिल में नवाब साहब की पत्नी को उसके आशिक के आने की सूचना नौकर कान में देता है, तो उसकी प्रतिक्रिया है- ''कौन शहाब? शबनम ने अपनी आवाज इतनी ऊँची करते हुए कहा था कि आसपास मौजूद सब लोग सुन लें। हनीफ साहब से कहो ना, वह कहाँ हैं? उसने अपने लहजे में बेजारी लादने की एक्टिंग करते हुए कहा था। ...फिर अपनी बात अधूरी छोड़कर वह घर के पिछले दरवाजे पर आ गयी थी। शहाब इसी तरफ से आता था...।''[3]

मंजूर ने वेश्याओं के जीवन, समस्याओं, दुःख, मानसिक पीड़ा, सामाजिक अवहेलना, शोषण आदि के प्रति संवेदना प्रकट की है। वेश्याओं की जिंदगी के बारे में लिखते हैं- ''हम और कुछ नहीं, सिर्फ कुछ लोगों के ख्वाबों की सच्चाई हैं। हम बहुत कीमती हैं : कीमत लेते हैं तो उसका हक भी अदा करते हैं। हमारे अपने जज्बात कुछ नहीं, हम कुछ नहीं। ....एक नगमा, एक लय, एक जानदार थिरकन ; जिंदगी मौत की माती नहीं, मौत खुद जिंदगी में शामिल है।''[4]

महंगाई के कारण परिवार की छोटी-छोटी इच्छाओं को पूरा करने में असमर्थ व्यक्ति के जीवन तथा उसके पारिवारिक संबंधों में आए बदलाव को मंजूर ने अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाया है। उनकी कहानियों की कथावस्तु अपने आस-पास घट रही घटनाओं से बिलकुल मिलती-जुलती प्रतीत होती हैं। कल्पना और नाटकीयता से दूर इनकी कहानियाँ पाठक के अन्तर्मन को सहज ही छू लेती हैं। उनकी कई कहानियों के शीर्षक भी भावनात्मक आधार पर रखे गये हैं जैसे-उदास चाँदनी, जश्न, राहत, छोटी-छोटी चीजें, रंजन में मौत, तमाशा, रिश्ता लड़ाई, रिहाई, ठंडे बस्ते आदि। महंगाई के दौर में एक साधारण परिवार की चिंताओं को वे 'तसबीह' कहानी में कुछ इस तरह दिखाते हैं - ''दबी जुबान में साजिदा ने आने वाले ख़र्चों का जिक्र किया था और वह झुँझला उठा था। वैसे अपने लहजे में बढ़ती चिड़चिड़ाहट का उसे खुद भी अच्छी तरह अंदाजा था। किया क्या जाए ! रोज-रोज के तकरीब-त्योहार और घर में लगातार बीमारियों का सिलसिला- कोई कहाँ से लाए? रोजमर्रा का खर्चा चले, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई और दूसरी जरूरतें पूरी हो या यह तकरीब-त्योहार की ऐय्याशी की जाए ! कल शबे-बरात थी, आज मीठी ईद है, कल बकरा ईद सिर पर सवार होगी। रही-सही कसर शादी की सलामियाँ और सालगिरहों के तोहफे पूरी कर देंगे।''[5]
इसी तरह 'छोटी-छोटी चीजें' कहानी में संजू और उसकी पत्नी दोनों दिन भर काम करने के बावजूद घर की छोटी-छोटी चीजों को खरीदने में सक्षम नहीं होते। संजू के रिश्तेदार, मित्र या पड़ोसी उसके घर में जिस भी सामान की कमी देखते उसे मदद स्वरूप दिलवा देते। अपने परिवार की खुशियों को पूरा न कर पाने के कारण वह अपने को उपेक्षित महसूस करने लगता है और अपनी खीझ को मिटाने के लिए पत्नी को मारता है। 'तमाशा' कहानी में गरीब मुस्लिम परिवार की पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली संघर्ष गाथा को प्रस्तुत किया गया है। अधेड़ उम्र की परित्यक्ता सकीना, जो अपनी चार

Scanned by TapScanner

बेटियों और एक बेटे को लेकर अपने जीवन में जैसा संघर्ष कर रही होती है, कुछ साल बाद उसकी बड़ी बेटी के जीवन में पति के असामयिक निधन के बाद वैसा ही संघर्ष शुरू होता है। जीवन के संघर्षों से लड़ती हुई सकीना अपनी बेटी के विवाह में 'सब तमाशा है' कह कर जीवन की वास्तविकता को व्यक्त करती है। जिसमें व्यक्ति नायक-नायिका या सहायक पात्र निभाने की भूमिका अदा करता है। 'पुल पुख्ता' कहानी में सरकार गरीब मुसलमानों की बस्ती खाली करने के लिए, बस्ती से लगे हुए टूटे पुल का निर्माण नहीं कराती और बरसात में पुल टूटने से सैकड़ों लोगों के जीवन भर की मेहनत पानी के साथ बह जाने के दर्द को दिखाया गया है। इसी तरह 'बावड़ी' कहानी में भी मंज़ूर ने सरकारी तन्त्र की निरंकुशता और लापरवाही को दिखाया है। भोपाल गैस त्रासदी का जिक्र भी उनकी रचनाओं में बार-बार आता है और उस त्रासदी द्वारा लोगों की क्षतिपूर्ति के वादों के जमीनी हकीकत को भी बताया गया है।

इसके अलावा कई ऐसे पहलू हैं, जिसको मंज़ूर ने अपनी रचनाओं में पूरी मानवीयता के साथ समेटा है। ऐतिहासिक घटनाओं का हवाला देते हुए वे धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, क्षेत्र, वर्ण, लिंग, अमीर-गरीब, अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक आदि की सीमा से बाहर आने का आग्रह करते हुए एक स्वस्थ समाज के निर्माण में अपनी भूमिका अदा करने का संदेश देते हैं और अंत में मनुष्यता के धर्म को ही सबसे बड़ा धर्म बताया हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य शास्त्र, सं.नन्दकिशोर नवल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2003, पृ.35
2. सूखा बरगद, मंज़ूर एहतेशाम, राजकमल प्र. नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2014, पृ.25-26
3. पहर ढलते, मंज़ूर एहतेशाम, राजकमल प्र. नई दिल्ली, पहला सं.2007, पृ.17
4. बशारत मंजिल, मंज़ूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पहला सं.2012, पृ.114
5. तसबीह(कहानी), सम्पूर्ण कहानियाँ, मंज़ूर एहतेशाम, राजकमल प्र. नई दिल्ली, पहला सं.2015, पृ.280

...

संपर्क-सूत्र *:- शोधार्थी, हिन्दी विभाग, मानविकी संकाय, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद-500046. मो:9063762618*

Scanned by TapScanner

वर्ष – 10, अंक–2
अंक : अक्टूबर – दिसंबर 2020
UGC-CARE LISTED S.N. - 61

मूल्य-100/-
ISSN NO. 2320-5733

समसामयिक सृजन

समकालीन साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति का संगम

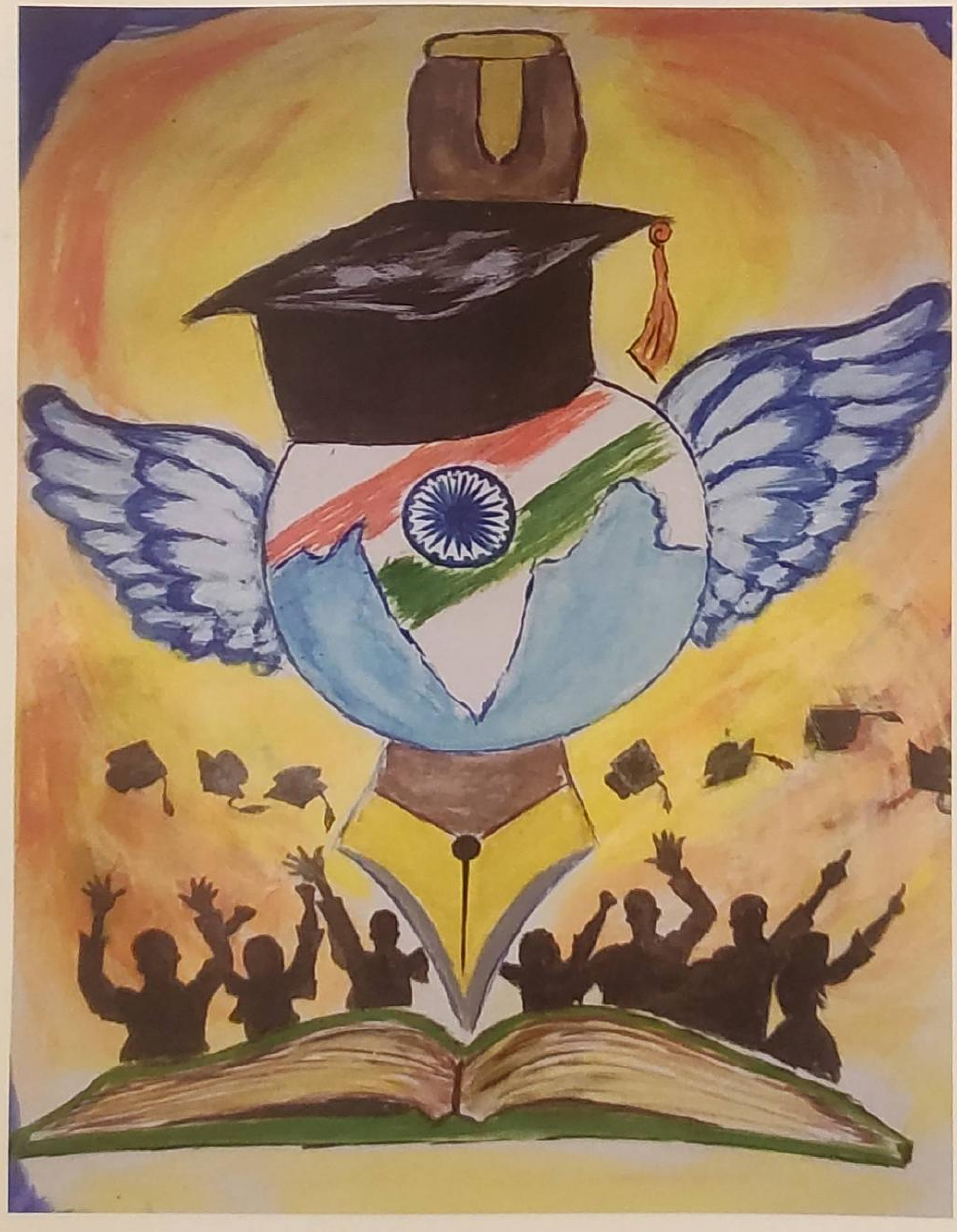

Scanned by TapScanner

समसामयिक सृजन

साहित्य, शिक्षा और संस्कृति का संगम

संरक्षक
डॉ. प्रभात कुमार

प्रधान संपादक एवं परामर्श
डॉ. रमा

संपादक
डॉ. महेन्द्र प्रजापति

संपादन सहयोग
रीमा प्रजापति

प्रचार-प्रसार
विजय कुमार सिंह

आवरण चित्र
तरुणेश्वर निखिल

ले-आउट
हर्ष कंप्यूटर्स

संपादकीय कार्यालय
मकान नं. 189, ब्लॉक-एच
विकासपुरी, नई दिल्ली-110018

पत्राचार
एफ-114, तृतीय तल, SLF, वेद विहार
नियर : शंकर विहार ऑटो स्टैंड, लोनी
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश-201102

सदस्यता
आजीवन : 5000/- रुपए
संपर्क : 9871907081
वेबसाइट : www.samsamyiksrijan.com
Email : samsamyik.srijan@gmail.com

प्रकाशन एवं मुद्रण
हरिन्द्र तिवारी
हंस प्रकाशन, दिल्ली
मो. : 7217610640, 9868561340
ईमेल : hansprakashan88@gmail.com
बेवसाइट : www.hansprakashan.com

पृ.सं.

- राकेश मिश्र की कविताओं पर विशेष सामग्री : *डॉ. रमा* 3
- कवि राकेश मिश्र की कविताएँ... : *डॉ. दर्शन पाण्डेय* 8
- राकेश मिश्र की चुनी हुई कविताएँ 11
- गांधीवादी दर्शन और बाणभट्ट... : *प्रो. सत्यकेतु सांकृत* 13
- मीडिया और साहित्य : *सूर्यनाथ सिंह* 17
- कहानी आलोचना के संदर्भ में पाठकीय... : *पंकज शर्मा* 20
- 'विश्व संगीत के गॉड फादर', ... : *डॉ. प्रकाश चन्द्र गिरि* 23
- कहानी विधा के सापेक्ष आलोचना... : *आनंद कुमार सिंह* 26
- राही मासूम रजा और शानी : ... : *डॉ. सुनील कुमार यादव* 28
- कामायनी में सत्यं शिवं और सुंदरं... : *डॉ. शोभा कौर* 31
- बींसवी शताब्दी की कुछ महत्त्वपूर्ण ... : *डॉ. मिथिलेश कुमारी* 34
- मलयज के लिरिकल प्रोज़ का संसार... : *डॉ. राकेश कुमार* 36
- सूचना समाज के दौर में संवदिया : *अनुपम कुमार* 39
- संभावनाओं के आईने में दिल्ली ... : *डॉ. धर्मेंद्र प्रताप सिंह* 41
- एफएम चैनलों... : *निखिल आनंद गिरि'-डॉ. सर्वेश दत्त त्रिपाठी* 44
- भोजपुरी गीतों में प्रतिरोधी स्वर : *डॉ. सोनी पाण्डेय* 47
- हिंदी उपन्यासों में चित्रित उत्तराखंड... : *जेनब खान* 49
- प्रवासी साहित्य और नीना पॉल... : *डॉ. आसिफ उमर* 52
- 'भाषाई पत्रकारिता और डिजिटल... : *चंदन कुमार भारती* 55
- स्वर से ईश्वर की खोज : *डॉ. चंद्रकांत सिंह* 58
- साहित्यिक विधाओं के अंतर्मिलन... : *आनंद कुमार सिंह* 61
- इंटरनेट के दौर में हिंदी : *डॉ. गंगा सहाय मीणा-डॉ. अनुपमा पांडेय* 64
- आप्रवासन परंपरा, प्रक्रिया और अवधारणा : *नीलमणी भारती* 68
- 'कथेतर गद्य की दृष्टि से रेणु का रिपोर्ताज कर्म' : *निशा गुप्ता* 71
- हिंदी कविता में विश्व शांति का स्वरूप : *डॉ. रामचरण पांडेय* 74
- समकालीन उपन्यासों में ... : *अमृता श्री* 77
- लोकराग-आल्हा : *डॉ. रश्मि शर्मा* 81

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी : *डॉ. महेन्द्र प्रजापति द्वारा एच.-ब्लॉक, मकान नं. 189, विकासपुरी, नई दिल्ली-110018 से प्रकाशित।*

Scanned by TapScanner

- राजनीति, वेबसाइटों के विज्ञापन पर : सुरेश कुमार 85
- महिला सशक्तीकरण... : डॉ. चयनिका उनियाल पंडा 90
- हाशिए पर आदिवासी समाज... : उपमा शर्मा 94
- रेणु : मानव मुक्ति के सशक्त प्रहरी : बिथा दास 97
- इक्कीसवीं सदी के हिंदी... : विजयलक्ष्मी पाण्डेय 100
- और गुलफ़ाम मारे गए! : डॉ. बिमलेंदु तीर्थंकर 103
- साहित्य पर बाजारीकरण : डॉ. कमलेश कुमार यादव 107
- लोकसाहित्य, समाज और... : डॉ. अलका आनंद 110
- रीतिकालीन काव्य में नायिका-... : रामप्यारी कुमारी 112
- फैंटेसी में झलकती आजाद... : अदिति झा 115
- जीवन मूल्य और संत... : डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा 119
- 'राम की शक्तिपूजा' के रचना-... : मनीष 123
- हिंदी उपन्यासों में बाल... : डॉ. अमिता तिवारी 125
- मार्कण्डेय का कथा साहित्य... : प्रियंका यादव 129
- योगदर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण : रागिनी पाठक 132
- कि आती है उर्दू जुबां आते-आते : खुशबू 135
- आधुनिक संदर्भ में महापुरुष... : जैनेन्द्र चौहान 139
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी.... : डॉ. पठान रहीम खान 141
- आंचलिकता और रेणु : डॉ. आलोक प्रभात 145
- महिला सशक्तिकरण–भारत... : डॉ. संगीता शर्मा 149
- व्यक्तित्व, व्यक्तित्वशील ... : अमित कुमार दूबे 154
- नरेंद्र कोहली के 'युद्ध' उपन्यास... : डॉ. रेखा रानी 157
- संगीत शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी ... : डॉ. सुरेंद्र कुमार 160
- हिंदी का वैश्विक परिदृश्य... : संगीता कुमारी पासी 163
- आर्थिक रूप से उच्च एवं ... : डॉ. राजेश कुमार 166
- रेणु जी के 'मैला आँचल' में... : सिमरन भारती 169
- मार्कंडेय की... : सत्य प्रकाश-डॉ. अनुभा पाण्डेय 172
- कतिपय वर्तमान हिंदी... : डॉ. रणजीत कुमार 176
- बड़ो जनजाति : समाज... : डॉ. प्रीति वैश्य 180
- 'अंधविश्वास की... : डॉ. सुनील कुमार सिंह 184
- साहित्य और सत्ता : अंकिता चौहान 187
- विवाहितों के प्रेम... : डॉ. विजय शंकर मिश्र 192
- सुशीला टाकभौरे की ... : राजा कुमार 196
- जयनंदन और उनकी... : डॉ. गोपाल प्रसाद 199
- वेब सीरीज : पारंपरिक सिनेमा... : प्रभांशु ओझा 202
- अनामिका का वैचारिक... : ज्ञान प्रकाश 205
- प्रेमचंद की कहानियों में... : सुनील यादव 207
- वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में... : डॉ. राम भरोसे 210
- तकनीक वर्चस्विता और... : डॉ. प्रकाश कोपार्डे 214
- मीडिया का नया परिदृश्य... : डॉ. अंजली कायस्था 218
- कवि सहचरीशरण द्वारा रचित... : डॉ. पवन सचदेवा 222
- समकालीन महिला ... : डॉ. रूचिरा ढींगरा 226
- सत्यं शिवमं सुंदरमं का... : डॉ. मंजुला 230
- वृंदावनलाल वर्मा की ... : डॉ. विजय शंकर मिश्र 233
- नवजागरण के दौर में निबंध लेखन : प्रीति हुड्डा 236
- हिंदी नाटकों में गांधी : डॉ. आशा-डॉ. अनिल शर्मा 239
- अंतरराष्ट्रीय फलक पर... : प्रियंका विश्नोई 243
- लोक मिट्टी में सने ... : डॉ. सुनील कुमार सुधांशु 246

Scanned by TapScanner

कि आती है उर्दू जुबां आते-आते

खुशबू

"साहित्यिक कल्पना एक खास ढंग से किसी समाज की छानबीन करके उसके विभिन्न पहलुओं के बारे में नवीन जानकारी प्रदान कर सकती है, सुबोध परिकल्पनाएँ दे सकती है और उस समाज का रहस्य खोलने वाली व्यवस्थाओं या पद्धतियों की ओर संकेत कर सकती है।"[1] 'रिचर्ड हॉगर्ट' द्वारा साहित्यिक कल्पना के संदर्भ में की गई उक्त टिप्पणी किसी भी साहित्यकार के दायित्व और उसकी सामाजिक भूमिका दोनों की ओर संकेत करती है। संवेदनशील साहित्यकार ही अपने समय और समाज की गंभीर समस्याओं पर सुलझी हुई दृष्टि से विचार कर सकता है। इसके साथ ही वह उन तमाम मुद्दों पर, जो किसी भी समाज के लिए विघटनकारी हो सकती हैं, उनकी ओर संकेत करता है और भविष्य के प्रति सचेत भी। साहित्य का बुनियादी सरोकार किसी भी समाज की विषमताओं का उन्मूलन ही होता है। विभिन्न सामाजिक आंदोलन या परिवर्तन साहित्यकार को गंभीर धरातल प्रदान करते हैं, उदाहरण के तौर पर चाहे वह यूरोप का रेनेसां काल हो या फिर भारत का पुनर्जागरण काल। हम देख सकते हैं कि दोनों ही परिस्थितियों ने अपने युग के साहित्य को विषयगत एवं संरचनागत दोनों ही रूपों में बहुत अधिक प्रभावित किया है।

भारतीय इतिहास में सन् 1857 की क्रांति एक अभूतपूर्व घटना रही है। इसका स्पष्ट प्रभाव पूरे भारतेंदु काल में देखा जा सकता है। विषयवस्तु, विचारधारा, भाषा, विधा आदि अनेक स्तरों पर जितना व्यापक परिवर्तन भारतेंदु युग में हुआ उतना पूरे हिंदी साहित्य के एक हजार वर्षों के इतिहास में कभी नहीं देखा गया। भारतेंदु काल में ही हिंदी कथा-साहित्य का जन्म हुआ, किंतु उसका सामाजिक जीवन से उस प्रकार सरोकार नहीं था, जैसा कि होना चाहिए था। प्रेमचंद ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से इस कमी को पूरा किया। उन्होंने अपनी साहित्यिक कल्पना के माध्यम से अपने समाज के रहस्य खोलने वाली उन व्यवस्थाओं और पद्धतियों की ओर संकेत किया, जिसकी जरूरत साहित्यिक कल्पना के माध्यम से 'रिचर्ड हागर्ट' महसूस करते हैं।

सन् 1857 की क्रांति के पश्चात 1947 का विभाजन भारतीय इतिहास के लिए एक अविस्मरणीय दुर्घटना बनीं। इससे पहले भारतीय इतिहास में ऐसा कहीं नहीं दिखता जहाँ धर्म को आधार बनाकर समाज का विभाजन हुआ हो। इस विनाशकारी विभाजन ने न सिर्फ देश को दो हिस्सों में बाँटा बल्कि पूरे सामाजिक ढाँचे पर अपना नकारात्मक प्रभाव डाला। एक ओर लोकतंत्र की स्थापना हुई तो दूसरी ओर एक विशेष किस्म की सांप्रदायिकता पूरे भारत में फैल गई। नेताओं की तानाशाही तथा भ्रष्ट शासन प्रणाली के कारण 70 का दशक आते-आते लोगों का आजादी से मोह भंग होने लगा। सन् 1977 में इंदिरा गांधी द्वारा आपातकाल का लगाया जाना तथा सन् 1984 के सिक्ख दंगे ने निरंकुश लोकतांत्रिक पद्धति को जन्म दिया। 80 का दशक आते-आते विभिन्न वाह्य तथा आंतरिक परिवर्तनों के कारण भारतीय समाज की रूपरेखा ही बदल गई। इस संदर्भ में राहुल मिश्र लिखते हैं–"राष्ट्र प्रेम, उदात्त राजनीतिक सिद्धांत, नैतिकता और समर्पण बीते समय की बातें हो गईं। सामाजिक ताने-बाने भी नष्ट-भ्रष्ट होने लगे और जाति धर्म के आधार पर हुए विभाजन से सबक लेने के बजाय सांप्रदायिक दंगे भी देश की एकता और अखंडता के लिए खतरा पैदा करने लगे। सरकारी आँकड़ों के अनुसार वर्ष 1969 ई. और 1970 ई. में विगत बीस वर्षों के अंतराल में सबसे अधिक दंगे हुए।"[2] स्वतंत्रता के पश्चात पूरे भारतीय परिवेश में हो रहे इस व्यापक परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य भी विभिन्न स्तरों पर परिवर्तित होता रहा।

प्रेमचंद के पश्चात हिंदी कथा साहित्य विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित हुई। उपन्यास के क्षेत्र में प्रगतिवादी, आदर्शवादी, यथार्थवादी, मनोविश्लेषणवादी, व्यक्तिवादी, आंचलिक ऐतिहासिक आदि कई स्तरों पर परिवर्तन हुए। वहीं कहानी के क्षेत्र में नई कहानी, समानांतर कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी और अकहानी आदि नए रूप दिखाई देते हैं। सुवास कुमार लिखते हैं–"आजादी के आसपास की, और बाद में चलकर भी, कथाओं में एक खास किस्म की बौद्धिकता का

Scanned by TapScanner

समावेश हुआ। विभाजन का दर्द झेलता हुआ आजाद देश जिस जटिल और उलझे हुए परिवेश में खुद को पा रहा था उसमें शिक्षित मध्यवर्ग, औद्योगीकरण, शहरीकरण, गरीबी और बेकारी, टूटता-बिखरता गाँव, परिवार और समाज, स्वातंत्र्योत्तर आकांक्षाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ और स्वप्न भंग, आधुनिकतावादी फैशन, चतुर्दिक अवमूल्यन, सांप्रदायिकता आदि- जैसी अनेक अच्छी बुरी बातें और समस्याएँ थीं जिनकी अभिव्यक्ति हिंदी कथाकृतियों में खूब की गई। बदले और बदलते हुए परिवेश में नए भावबोध ने कथाकारों को नए शिल्प की खोज की दिशा में भी प्रेरित किया।''[5] इन तमाम समस्याओं के साथ-साथ हाशिआए के समाज पर भी साहित्यकारों की दृष्टि गई। यह वर्ग स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए तेजी से जद्दोजहद कर रहा था। सन् 1980 का दशक आते-आते हिंदी में दलित, स्त्री, अल्पसंख्यक और आदिवासी समाज से जुड़ी समस्याएँ साहित्य में प्रमुखता से उठायी जाने लगी। समाज में बढ़ती महंगाई, बेरोजगारी, जनसंख्या, अशिक्षा, गरीबी तथा सरकारी तंत्र की निरंकुशता ने समाज में असंतोष, असुरक्षा तथा अनेक विसंगतियों को जन्म दिया। इन सामाजिक समस्याओं को दूर करने की बजाय राजनीतिज्ञों को धर्म, जाति, वर्ग और क्षेत्र को आधार बनाकर जनता का ध्रुवीकरण करना ज्यादा आसान लगा। इस सरलीकरण के लिए अल्पसंख्यक बनाम बहुसंख्यक की राजनीति को अपनाया गया। विभिन्न धार्मिक संगठनों के निर्माण, नेताओं के उग्र एवं आक्रामक बयान तथा दंगों ने मुस्लिम समाज के भीतर असुरक्षा की भावना को जन्म देने में सफलता प्राप्त की। भारत की बीमार राजनीति धीरे-धीरे लोकतंत्र के लिए खतरनाक होती चली गई।

स्वतंत्रता के बाद सांप्रदायिकता तथा दंगों की पृष्ठभूमि पर हिंदी में कई उपन्यास लिखे गए। इनमें झूठा सच (यशपाल), कठपुतली (देवेंद्र सत्यार्थी), लौटे हुए मुसाफिर (कमलेश्वर), तमस (भीष्म साहनी) आदि प्रमुख रहे। इन उपन्यासों में भारत विभाजन के दौरान घटित हुए भीषण नरसंहार को बहुत मार्मिकता के साथ दिखाया गया है। किंतु इन रचनाओं में भारत के मुसलमानों की स्थिति या मनोदशा को लेकर कोई गंभीर प्रतिक्रिया दिखाई नहीं देती। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों तथा कहानियों में कहीं-कहीं मुस्लिम समाज का चित्रण किया है। लेकिन बाद के साहित्यकारों के यहाँ मुस्लिम समाज लगभग अनुपस्थित ही रहा है। एक लंबे अंतराल के बाद सन् 1970 के दशक में हिंदी में दो मुस्लिम रचनाकार ''राही मासूम रजा'' और ''गुलशेर खां शानी'' का आगमन होता है। इन दोनों रचनाकारों ने सर्वप्रथम हिंदी साहित्य में मुस्लिम समाज को संपूर्ण रूप में हिंदी पाठकों के बीच रखा। इसके बाद बदीउज्जमाँ, नासिरा शर्मा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, असगर वजाहत, मेहरुन्निशा परवेज आदि ने हिंदी लेखकों द्वारा लगभग उपेक्षित भारतीय मुसलमानों के रहन-सहन, स्थिति, स्वरूप, समस्याओं आदि को सशक्त तरीके से हिंदी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया। इसी क्रम में मंजूर एहतेशाम ने भी अपनी एक खास शिल्प और संवेदना के साथ हिंदी कथा साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज की है।

3 अप्रैल सन् 1948 में भोपाल में जन्मे मंजूर एहतेशाम का पारिवारिक तथा शैक्षणिक स्तर पर हिंदी साहित्य से सीधे-सीधे कोई जुड़ाव नहीं रहा है। इनके पिता धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होंने इलाहबाद से मौलवी, आलिम, फाजिल की शिक्षा ग्रहण की थी और वे लकड़ी का कारोबार करते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात उनके लकड़ी के कारोबार को मंजूर और उनके भाइयों ने सँभाला। मंजूर मूलतः विज्ञान के विद्यार्थी रहे हैं। भोपाल से हायर सेकेंडरी पास करने के पश्चात वे इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करने के लिए सन् 1964 में ''अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी'' चले गए। किंतु इंजीनियरिंग में मन न लगने के कारण एक साल बाद ही शिक्षा अधूरी छोड़ कर वापस भोपाल चले अजाए। वापस आकर उन्होंने भोपाल में ही इंजीनियरिंग के लिए फिर से एडमिशन लिया, किंतु अंतिम वर्ष की परीक्षा न देकर वे उसे भी अधूरा ही छोड़ देते हैं। वे बताते हैं कि उनका विज्ञान और गणित विषय में कभी रुचि ही नहीं रहा। मंजूर की पत्नी ''सरवर'' काफी पढ़ी-लिखी हैं। उन्होंने एमएस.सी., बी. एड. किया है। पढ़ाई छोड़ने के बाद मंजूर ने कुछ दिन तक भोपाल में ही एक मेडिकल स्टोर पर करीब साढ़े चार वर्षों तक काम किया। इसी दौरान इनकी मुलाकात अपने एक मित्र के जरिए सत्येन कुमार से हुई, जो भोपाल के एक मेडिकल कॉलेज में पढ़ाते हैं और साथ ही लेखन-कार्य भी करते हैं। अपनी पहली ही मुलाकात में करीब डेढ़-दो घंटे हेमिंग्वे पर सत्येन कुमार से इनकी बातचीत हुई। हेमिंग्वे मंजूर और सत्येन दोनों के प्रिय लेखक हैं। सत्येन के जरिए ही मंजूर की मुलाकात ''गुलशेर खाँ शानी'' से हुई और इस तरह इनका उठना-बैठना दुष्यंत कुमार, इजलाल मजीद, धनंजय वर्मा आदि के साथ होने लगा। अपने साहित्यकार मित्र ''सत्येन कुमार'' की प्रेरणा से उन्होंने अपनी पहली कहानी सन् 1973 में ''रमजान में मौत'' लिखा। उनके लेखकीय जीवन की यह शुरुआत बहुत ही रोचक ढंग से हुई। इस संबंध में वे बताते हैं–''हम एक जगह जा रहे थे, ईद के दिन मिलने और रास्ते में कहीं एक जनाजा जा रहा था। पता चला वो साहब पहचान के थे। मैंने सत्येन से कहा–ऐसे-ऐसे थे, इस तरह

Scanned by TapScanner

के आदमी थे। मुझे आज भी याद है जब हम वहाँ से लौटकर बीयर-बीयर लेकर कहीं बैठे तो सत्येन ने एक खूबसूरत बात कही कि तकनीक के लेविल पर ये तो कहानी है। तुम कहानी लिख सकते हो। लिखो। दो दिन बाद, बहुत तेज लिख कर वहाँ गया। सत्येन ने कहा–हो गया। हमने कहा–हाँ। वो तकनीक वकनीक जो बनायी थी वैसा कुछ नहीं। अपने हिसाब से मैंने लिखा। वो बहुत खुश हुआ। सत्येन ने शानी साहब से कहा–क्या कर रहे हो आज, तो शाम को मुलाकात तय हुई। हम लोग पहले चले गए और फिर शानी अजाए। शानी ने कहानी सुनी और काफी प्यार-व्यार किया। उसके बाद मैंने फाइनल ड्राफ्ट कर लिया। ''रमजान में मौत'' नाम रखा कहानी का दुष्यंत कुमार ने। सत्येन ने कहा–भिजवा दें छपने के लिए। मैंने कहा–कौन छापेगा यार। 'सारिका' में वह कहानी छपी, नवलेखन अंक सन् तिहत्तर में, लंबी कहानी वाले कॉलम में। उसको भेजने वाले सत्येन थे।''[4]

मंजूर का लेखन के प्रति लगाव विद्यार्थी जीवन से ही रहा है। वे इंग्लिश मिडियम स्कूल में पढ़ते थे। अंग्रेजी विषय में उनका नम्बर अधिक आता था। शुरुआत में उनकी हिंदी शिक्षिका 'धन्वंतरी मिश्रा' उनके लेखन की प्रेरणा बनीं। वह कक्षा में कुछ-कुछ लिखने को देती थीं और उसे क्लास में बच्चों को सुनवाती थीं। इसके बाद कालेज में उन्हें एक द्विभाषी पत्रिका का संपादन करने का मौका मिला। मंजूर को डायरी और चिट्ठी लिखने का शौक था। शुरुआत में छोटी से छोटी बातें भी डायरी में लिखा करते थे यहाँ तक कि दुकान से मंजन भी खरीद कर लाते तो उसे भी डायरी में लिख देते थे। कालेज छुटने के बाद भी उनका लिखना-पढ़ना बदस्तूर जारी रहा। उस दौरान कुछ अप्रकाशित चीजें लिखकर काफी-हाउस में बैठकर दोस्तों को सुनाया करते थे। वे कहते हैं कि कभी सोचा नहीं था कि लेखक बनूँगा। लेखक बनना बहुत बड़ी बात लगती थी।

मंजूर एहतेशाम अपने लेखन का श्रेय अपने मित्रों को देते हैं। भोपाल के अपने साहित्यकार मित्र-मण्डली के बीच उनका साहित्यिक व्यक्तित्त्व धीरे-धीरे निखरता चला गया। मेडिकल स्टोर पर काम करते वक्त जो थोड़ा समय उन्हें बीच-बीच में मिला करता उसमे वे कहानियाँ लिखा करते। चार-पाँच कहानियाँ उन्होंने वहीं लिखी। एक कहानी लिखते-लिखते उन्हें लगा कि वह कहानी नहीं उपन्यास होगा। उसी दौरान राजेंद्र यादव भोपाल अजाए हुए थे। मंजूर की उनसे भेंट हुई। बातचीत के दौरान राजेंद्र यादव ने कहा कि इसे मुझे भेज देना। राजेंद्र यादव ने उसे दो महीने के भीतर छाप दिया और इस तरह मंजूर का पहला उपन्यास ''कुछ दिन और'' सन् 1976 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास पति-पत्नी संबंधों पर आधारित है।

हिंदी कथा साहित्य में मंजूर को ख्यातिप्राप्त लेखक के रूप में प्रतिष्ठा सन् 1986 में प्रकाशित उनके महत्त्वपूर्ण उपन्यास ''सूखा बरगद'' के माध्यम से मिली। उनका ''सूखा बरगद'' उपन्यास पाठको, साहित्यकारों तथा बुद्धिजीवियों के बीच काफी लोकप्रिय हुआ। बहुत कम समय में ही इस उपन्यास का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में किया गया। इस उपन्यास में आजादी के बाद से सन् 1980 के दशक तक के भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों तथा दंगों के बीच मुस्लिम समाज के भीतर उत्पन्न असुरक्षा तथा बदलती हुई मानसिकता को परत दर परत खोलने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त इस उपन्यास में उन तमाम पहलुओं पर गंभीरता से विचार किया गया है, जिनसे आज का मध्यवर्गीय मुसलमान जूझ रहा है। भाषा एवं सांस्कृतिक अस्मिता का प्रश्न, असुरक्षा की भावना, अंधविश्वास, शिक्षा एवं रोजगार की समस्या, राजनीतिक एवं सामाजिक उपेक्षा, भेदभाव, परंपरा और आधुनिकता, धर्म तथा विज्ञान के बीच होने वाले संघर्ष आदि समस्याओं को केंद्र बनाकर यह उपन्यास लिखा गया है।

मंजूर एहतेशाम के अब तक कुल छः उपन्यास और तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यासों में ''कुछ दिन और'' (1976), ''सूखा बरगद'' (1986), ''दास्ताने लापता'' (1995), ''पहर ढलते'' (2004), ''बशारत मंजिल'' (2006) तथा ''मदरसा'' (2011) प्रकाशित हो चुके हैं। इसी प्रकार तीन कहानी-संग्रह ''रमजान में मौत'' (1982), ''तस्बीह'' (1998) एवं ''तमाशा तथा अन्य कहानियाँ'' (2001) प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका एक नाटक 'सत्येन कुमार' के सह-लेखन में ''एक था बादशाह'' (1980) नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके अलावा एक आलोचनात्मक पुस्तक ''कि आती है उर्दू जुबां आते-आते'' मंजूर एहतेशाम और इजलाल मजीद के संपादन में दो भागों में प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक समकालीन उर्दू साहित्य पर केंद्रित है। फिलहाल वे एक उपन्यास लिख रहे हैं, जो उनके पुरखों पर आधारित है। जो इस समय पाकिस्तान में हैं। इस उपन्यास में पूरे फ्रंटियर स्टेट यानी मानशेरा, हसन अब्दाल, एटमाबाद आदि का जिक्र है क्योंकि इनके पुरखे यहीं से आकर भोपाल बसे थे। इनके परदादा के एक भाई ने 1857 की क्रांति में हिस्सा लिया था।

मंजूर के ''सूखा बरगद'' उपन्यास का अनुवाद अंग्रेजी में ''A Dying Banyan'' नाम से ''कुलदीप सिंह'' ने किया है। इसके अलावा ''दास्ताने लापता'' उपन्यास का अनुवाद अंग्रेजी में ''The Tale of the Missing Man'' नाम से ''जॉसन ग्रुनेब्युम'' (Jason Grunebaum) और ''अलरिके स्टार्क''

Scanned by TapScanner

(Ulrike Stark) ने किया है। इस उपन्यास की प्रशंसा करते हुए न्यूयार्क मैगजीन ने 10 जून 2007 के अपने अंक में इसे संसार का एक उत्कृष्ट उपन्यास बताते हुए कहा है कि ऐसा उपन्यास अंग्रेजी में उपलब्ध नहीं है। इस उपन्यास के अनुवादक 'जॉसन ग्रुनेब्रुम' "यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो" में हिंदी के प्रवक्ता हैं। इस उपन्यास के संदर्भ में वे में लिखते हैं–"This story of a sick Muslim man, whose disease is both unspecified and seemingly undiagnos able is quite a postmodernist feat for Hindi literature, where social realism has been the dominant mode for quite some time."[5]

मंजूर के सभी उपन्यास एवं कहानियाँ अपने आप में विशिष्ट होते हैं। उनमे खास किस्म की बौद्धिकता का समावेश होता है। उत्तरआधुनिकता और भूमंडलीकरण के प्रभाव, भारतीय समाज में बदलते नैतिक व मानवीय मूल्य, सांस्कृतिक अस्मिता के प्रश्न तथा धर्म व राजनीति जैसे संवेदनशील पहलुओं पर भी वे अपनी बेबाक राय रखते हैं। हिंदी में उनके पसंदीदा लेखक निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती, फणीश्वरनाथ रेणु, श्रीलाल शुक्ल, विनोद कुमार शुक्ल, उदय प्रकाश आदि हैं। आधुनिक हिंदी उपन्यासों में मंजूर को अलका सरावगी का उपन्यास 'कलिकथा वाया बाईपास', 'ब्रेक के बाद', गीतांजलि श्री का 'माई', 'हमारा शहर उस बरस', 'तिरोहित', दूधनाथ का 'आखिरी कलाम', मनोहरश्याम जोशी का 'कुरुकुरु स्वाहा' आदि उपन्यास विशेष रूप से पसंद हैं।

मंजूर को हिंदी साहित्य की सेवा करते हुए कई महत्त्वपूर्ण पुरस्कार तथा सम्मान से नवाजा जा चुका है। उन्हें 'सूखा बरगद' उपन्यास पर 'श्रीकांत वर्मा स्मृति सम्मान' और 'भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता' का पुरस्कार, 'दास्ताने लापता' उपन्यास पर 'वीर सिंह देव पुरस्कार', 'तसबीह' कथा-संग्रह पर 'वागीश्वरी पुरस्कार' तथा 1995 में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा समग्र लेखन पर 'पहल सम्मान' प्रदान किया गया है। इसके अतिरिक्त 2003 में भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय सम्मान 'पद्मश्री' से अलंकृत किया गया है। वर्तमान में निराला सृजन पीठ भोपाल के अध्यक्ष के रूप में अपनी सेवाएँ हिंदी जगत को दे रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. साहित्यिक कल्पना और समाजशास्त्रीय कल्पना (लेख), रिचर्ड हॉगर्ट, पुस्तक-उपन्यास का समाजशास्त्र-सं. गरिमा श्रीवास्तव, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 2006, पृ.4
2. आठवें दशक के बाद हिंदी कथा साहित्य- डॉ. राहुल मिश्र, ग्रंथ केतन, दिल्ली, प्रथम सं. 2009 पृ. 45
3. गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम- सुवास कुमार, प्रथम सं. 2010 पृ. 58
4. पक्षधर (त्रैमासिक) पत्रिका-सं. विनोद तिवारी, वर्ष : 04, अंक : 09, पृ. 27
5. manjoorehtesham.revolvy.com

शोधार्थी,
पी-एच.डी. (हिंदी)
हिंदी विभाग (मानविकी संकाय)
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
khushboo18121989@gmail.com

●●●

Scanned by TapScanner

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी مولانا آزاد نیشنل اُردو یونیورسٹی

MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY

(A Central University established by an At of Parliament in 1998) Accredited with "A" Grade by NAAC
Gachibowli, Hyderabad - 500 032, Telangana State

DEPARTMENT OF HINDI

CERTIFICATE

This is to certify that ~~Prof~~ / ~~Dr.~~ / ~~Mr.~~ / Ms. Khushboo

From Dept. Of. Hindi, University Of. Hyderabad. *has ~~participated~~ / ~~chaired~~*

~~session~~ / Presented a paper entitled Alpsankhyak Asmita Aur Sukhabargad. *in the Two day*

National seminar on "HASHIYE KA SAMAJ AUR SAHITYA MEIN ASMITA KE UBHARTE NAYE AYAAM" *held on 22 - 23 February 2018.*

DEPARTMENT OF HINDI ★ MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY ★ Gachibowli, Hyd- 500 032.

Dr. Dodda Seshu Babu
Convenor

Dr. Mohd. Khalid Mubashir-uz-zafar
Head, Department of Hindi

मिरांडा हाउस महाविद्यालय

पटेल चेस्ट मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

॥ प्रमाण पत्र ॥

प्रमाणित किया जाता है कि ......खुशबू...... ने 7 फरवरी 2019 को 'बदलते परिवेश : साहित्य और मीडिया' विषय पर आयोजित एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लिया और ......स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश और मंजूर एहतेशाम का कथा-साहित्य...... विषय पर अपना शोध-आलेख प्रस्तुत किया।

संयोजक

डॉ. प्रतिभा जौली
प्राचार्य